वाणी-सरोवर

जुलाई, १९७५

भुवन वाणी ट्रस्ट
लखनऊ - ३

नन्दकुमार अवस्थी —प्रतिष्ठाता

[भुवन वाणी ट्रस्ट (पंजीकृत) लखनऊ का मुखपत्र (त्रैमासिक)]

वाणी सरोवर

प्रत्येक क्षेत्र प्रत्येक संत की बानी।
संपूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ॥

संपादक—नन्दकुमार अवस्थी प्रब०सं०—विनयकुमार अवस्थी

वर्ष—६ जुलाई, १९७५ अंक—३

विद्वत्-परिषद्

असमिया—श्री नवारुण वर्मा, खारघुली हिल, गुवाहाटी (असम)

अरबी—क़ारी मुहम्मद उस्मान सिद्दीक़ी, दारुल्-मुबल्लग़ीन, लखनऊ

ओड़िया—सुरेशचन्द्र नन्द, एम. ए. हिन्दी-ओड़िया, रा० भा० रत्न, कटक

अंग्रेज़ी—डॉ. एम. डी. पटियाल प्रि. उ. भा. धर्ममहाविद्या. बरेली

उर्दू—डॉ.स० असदअली एम.ए., पीएच्. डी. सुश्री माजदा असद एम.ए. पीएच्.डी.

कन्नड—डॉ. वी. बी. पुत्तन्, एम. ए., पीएच्. डी., बंबई

कश्मीरी—डॉ. शिबनकृष्ण रैणा, एम. ए., पीएच्. डी., नाथद्वारा (राज.)

गुजराती—डॉ. दीनेश हरिलाल भट्ट, एम.ए. पीएच्.डी., रा०भा० रत्न, बंबई

गुरुमुखी—डॉ० अमरसिंह खालसा, डा० आफ़ डिविनिटी (यू. एस. ए.) सरदार कृपालसिंह ऐबट, बी. काम., एल. एल. बी.

तमिळ—प्रा० श्रीमती राजम् पिल्लै, एम.ए.हिन्दी, बम्बई
श्रीमती मीनाक्षी शेषन् ,, ,, ,,

तेलुगु—डॉ. भीमसेन 'निर्मल', एम. ए., पीएच्.डी., रीडर, उस्मानिया वि.वि.

नेपाली—नन्दकुमार आमात्य
सुश्री तपेश्वरी देवी आमात्य

पारसी—सुश्री नाज़ू दारा देबू, 'दिलनवाज़'

फ़ारसी—स० मस्ऊदहसन रिज़्वी, भारत-सरकार-सम्मानित, भू.पू. (फ़ारसी) विभागाध्यक्ष लखनऊ वि० वि०

बंगला—प्रबोध मजुमदार

मराठी—प्रा० गजानन साठे, एम.ए., मराठी-अंग्रेजी, हिन्दी, बी.टी., पीएच्. डी.

राजस्थानी—डॉ. सत्यनारायण स्वामी एम. ए. पीएच्. डी., बीकानेर

मलयाळम—के. ए. एस. अय्यर, भू. पू. उपकुलपति लख० वि० वि०
डॉ. एन.पी. कुट्टन पिल्लै, हैदराबाद

संस्कृत—बिहारीलाल शास्त्री, का. तीर्थ, बरेली
डॉ जनार्दन गंगाधर रटाटे, एम. ए., पीएच्. डी.

सिन्धी—प्रा० कु० पी. टी. आसवाणी, एम. ए., साहित्यरत्न
एन. के. केवलरामानी, सा.मं.सि.स.

हिन्दी—कविराज कृष्णकुमार अवस्थी, आयुर्वेदाचार्य, बी. आई. एम. एस.

वार्षिक मूल्य १०·०० एक प्रति २·५०

विषय-सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	विद्वत्परिषद्	... ...	१
२	विषय-सूची	... ...	२
३	सम्पादकीय—सिंहावलोकन, श्रीकृष्ण सन्देश, स्व० जोशी		३-८
४	(फ़ारसी)	सिर्रे अक्बर—शा. दाराशिकोह कृत ५० उपनिषदों की व्याख्या (क्रमशः) अनुवादक—डॉ. हर्षनारायण एम.ए.,पीएच्.डी.	२४९-२५६
५	(मलयाळम)	कवि तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन्‌कृत महाभारत (क्रमशः) सानु.लिप्य.—श्री के.ए.एस.अय्यर,भू.पू. उपकुलपति लख. वि.वि.	२५७-२६४
६	(बंगला)	कृत्तिवास रामायण लं.कां.—(क्रमशः) लिप्य.—नन्दकुमार अवस्थी, अनु.—श्री प्रबोध मजुमदार	२५७-२६४
७	(तमिळ)	तिरुक्कुरळ्—सानु० लिप्य०—श्रीमती राजम् पिल्लै पद्य-भावानुवाद—नन्दकुमार अवस्थी (क्रमशः)	२२५-२३२
८	(उर्दू)	गुज़श्तः लखनऊ—मौ० अब्दुल हलीम शरर, (क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—सुश्री कु० हुमैरा सिद्दीक़ी	१०५-११२
९	(अरबी)	रियाज़ुस्सालिहीन (ज़ादुँ सफ़र)—(क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—नन्दकुमार अवस्थी	२१७-२२४
१०	(ओड़िया)	वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज कृत—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री सुरेशचन्द्र नन्द, एम.ए., कटक	२३३-२४०
११	(मराठी)	श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत—(क्रमशः) अनु०—डॉ० गजानन साठे,पूना एम.ए.,अंग्रेज़ी-मराठी-हिन्दी	१९३-२००
१२	(असमिया)	माधव कन्दली कृत रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री प्रबोध मजुमदार	१६९-१७६
१३	(गुजराती)	गिरधर-रामायण—(क्रमशः) सानु. लिप्य०—डॉ. गजानन साठे,पूना,डॉ. दीनेश भट्ट,बंबई	१६१-१६८
१४	(तेलुगु)	रंगनाथ रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—डॉ० भीमसेन 'निर्मल',एम.ए.,पी.एच्. डी.	१५३-१६०
१५	(सिन्धी)	सामीअ जा सलोक—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—प्रा० कु० पी. आसवाणी, एम.ए. सा०र०	१५३-१६०
१६	(कन्नड)	पम्प रामायण—रच० अभिनव पम्प नागचन्द्र (क्रमशः) सानु. लिप्य.—डॉ. वी. बी. पुन्नन्, एम.ए., पीएच्. डी.	१३७-१४४
१७	(नेपाली)	भानुभक्त-रामायण-(क्रमशः) अनु० श्री नन्दकुमार आमात्य	१३७-१४४
१८	(कश्मीरी)	रामावतार-चरित—(क्रमशः) सानु. लिप्य.—डॉ. शिबनकृष्ण रैणा एम. ए. पीएच्. डी.	१४५-१५२
१९	(गुरमुखी)	श्री गुरुग्रन्थ साहिब—हिन्दी व्याख्या सहित (क्रमशः) सरदार कृपालसिंह ऐबट, बी. काम, एल. एल. बी.	११३-१२०
२०	(संस्कृत)	श्रीरामचरितमानस—संस्कृत पद्यानुवाद सहित (क्रमशः) डॉ० जनार्दन गंगाधर रटाटे,एम. ए.,पीएच्. डी.,सा.रत्न	११३-१२०
२१	(राजस्थानी)	पदम भगत कृत—रुकमणी-मंगळ (क्रमशः) डॉ० सत्यनारायण स्वामी, एम.ए., पीएच्. डी., बीकानेर	३३-४०

सम्पादकीय

सिंहावलोकन

सन् १९६९ ई० में 'भुवन वाणी ट्रस्ट' की स्थापना और पञ्जीकरण हुआ था। इस प्रकार यह सातवाँ वर्ष चल रहा है। भाषाई सेतुकरण—विश्वभाषा-बन्धुत्व का नागरी लिपि के सूत्र में माल्यगुन्थन—यह सातवें सोपान पर है। इस अवधि के फल-स्वरूप उपलब्धियों का विवरण, आगे प्रस्तुत किया जा रहा है। भाषा और लिपि को भी आधार बना कर देश में तनपोषक तत्वों की विघटन-मनोवृत्ति, भगवती वाणी और सभी भाषाओं में उपलब्ध सर्वोदयी वाङ्मय की ओर उनकी अरुचि, सीमित साधन, हमारी लघुता और उसके सहज-प्रतिफल में सामर्थ्यवानों की उपेक्षा—इन सबको देखते हुए, यह पङ्गु का गिरिलङ्घन है। सातवें सोपान पर हम पहुँचे नहीं हैं, वरन् एक-एक ओटा का निर्माण करते हुए सप्त-सोपानों तक पहुँच कर आठवीं सीढ़ी की रचना के उपक्रम की ओर उन्मुख हैं। ऊपर उल्लिखित ये विपरीत और विषम परिस्थितियाँ रहीं ज़रूर! किन्तु "एकश्चन्द्रस्तमोहन्ति, न च तारागणैरपि"। जनता में, शासन में, विद्वानों में, श्रीमानों में, ऐसे सदाशय और लोक के प्रति निष्ठावान् नर-रत्नों की भी मौजूदगी है। यदि भगवान् के हम कृपापात्र न होते! यदि इन उदारचेताओं से प्रोत्साहन और सहायता-स्वरूप यदा-कदा निधि-सिञ्चन न होता! यदि निस्पृह विद्वानों—जिनमें कई से अभी तक मेरा साक्षात् भी नहीं हुआ है—उनका निस्पृह योगदान सुलभ न होता! तब इन सप्त-सोपानों की नौबत ही कैसे आती?

ट्रस्ट की स्थापना से बहुत पहले—विधाननिर्मात्री परिषद द्वारा भाषा और लिपि पर एक निर्णय लेने के बाद ही—मेरे मन में यह प्रेरणा जाग्रत हुई थी कि सारी भाषाएँ और सारी लिपियाँ, अपने निजी क्षेत्रों में उत्तरोत्तर फूलती-फलती रहने के बावजूद, नागरीलिपि के कलेवर में सारे राष्ट्र में व्याप जायँ। सभी भाषाओं का पुनीत साहित्य नागरीलिपि के बाने में, देश के कोने-कोने तक प्रसारित हो जाय। इस 'वाणीयज्ञ' का शुभारंभ १९४७ ई० में अकिञ्चन के हाथों हुआ था। राष्ट्रीय एकीकरण और भावात्मक समन्वय के लिए, मेरी समझ में यह 'वाणीयज्ञ' सब यज्ञों में महान् अवलम्ब प्रतीत हुआ। और दैवयोग, कि राष्ट्र में व्यवहृत भाषाओं में दूरतम और भारत के लिए तो अति दुरूह, अरबी भाषा के लोक-प्रख्यात धर्मग्रन्थ क़ुर्आन का सानुवाद नागरी लिप्यन्तरण इस वाणीयज्ञ का प्रथम हव्य था। बँगला की सुप्रसिद्ध कृत्तिवासी रामायण का नागरी-लिप्यन्तरण और अवधी पद्यानुवाद प्रस्तुत किया जो जनता में लोकप्रिय, और हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश द्वारा मई, १९६० ई० में पुरस्कृत हुआ। हिन्दी समिति के तत्कालीन अध्यक्ष डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी और हमारे परम आदरणीय पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी जी का यह अनुग्रह था। क़ुर्आन शरीफ़ का नागरी लिप्यन्तरण अति जटिल और समस्याग्रस्त साबित हुआ। उसकी सफल सम्भावना और उपयोगिता में विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न सन्देह वर्तमान थे। किन्तु ईश्वर-प्रदत्त मानवीय विवेक पराभूत नहीं हुआ; उसने सही प्रतिक्रिया उत्पन्न की। इस 'निधि' से सम्बन्धित मूल-अधिकारी समुदाय के वरिष्ठ धर्माचार्यों ने इस नागरी-लिप्यन्तरण की आवश्कता और उसकी पूर्ति की सराहना की, जनता में समादर हुआ। अन्य समुदायों ने भी उत्कण्ठा और शौक से स्वागत किया। इन सात वर्षों का मेरा अनुभव है कि इस ग्रन्थ को 'अपना' और 'विराना' समझने वाले देश के सभी समुदायों में इस कार्य से शुभ प्रतिक्रिया हुई, भ्रान्तियों का निवारण हुआ, दिल जुड़े हैं, टूटा एक भी नहीं। अभी ताज़ी हर्ष की बात यह है कि क़ुर्आन के नागरी लिप्यन्तरण को समुचित समझने में कुछ हिचकिचाहट रखनेवाले समुदाय 'जमाते इस्लामी' के हिन्दी

मुखपत्र 'कान्ति' के यशस्वी सम्पादक श्री कौसर यज़्दानी महोदय ने भी क़ुर्आन के नागरी-लिप्यन्तरण की आवश्यकता को स्वीकारा है, और अपने प्रकाश के अनुरूप उस पर कुछ कार्य भी आरम्भ किया है।

एक उल्लेख यहाँ पुनः सामयिक होगा कि १६ वर्षों तक बनाते-बिगाड़ते, 'क़ुर्आन शरीफ़' के नागरी-लिप्यन्तरण के तैयार हो जाने के बाद मुद्रण का प्रश्न था। मैं इस लम्बी अवधि तक ग्रस्त रहने के कारण साधनों से जर्जर और त्रस्त हो चुका था। परम्परा के राजनैतिक-सेनानी परिवार के उदार सदस्य **श्री मुस्तफ़ा रशीद शेरवानी साहब** का प्रकाशन में सबसे बड़ा और आदिम योगदान था; और यह श्रेय भी पूर्वचर्चित ट्रस्ट के महान् संरक्षक **पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी जी** को है—उनके सुझाव का ही यह प्रतिफल था।

अस्तु। क़ुर्आन शरीफ़ और कृत्तिवासी रामायण—ये दो सानुवाद नागरी-लिप्यन्तरण जनता के सामने आये। इनकी बदौलत प्राप्त ख्याति और समादर ने एक नया मोड़ दिया। गत कार्यकाल से उत्पन्न विपन्नता से मुक्त होने का जब अवसर आया, तब सम्पन्नता में उतनी प्रीति न रही। अभिलाषा जाग्रत हुई कि, विश्व की न सही, तो राष्ट्र में व्यवहृत भारतीय और अभारतीय सभी भाषाओं के लोकप्रिय सत्साहित्य को, नागरी कलेवर में लाकर, उनके सीमित दायरे से बढ़ा कर अखिल राष्ट्र तक पहुँचाया जाय; और इसके प्रतिफल और प्रसादरूप में, देश में सर्वाधिक व्याप्त नागरी लिपि और हिन्दी भाषा के प्रति, स्वार्थ-निहित तत्वों द्वारा बेबुनियाद उत्पन्न की गई कटुता और स्पर्द्धा से जनता को निवृत्ति दिलाई जाय। यह स्पृहा, यह लालसा, इसकी सफलता-विफलता में हर्ष-विमर्ष—इससे मैं मुक्त नहीं हो पाया। फलस्वरूप १९६९ ई० में 'भुवन वाणी ट्रस्ट' की स्थापना कर पञ्जीकरण करवाया। सोचा, भारी-भरकम और समयाभावग्रस्त महानुभावों से ट्रस्ट को अभिषिक्त करके नामवर बनने में लक्ष्य की पूर्ति संभव है, अथवा कुछेक विश्वस्थ, सामान्य और उद्देश्य के प्रति निष्ठावान् जनों पर ट्रस्ट के सञ्चालन का भार छोड़ा जाय? दूसरी ही बात व्यवहारिक जान पड़ी। जनवरी, १९७० ई० में बहुभाषाई त्रैमासिक 'वाणी सरोवर' का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ।

शुरू में, 'वाणी सरोवर' की सहस्रों प्रतियाँ देश में वितरित की गईं। जनता और विद्वानों ने जाना। मूर्धन्य विद्वानों ने—जिनमें कई का आज तक मुझसे साक्षात् नहीं हुआ है—विविध भाषाओं का कार्यभार सँभाला। विद्वानों का सहज निस्पृह भाव भारत में आज भी विद्यमान है। ट्रस्ट की एक 'विद्वत्परिषद्' स्थापित हुई। पूज्य विनोबा जी का आशीर्वाद कभी का मुझे प्राप्त हो चुका था; आज तो उनकी अपार अनुकम्पा है। उनके कथन के अनुसार प्रत्येक कार्य की सफलता के लिए पाँच प्रधान उपकरणों में से १. धन, और २. शासन का बल—ये दो प्रमुख हैं।

साधारण मनुष्य! एकमात्र श्रम का सहारा! उपर्युक्त दोनों उपकरणों के लिए 'किंकर्तव्यविमूढ़'! एक भारतीय मान्यता है कि **'कर्णपिशाच'** की सिद्धि से परोक्षज्ञान और परोक्षनिधि की उपलब्धि होती है। हुआ भी ऐसा ही। कर्ण ने चक्षु प्रदान किये। चक्षुओं ने, विचित्र भाई जी **(श्री विचित्रनारायण शर्मा, अध्यक्ष गांधी स्मारक निधि, उत्तर प्रदेश)** के विचित्र सौहार्द का साक्षात् किया। अनुग्रहकर्ता और भी मिले; अन्यथा इतने स्वल्पकाल और स्वल्पसाधन में यह विशाल बहुभाषाई सेतुकरण का कार्य प्रतिपन्न कैसे होता? किन्तु विचित्र भाई जी का स्नेह तब से आज तक मुझ पर और ट्रस्ट पर उत्तरोत्तर प्रगाढ़ होता गया। सत्ता और जनता—सर्वत्र उनको प्राप्त समादर ने ट्रस्ट को अपरिमित बल प्रदान किया है। स्वस्थ, अस्वस्थ, प्रत्येक दशा में उनका दरबार सबके लिए सदैव खुला है। उनके शील और गुणों का बखान हमको

शोभा नहीं देता। उनको कौन नहीं जानता? बात तो ट्रस्ट से उनके सम्बन्ध की है। वे हमारे महान् संरक्षक हैं।

विचित्र भाई हमारे श्रम को, हमारे उद्देश्य को, हमारे साधनों की तुलना में हमारे कामों की गुरुता को, जान-समझ कर भी सदैव आतुर रहते थे कि कार्य अधिक से अधिक मिक़दार में हो। 'वाणी सरोवर' में सब ग्रन्थों के ८-८ पृष्ठ देख कर उनकी चिन्ता स्वाभाविक थी कि आखिर ये विशाल ग्रन्थ इस मन्थर गति से चल कर कब तक तैयार होंगे? उनसे जितना सहायता-सहयोग मिला, उसकी चर्चा इस समय नहीं करना है। हम समझते हैं कि सात सोपानों का निर्माण करके भाषाई सेतुकरण की एक मंज़िल हमने तैयार कर ली है। उसका विवरण श्री विचित्र भाई के समक्ष रख कर, उनके माध्यम से सारे राष्ट्र को इन सात वर्षों के सिंहावलोकन से परिचित कराना हमारा इस समय अभीष्ट है। जो ग्रन्थ सम्पूर्ण हो चुके हैं, और जिनका मुद्रण निरन्तर चल रहा है, उनकी तालिका नीचे दी जा रही है। मुझे विश्वास है, श्री विचित्र भाई अधिक सतुष्ट होंगे; भुवन वाणी ट्रस्ट से लोक की आशा में वृद्धि होगी।

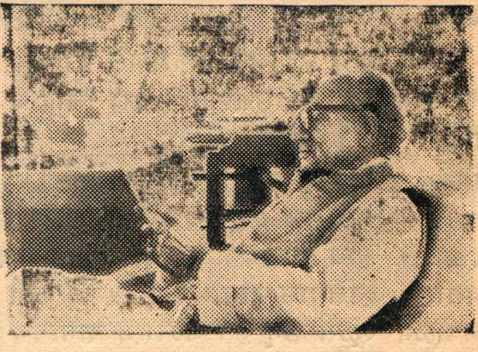

श्री विचित्रनारायण शर्मा
अध्यक्ष गांधी स्मारक निधि, उत्तर प्रदेश

वाणीसरोवर त्रैमासिक—१९७० से बराबर प्रकाशित हो रहा है।

	सम्पूर्ण हो चुके ग्रन्थ	पृष्ठ संख्या	मूल्य
अरबी	ज़ादे सफ़र (अरब में अति प्रामाणिक हदीस)	३३६	१२·००
बंगला	कृत्तिवास रामायण (१५वीं शती) लंका काण्ड गद्यानुवाद नागरी लिप्यन्तरण	४८८	१५·००
,,	,, ,, (आदि,अयोध्या,अरण्य,किष्किधा, सुन्दरकाण्ड) पद्यानुवाद	६२४	२५·००
मलयाळम	महाभारत (एळुत्तच्छन् कृत–१५ वीं शती) हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण	१२१६	४०·००
कश्मीरी	रामावतारचरित–प्रकाशरामकुर्यग्रामी (१८वींशती)	४८०	२०·००
फ़ारसी	सिर्रे अक्बर (दाराशिकोह कृत उपनिषद्-भाष्य) खण्ड–१ (ईश,केन,कठ,प्रश्न,मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर)	२८०	२०·००
उर्दू	शरीफ़ज़ादः (डॉ० रुस्वा कृत) नागरी लिप्यन्तरण	१३६	५·००
गुरुमुखी	श्रीजपुजी-सुखमनी साहब—नागरी लिपि में मूल गुरुमुखी पाठ एवं ख़्वाजः दिलमुहम्मद कृत पद्यानुवाद	१६४	५.००

★ अरबी सम्पूर्ण क़ुर्आन शरीफ़ (सटीक) अरबी नागरी, दोनों लिपियों में मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पणी		१०२४	४०·००
★ ,, ,, ,, ,, (मुअर्रा-मूल) अरबी		५२०	२०·००
★ ,, ,, ,, ,, केवल हिन्दी अनुवाद सटिप्पण		५३०	२०·००

जो ग्रन्थ बराबर प्रकाशित हो रहे हैं और सभी अपूर्ण हैं:—

सभी ग्रन्थों का मूलपाठ नागरी लिपि में और अनुवाद हिन्दी में है:—

भाषा	विवरण	अनुमानितपृष्ठ,	मुद्रित
तमिळ	तिरुक्कुड्ळ् (तिरुवल्लुवर कृत) २००० वर्ष प्राचीन (हिन्दीगद्य-पद्य अनुवाद एवं तमिळपाठ का ना० लिप्य०	४००	२२४
,,	कम्ब रामायण १४ वीं शती (योजनाधीन)	२०००	×
बंगला	कृत्तिवास रामायण (१५ वीं शती)—उत्तरकाण्ड	४००	×
मलयाळम	एळुत्तच्छन् कृत अध्यात्म रामायण (१५वीं शती)	१५००	९६
गुजराती	गिरधर रामायण (१९ वीं शती)	१५००	४६४
असमिया	माधवकंदली रामायण (१४ वीं शती)	११००	२१६
तेलुगु	रंगनाथ रामायण (१३ वीं शती)	१७००	३८४
ओड़िया	बैदेहीश-विळास (उपेन्द्रभंज कृत–१८ वीं शती)	१०००	४५६
कन्नड	अभिनव पम्प रामायण (जैन सम्प्रदाय–११वीं शती)	१५००	२९६
सिन्धी	'सामी', 'शेख़', 'सचल' की त्रिवेणी	१५००	२४०
कश्मीरी	लल्लद्यद (योजनाधीन)	३००	×
गुरुमुखी	श्रीगुरुग्रन्थ साहिब हिन्दी अनुवाद सहित (पूर्वार्ध)	१६००	१२०
उर्दू	गुज़श्त: लखनऊ—मौ० अब्दुल हलीम शरर	३५०	१२०
मराठी	श्रीराम-विजय (श्रीधर स्वामी कृत–१७वीं शती)	१५००	५६८
नेपाली	भानुभक्त रामायण हिन्दी अनुवाद सहित मूलपाठ	५००	२५६
राजस्थानी	रुक्मिणी मंगळ पदम भगत कृत ,, ,,	५००	७२
फ़ारसी	सिर्रे अक्बर (दाराशिकोह कृत ५० उपनिषदों की व्याख्या हिन्दी में) खण्ड–२,३	१०००	×
संस्कृत	रामचरित मानस—मूलपाठ तथा पंक्ति-अनुपंक्ति संस्कृत पद्यानुवाद	१२००	१६०
ओड़िया	,, ,, मूलपाठ ओड़िया लिपि में तथा ओड़िया गद्य-पद्य अनुवाद	१४००	५२८

★ (१) क़ौरानिक कोश पठनक्रम (२) क़ौरानिक कोश वर्णानुक्रम
(३) जदीद उर्दू-हिन्दी कोश—[ये तीन कोश छप रहे हैं]

★ ट्रस्ट से पृथक्, ट्रस्ट के प्रतिष्ठाता (नन्दकुमार अवस्थी) का यह आदिम प्रयास होने के कारण इसकी चरचा उसी प्रकार अनिवार्य है जिस प्रकार निउ टेस्टामेण्ट के साथ ओल्ड टेस्टामेण्ट की चरचा अनिवार्य है। यह कार्य ट्रस्ट से पृथक् होते हुए भी ट्रस्ट की आधार-शिला है। तारांकित कार्य ट्रस्ट से पृथक् हैं।

श्रीकृष्ण सन्देश

"घृणा लज्जा भयं शोको जुगुप्सा चेति पञ्चमम् ।
कुलं शीलं तथा जातिरष्टौ पाशाः प्रकीर्तिता ।।
पाशबद्धः पशुर्ज्ञेयः, पाशमुक्तो महेश्वरः ।।" (कुलार्णवतन्त्र १३.६९-७०)

'श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवासंघ, मथुरा' से गत दस वर्षों से प्रकाशित होनेवाले, धर्म, अध्यात्म, साहित्य एवं संस्कृति-प्रधान मासिकपत्र 'श्रीकृष्ण सन्देश' का १९७५ ई० जुलाई अंक श्री जयदयाल डालमिया जी की कृपा से प्राप्त हुआ। इतने विपुल ज्ञान-भन्डार का प्रकाशन इस भक्तिमय संस्था के ही बूते की बात है।

कारोबार में सतत व्यस्त श्री डालमिया जी, सरस्वती की उपासना में, भगवती भक्ति की उपासना में, स्वयं जितना समय और साधनों का योगदान करते हैं, वैसा अन्यत्र मेरे देखने में नहीं आया। श्री डालमिया जी का मुझ पर और भुवन वाणी ट्रस्ट पर अपरिमित सौहार्द और अद्‌भुत अनुग्रह है। उनके सुयश में कुछ लिखना उनकी रुचि के नितान्त प्रतिकूल है। इस आतंक से अनुशासित होकर मैं 'श्रीकृष्ण सन्देश' से एक समीचीन उद्धरण की उपर्युक्त पंक्तियाँ वाणीसरोवर के पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करके संतोष पा रहा हूँ।

[भावार्थ—घृणा, लज्जा, भय, शोक, मत्सर (इर्षाताप), कुल, शील, जाति (इनका पार्थक्यानुभव और अहं)—ये आठ प्रकार के बन्धन हैं। इन पाश-बन्धनों से जितना ही मुक्त होता जाता है, उतना ही वह व्यक्ति महेश्वरत्व, ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है। इन बन्धनों से उत्तरोत्तर मुक्त मानव, क्रमशः कलाओं से और अन्ततः षोडश कलाओं से पूर्ण होकर ब्रह्ममय होता है "पूर्णात् पूर्ण इदं सर्वम्……"। यहाँ यह टिप्पणी भी अनुचित न होगी कि आज का प्रचलित शब्द 'धर्म' भी कुल-शील-जाति के ही घेरे में आजाता है। धर्म में विभाजन कहाँ, अनैक्य कहाँ? विभिन्न धर्म, सम्प्रदाय, मत और उम्मतों में बँट कर हम अपने को विभाजित करके एक वर्ग-विशेष में सीमित कर के उसी कुल-शील-जाति के अहं के फन्दे में फस कर धर्म के सत्यस्वरूप से भटक जाते हैं। इस धोखे के शिकार, संसार के तथाकथित प्रत्येक धर्मावलम्बी हैं।]

'श्रीकृष्ण सन्देश' के इस अंक से 'भगवान् वासुदेव' शीर्षक से श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र' जी की पुष्कल लेखनी से कृष्णावतार का आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक विराट् चरित्र ग्रन्थ-रूप में धारावाहिक प्रकाशित होना आरंभ हुआ है।

श्री सुरेश जोशी जी दिवंगत !

श्री सुरेश जोशी स्वतंत्रता-संग्राम के पुराने सेनानी थे। आजादी के बाद से उत्तर प्रदेश, सूचना विभाग में एक वरिष्ठ पद पर कार्यरत रहते हुए भी अहंशून्य, साहित्यानुरागी, अतिशिष्ट और विनम्र रहे—यह उनके चरित्र की अद्वितीयता रही। अन्यथा यत्र-तत्र तो हम लोगों में, स्वल्पातिस्वल्प क्षणिक त्याग को भी नगद करने और अहं में मस्त रहने में ही, अधिकतर व्यस्त दीखते हैं।

गत चीनी आक्रमण के समय श्री जोशी जी ने 'राष्ट्रीय आल्हा' और 'भारत के देवी-देवताओं के पराक्रमी स्वरूप' की रचना मेरे सुपुर्द की थी। उन पर वे मुग्ध हुए। तब से मुझ पर और भुवन वाणी ट्रस्ट पर उनका वर्णनातीत स्नेह और सहयोग रहा। उनके असामयिक निधन से अपार क्लेश हुआ। उनके परिवार के प्रति ट्रस्ट का परिवार समवेदना प्रकट करते हुए, भगवान् से प्रार्थी है कि स्व० श्री जोशी की पुण्यात्मा को शाश्वत शान्ति प्रदान करे।

एक नया विश्वास

प्रदेश के निर्माण में

छात्रों की समझदारी नये द्वार खोलेगी

* छात्रों का विश्वविद्यालय कोर्ट में प्रतिनिधित्व
* विद्यार्थी कल्याण परिषद के गठन का निश्चय
* कृषि, विज्ञान, चिकित्सा, इंजीनियरिंग तथा अन्य तकनीकी शिक्षा की समुचित व्यवस्था
* सस्ते मूल्य पर पाठ्य पुस्तकों और अभ्यास पुस्तिकाएँ उपलब्ध
* सभी स्तरों पर छात्रवृत्तियों की संख्या और रकम में वृद्धि
* छात्रावासों में १८ प्रतिशत स्थान हरिजन छात्रों के लिये सुरक्षित स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के सभी बालकों तथा बालिकाओं की शिक्षा हेतु आर्थिक सहायता
* छात्रावासों में अनाज, वनस्पति, मिट्टी के तेल आदि की पूर्ति
* प्रदेश के विद्यार्थी आश्वस्त हो सकते हैं
* प्रदेश शासन : छात्रों के लिए : छात्रों के साथ

१६४३० सूचना निदेशालय, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित।

सि० अ०—जो कर्मफल की प्राप्ति के लिए उस वृक्ष में आसक्त हो जाता है और अपने स्वामी को भूल जाता है वह प्रमाद और अज्ञान के कारण शोकाकुल हो जाता है और अपने परमेश्वर को जान लेता है [और यह भी] कि मैं जीवात्मा और प्रतिबिम्ब मात्र हूँ और वह पक्षी हूँ जो परमात्मा है तो वह शोक रहित हो जाता है। [७]

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्,
यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस् तं न वेद किमृचा करिष्यति ?
य इत् तद् विदुस् त इमे समासते ॥ ८ ॥[1]

अनु०–जिस में समस्त देवगण प्रतिष्ठित हैं उस अक्षर परव्योम में ही [वेद की] कथाएँ स्थित हैं। जो उस को नहीं जानता वह वेदों से ही क्या कर लेगा? जो उसे जानते हैं वे तो ये सम्यक् रूप से स्थित हैं। (८)

सि० अ०—वह जो अव्यय और विभु चिदाकाश है उसी में समस्त वेद और देवता प्रतिष्ठित हैं। जो कोई उसे नहीं जानता उसे भला वेद से क्या लाभ होगा। जो लोग उसे जान जाते हैं वे परमानन्दस्वरूप हो कर उसी में स्थित हो जाते हैं। [८]

छन्दांसि, यज्ञाः, क्रतवो, व्रतानि,
भूतं, भव्यं, यच् च वेदा वदन्ति—
अस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत्।
तस्मिंश् चान्यो मायया संनिरुद्धः ॥ ९ ॥

अनु०–वेद, यज्ञ, क्रतु, व्रत, भूत, भविष्य, वर्तमान, तथा और भी जो कुछ वेद बतलाते हैं—वह सब मायावी ईश्वर इस [अक्षर] से ही उत्पन्न करता है। और उस (प्रपञ्च) में ही माया से अन्य (जीवात्मा) बँधा हुआ है। (९)

सि० अ०—जितने भी वेद हैं, जितने भी यज्ञ हैं, जितने भी दान हैं, जितने भी व्रत हैं, जो भी हुआ है, जो भी होगा, वेदों के जो भी आदेश हैं, वह सब उसी से आविर्भूत हुआ है। उस ने अपनी माया द्वारा जो उसी की इच्छा है यह सब आविष्कृत किया है और उन आविष्कारों (दृश्यों) में बँध कर रह गया है। [९]

---

१ ऋग्वेद १.१६४.३९।

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्, मायिनं तु महेश्वरम् ।
तस्यावयवभूतैस् तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ।। १० ।।

अनु०–प्रकृति को तो माया जानना चाहिए और महेश्वर को मायावी। उसी के अवयवभूतों [अंशस्वरूप जीवों] से यह समस्त जगत् व्याप्त है। (१०)

सि० अ०—माया तीनों गुणों का संयोग और साम्यावस्था है और इस माया तथा इच्छा का स्वामी मायी है अर्थात् महेश। समस्त जगत् उस के प्रतिबिम्बों से भरा हुआ है। [१०]

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको,
यस्मिन्निदं स च वि चैति सर्वम्,
तमीशानं, वरदं, देवमीडचं
निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ।। ११ ।।

अनु०–जो अकेला ही प्रत्येक योनि का अधिष्ठाता है, जिस में यह सब सम्यक् प्रकार से समवेत हो कर लीन हो जाता है, उस सर्वनियन्ता, वर देने वाले, स्तवनीय देव का साक्षात्कार कर के [साधक] इस परम शान्ति को प्राप्त होता है। (११)

सि० अ०—पदार्थों के वैविध्य के बीच वह अकेला है। जो सब प्रलय-काल में उसी में लीन हो जाते हैं और सर्ग-काल में उस से निःसृत हो जाते हैं। वह ईश्वर वरदाता है, ज्योतिर्मय है, स्तवनीय हैं। जो कोई उसे इस रूप में निश्चित करके यह जान लेता है कि मैं वही हूँ वह मोक्षरूपी परम शान्ति को प्राप्त कर लेता है। [११]

यो देवानां प्रभवश् चोद्भवश् च;
विश्वाधिपो, रुद्रो, महर्षि;
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं;
स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु ।। १२ ।।[1]

अनु०–जो देवताओं का उद्‌गम और उत्स है, [जो] जगत् का स्वामी, रुद्र, और सर्वज्ञ है; जिस ने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न होते देखा था; वह हमें शुभ बुद्धि से संयुक्त करे। (१२)

---

१ किञ्चित् पाठान्तर से ३.४; अथर्ववेदीय महानारायणोपनिषद् १०.३।

सि० अ०—समस्त देवता उसी से आविर्भूत हुए हैं और उसी में लीन हो जाते हैं। वह सब से बड़ा है, उस से बड़ा कोई नहीं। वह रुद्र है, अर्थात् सब का संहारक है। वह महाज्ञानी है। उस ने हिरण्यगर्भ को उत्पन्न होते देखा था। वह सत्ता मुझे उस पवित्र बुद्धि को प्राप्त करा दे जिस से मैं जानने लग जाऊँ कि मैं वही हूँ। [१२]

यो देवानामधिपो,
यस्मिँल् लोका अधिश्रिताः,
य ईशे अस्य द्विपदश् चतुष्पदः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १३ ॥[१]

अनु०—जो देवताओं का स्वामी है, जिस में लोक आश्रित हैं, जो इस द्विपद एवं चतुष्पद [प्राणिवर्ग] का शासन करता है उस आनन्द-स्वरूप देव की हम हवि के द्वारा उपासना करें। (१३)

सि० अ०—समस्त देवताओं के रहस्यों का ज्ञाता वही है। समस्त जगत् उसी में स्थित है। वही समस्त द्विपदों और चतुष्पदों का स्वामी है। श्वेताश्वतर ने कहा कि मैं उसी सत्ता के लिए समस्त पुण्यों का अनुष्ठान करता हूँ। ऐसी सत्ता को छोड़ कर मैं किस देवता का यजन करूँ? [१३]

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं, कलिलस्य मध्ये
विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्,
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं,
ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ॥ १४ ॥[२]

अनु०—सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, कलिल के मध्य जगत् के स्रष्टा, विश्व के एकमात्र आच्छादक शिव को जान कर [जीव] परम शान्ति प्राप्त करता है। (१४)

---

१ इस मंत्र का उत्तरार्द्ध ऋग्वेद १०.१२१.२ में भी आता है। 'कस्मै देवाय' का अर्थ 'किस देवता की' तथा 'आनन्द के लिए देवता की' भी हो सकता है।

२ किञ्चित् पाठान्तर के साथ ५.१२; तीसरा पाद ३.७ और ४.१६। यहाँ 'कलिल' का अर्थ 'कललरस' (प्रॉटोप्लाज्म) हो सकता है, अथवा सृष्टि का मूल उपादान जिसे ऋग्वेद १०.१२९.३ में 'सलिल कहा गया है। कहीं यह 'कलिल' अथवा 'सलिल' ही तो यूनानी दर्शन का 'हिली' (hyle) नहीं है? 'हिली' अरबी में 'हयूला' हो गया है।

सि० अ०—वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। वह समस्त जगत् में व्याप्त है। वह समस्त जगत् का रचयिता है। समस्त विविध रूप उसी के रूप हैं। वह समस्त जगत् को व्याप्त कर के स्थित है। लोग उस आनन्दस्वरूप को जान कर परम शान्ति प्राप्त कर लेते हैं। [१४]

स एव काले भुवनस्य गोप्ता,
विश्वाधिपः, सर्वभूतेषु गूढः।
यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश् च,
तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश् छिनत्ति ॥ १५ ॥

अनु०—वह काल में विश्व का रक्षक है, [वही] विश्व का स्वामी है, [वही] समस्त भूतों में अन्तर्हित है। जिस में ब्रह्मर्षि और देवगण तल्लीन हैं, उसे इस प्रकार जान कर [पुरुष] मृत्यु के पाशों को काट डालता है। [१५]

सि० अ०—वह एक समय जगत् का अपने भीतर ही पालन करता है। वह विश्व का स्वामी है। वह समस्त प्राणियों में अन्तर्हित है और गुह्य रहस्यों का ज्ञाता है। समस्त ब्रह्मर्षि और देवता उस का ज्ञान हो जाने के कारण उस से एकीभूत हो जाते हैं और उस को अपना ही स्वरूप जानते हुए मृत्यु के पाश को काट डालते हैं। [१५]

घृतात् परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं,
ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम्,
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥ १६ ॥

अनु०—घृत के ऊपर रहने वाले उस के सार भाग के समान अत्यन्त सूक्ष्म और सभी भूतों में अन्तर्यामी रूप से स्थित जानकर तथा विश्व के एक मात्र आच्छादक देव शिव को जान कर [पुरुष] समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है। (१६)

सि० अ०—जिस प्रकार घृत अत्यन्त सूक्ष्म होता है उसी प्रकार वह सत्ता सूक्ष्मता की सीमा है। वह समस्त भूतों में अन्तर्निहित है, आनन्दस्वरूप है, और समस्त जगत् में व्याप्त है। जो कोई उस प्रकाशस्वरूप और अद्वैत सत्ता को जान लेता है वह समस्त बन्धनों से छूट जाता है। [१६]

एष देवो विश्वकर्मा; महात्मा;
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः;
हृदा, मनीषा, मनसाऽभिक्लृप्तः ।
य एतद् विदुरमृतास् ते भवन्ति ।। १७ ।।[1]

अनु०—यह देव जगत्कर्ता; महान् आत्मा; और सर्वदा समस्त जीवों के हृदय में अन्तर्निहित; हृदय, मन, और बुद्धि द्वारा निष्पन्न (अथवा प्रकाशित) है। जो इसे जानते हैं वे अमर हो जाते हैं। [१७]

सि० अ०—वह एकमात्र ज्योतिर्मय सत्ता समस्त जगत् का उत्पादक है। वही एकमात्र महात्मा है। वह प्राणियों के अन्तःकरण में सदा सन्निविष्ट है। उस के अतिरिक्त सब कुछ का निषेध करते हुए शुद्ध प्रज्ञा द्वारा अपने को तद्रूप जान कर उसे प्राप्त किया जा सकता है। जो लोग उसे जान लेते हैं वे अमर हो जाते हैं। [१७]

यदाऽतमस् तन् न दिवा न रात्रिर्,
न सन् न चासञ्; छिव एव केवलः ।[2]
तदक्षरं, तत् सवितुर् वरेण्यं,[3]
प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी ।। १८ ।।

अनु०—जिस समय तमस् नहीं रहता, उस समय न दिन रहता है न रात्रि, न सत् रहता है न असत्; एकमात्र शिव रह जाता है। वह अविनाशी और सवितृ-देव का वरिष्ठ [रूप] है, तथा उसी से पुरातन प्रज्ञा का प्रसार हुआ। (१८)

सि० अ०—जब अज्ञान का अत्यन्ताभाव हो जाता है, तब न रात्रि होती है न दिन, न सत्य होता है और न मिथ्या—[4] एकमात्र वही आनन्दस्वरूप सत्ता होती है। वह अव्यय है। उस का प्रकाश सूर्य से भी बड़ा है। प्रज्ञा को गति देने वाला वही है। [१८]

---

१ तुलनीय ३.१३, कठोपनिषद् ६.६ ।

२ तुलनीय छान्दोग्योपनिषद् ३.११.३; ८.४.१-२ ।

३ तुलनीय ऋग्वेद ३.६२.१० (गायत्रीमंत्र) ।

४ उपनिषद् के 'सत्' और 'असत्' का अनुवाद 'सत्ता' और 'असत्ता' होना चाहिए था, न कि 'सत्य' और 'मिथ्या' ।

नैनमूर्ध्वं, न तिर्यञ्चं, न मध्ये परिजग्रभत् ।
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।। १९ ।।[1]

अनु०—उसे न ऊपर से, न इधर-उधर से, न मध्य में कोई ग्रहण कर सका है। जिस का नाम महद्यश (महान् यश वाला) है उस ब्रह्म की कोई प्रतिमा (बराबरी करने वाला) नहीं है। [१९]

सि० अ०—उसे न तो ऊर्ध्व कह सकते हैं और न अधर, और न उसे मध्य ही कह सकते हैं। उसे दिशा भी नहीं कह सकते। उस के बराबर कुछ नहीं है। उस का नाम 'महद्यश' है। [१९]

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य,
न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एन-
मेवं विदुरमृतास् ते भवन्ति ।। २० ।।[2]

अनु०—इस का स्वरूप दृष्टि में नहीं ठहरता, न इसे कोई नेत्र द्वारा देख सकता है। जो इस हृदयस्थित परमात्मा को हृदय और मन से इस प्रकार जान लेते हैं वे अमर हो जाते हैं। (२०)

सि० अ०—जो कुछ दृष्टिगोचर होता है वह उस का रूप नहीं है। उसे नेत्र से देख ही नहीं सकते। उसे समस्त अनीश्वर के निषेध द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है अथवा अपने को तद्रूप जानकर ही उसे प्राप्त किया जा सकता है। जो लोग इस प्रकार जानते हैं वे अमर हो जाते हैं। [२०]

अजात इत्येवं कश्चिद् भीरुः प्रपद्यते ।
रुद्र यत् ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम् ।। २१ ।।

अनु०—हे रुद्र ! तुम अजन्मा हो, इसलिए कोई [मुझ जैसा] भय से कातर पुरुष तुम्हारी शरण लेता है [और कहता है कि] तुम्हारा जो दक्षिण मुख है उस से मेरी सर्वदा रक्षा करो। (२१)

सि० अ०—श्वेताश्वतर ने कहा कि मैं प्रमाद और अज्ञान के भय से उस नित्य सत्ता की शरण लेता हूँ। हे रुद्र अर्थात् सर्वसंहारक ! अपने उस रूप से जो सन्तापों का हरण करने में समर्थ है तू अज्ञान के दुःख से मेरी सदा रक्षा कर। [२१]

---

१ यजुर्वेद ३२.२-३ (मंत्र २ का उत्तर चरण और मंत्र ३ का पूर्व चरण)।

२ कठोपनिषद् २.३.९ (पाठान्तर के साथ); अथर्ववेदीय महानारायणोपनिषद् १.११।

मा नस् तोके तनये, मा न आयुषि,
मा नो गोषु, मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान् मा नो रुद्र ! भामितो वधीर्,
हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ॥ २२ ॥[1]

अनु०—हे रुद्र ! तुम कुपित हो कर हमारे पुत्र, पौत्र, आयु, गौ, और अश्वों में घात न करना । क्रोध में हमारे वीरों का भी वध न करना । हम हव्य-सामग्री से युक्त हो कर सर्वदा ही तुम्हारा आवाहन करते हैं । (२२)

सि० अ०—मेरे पुत्र-पौत्र, मेरी आयु, मेरे पशुओं को हानि न पहुँचे—उन का शुभ और मंगल हो । हे सर्वसंहारक ! मेरे वीर शस्त्रधारी योद्धाओं का वध न कर, मेरे पापों के कारण मुझ पर क्रोध न कर । हम हव्य-सामग्री हाथ में ले कर इस सभा में तेरा आवाहन करते हैं । [२२]

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

पञ्चमोऽध्यायः

द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते,
विद्याविद्ये निहिते यत्र गूढे ।
क्षरं त्वविद्या, ह्यमृतं तु विद्या,
विद्याविद्ये ईशते यस् तु सोऽन्यः ॥ १ ॥

अनु०—अविनाशी और अनन्त परब्रह्म में दो हैं, जहाँ विद्या और अविद्या दोनों गुप्त रूप से निहित हैं । [उन में] क्षर अविद्या है, अमृत विद्या है, तथा जो विद्या और अविद्या का शासन करता है वह कोई और है । (१)[2]

---

१ किञ्चित् पाठान्तर के साथ ऋग्वेद १.११४.८; यजुर्वेद १६.१६; तैत्तिरीयसंहिता ४५.१०.३ ।

२ विद्या, अविद्या, और ब्रह्म के त्रिक का दूरस्थ संकेत हमें अथर्ववेद ११.८.२३ और यजुर्वेद ४०.१२.१४ अथवा ईशोपनिषद् ९—११ में प्राप्त होता है । यह त्रिक गीतोक्त त्रिक क्षर-पुरुष, अक्षर-पुरुष, और उत्तम-पुरुष/पुरुषोत्तम (गीता १५.१७.१८) से तुलनीय है ।

सि० अ०—दो अक्षर सत्ताएँ हैं, जिन का नाश नहीं होता—एक ज्ञानी जीवात्मा और दूसरा अज्ञानी जीवात्मा। ये दोनों अनन्त हैं। ब्रह्म इन दोनों से बड़ा है, और उस में विद्या और अविद्या प्रत्येक निहित हैं। अविद्या नश्वर है और विद्या अविनाशी ब्रह्म जो विद्या और अविद्या का अधिष्ठाता है वह इन दोनों से परे है। [१]

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको—
विश्वानि रूपाणि योनीश् च सर्वाः—
ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस् तमग्रे
ज्ञानैर् बिभर्ति जायमानं च पश्येत् ॥ २ ॥[1]

अनु०—जो अकेला ही प्रत्येक योनि का अधिष्ठाता है—समस्त रूपों और समस्त योनिओं का—तथा जिस ने सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न कपिल ऋषि को ज्ञान सम्पन्न किया था और जन्म लेते हुए भी देखा था [वही विद्या और अविद्या से भिन्न उन का शासक है]। (२)

सि० अ०—वही एकमात्र सत्ता छोटी और बड़ी समस्त योनिओं में निहित है। कपिल-ज्ञानी जो महर्षि हैं सब से पूर्व उत्पन्न हुए थे। वह सत्ता कपिल को विविध प्रकार के ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न करती है। कपिल-ज्ञानी को ही, जो उस सत्ता से उत्पन्न हुए थे, सब की उत्पत्ति का कारण जानना चाहिए। [२]

एकैकं जालं बहुधा विकुर्वन्
नस्मिन् क्षेत्रे संहरत्येष देवः।
भूयः सृष्ट्वा पतयस्[2] तथेशः
सर्वाधिपत्यं कुरुते महात्मा ॥ ३ ॥

अनु०—इस संसार-क्षेत्र में यह देव एक-एक जाल को अनेक प्रकार बिछा कर [अन्त में] संहार करता है। यह महात्मा ईश्वर ही [कल्प के आरम्भ में] प्रजापतिओं को पुनः उत्पन्न कर सब का आधिपत्य करता है। (३)

---

१ मंत्र ४.१२ से तुलना करने पर 'कपिल' और 'हिरण्यगर्भ' समानार्थक प्रतीत होते हैं। मंत्र ३.४ भी तुलनीय है।

२ 'पतयः' का अर्थ 'शंकराचार्य' ने मरीचि आदि प्रजापति किया है। पाठ कहीं-कहीं 'यतयः' मिलता है, जो अधिक समीचीन लगता है। यह वही शब्द है जो ऋग्वेद १०.७२.७ में हिरण्यगर्भों (Demiurges) के अर्थ में आया है जो जगत् की सृष्टि में सहायक हुए थे।

कण्टील कुळिप्पानाय् पोयोरु मकळेआन्
कण्ट कावुकळ्तोरुं नी चेन्नु तिरयणम् । २९
अन्नेरमवळ् नीळेत्तिरञ्ञुतुटङ्ङिनाळ् ।
अन्नल्लो ययातियुं चेन्नितु नायाट्टिनाय् ३०
भूपति दाहंकोण्टु पानीयं तिरयुम्पोळ्
कूपं निर्ज्जलं चारत्ताम्मारु कण्टानतिल् ३१
काणायि मिन्नल्पोले कन्यकारत्नंतन्ने ।
क्षोणीपालकन्तानुमेट्टुत्तु करेट्टिनान् । ३२
कोपवुमसूययुं प्रीतियुं विनयवुं
भूपतितन्निलनुरागवुं विरयलुं ३३
प्रेमवुं मन्दाक्षवुं बाष्पवुं प्रलापवुं
कामतापवुं कमनीयवेषवुमुळ्ळिल् ३४
पेटियुमभिमानहानियुं दुःखङ्ङळुं
कूटिनिन्नीटुन्नोरु कन्यकतन्नेक्कण्टु ३५
कूटलर्कुलकालनाय मन्नवन् चोन्नान् ।
पाटलाधरिकुलमौलिमालिके बाले । ३६
निर्म्मले ! निरुपमशीले ! चोल्लेन्नोटिप्पोळ् ।
निन्मनोदुःखत्तिन्टे मूलवुं पिन्ने निन्टे ३७
गोत्रवुं पेरुं निन्टे तातनारेन्नुं पर-
मार्त्थं चोल्लम्मयाराकुन्नतेन्नतुमेल्लां ३८

पुत्री को न देखकर दुःखित शुक्र ने उसकी धात्री (धाय) से कहा—"मेरी पुत्री नहाने गयी थी पर अभी तक दिखाई नहीं दे रही है। तुम जाकर उसे झाड़ी-झाड़ी में ढूँढ़ो"। तदनुसार धाय उसे सब जगह ढूँढ़ने लगी। उन दिनों राजा ययाति शिकार खेलने निकला था। जब प्यास के कारण जल ढूढ़ रहा था तब एक निर्जल कुआँ दिखाई दिया, और उसमें बिजली के समान एक कन्यारत्न दिखाई पड़ा। राजा ने उसको पकड़कर कुएँ से बाहर निकाला। कोप, असूया, प्रीति, विनय, भूपति के प्रति अनुराग, कम्पन, प्रेम, लज्जा, आँसू, प्रलाप, काम का ताप, कमनीयवेष, आन्तरिक भय, अभिमान की हानि तथा दुःख आदि भावों से युक्त उस कन्या को देखकर, २८-३५ शत्रुओं के नाशक राजा ययाति ने कहा—"हे लाल अधरवालियों की मौलिमालिके (शिरोमणि)! बाले! निर्मले! निरुपमशीलवाली! अब मुझे यह बतलाओ कि तुम्हारे दुःख का क्या

कूपत्तिल् वीणुपोवानेन्तवकाशमेन्तुं ।
भूपति चोदिच्चप्पोळ् कन्यक तानुं चोन्नाळ् । ३९
असुराचार्यनाय शुक्रन्टे मकळ् ञानो
मधुराकृते देवयानियेन्नल्लो नामम् । ४०
कूपत्तिल्वीळ्वानुळ्ळ कारणमतुं चोन्नाळ् ।
तापसकुलवरबालिकयतुनेरम् । ४१
पुञ्चिरिकलर्न्नवळ् कुन्पिट्टुनिन्नुचोन्नाळ्
अेन्चेविकळुमिप्पोळोन्निनुण्टुळरुन्नु । ४२
कूपत्तिल् पतितयाय् तापत्तिल् मुळ्कुमे-
न्नापत्तु केट्टुत्तोरु मानुषनाय भवान् ४३
आरेन्नतरिकयिलाग्रहमुण्टु पारं ।
नेरे चोल्लुकवेणमेन्नतु केट्टु नृपन् ४४
मन्दहासवुं चेय्तु कन्यकारत्नमाय
सुन्दरीतन्नोटनुनन्दिच्चु चोल्लीटिनान् । ४५
अहितकुलकालनाकिय नरवीरन्
नहुषन्तन्टे मकनाकिय ययाति ञान् । ४६
अतुकेट्टोरु दीर्घश्वासवुंपूण्टु चोन्नाळ्
मतिनेर्मुखियाय देवयानियुमप्पोळ् । ४७

कारण है, तुम्हारा गोत्र और नाम क्या है, परमार्थ में तुम्हारे पिता कौन हैं, और तुम्हारी माता कौन हैं, तथा कुएँ में गिर जाने का क्या कारण है?" राजा के पूँछने पर कन्या ने उत्तर दिया—"असुरों के आचार्य शुक्र की मैं पुत्री हूँ। हे सुन्दर आकृतिवाले ! मेरा नाम देवयानी है"। तापस-कुल की उस बालिका ने कुएँ में गिरने का कारण भी कहा। ३६-४१ वह हाथ जोड़कर मुस्कराती हुई बोली—"मेरे कान अब एक बात के लिए तरस रहे हैं। मेरी यह जानने की बड़ी इच्छा है कि आप कौन मानव हैं, जिन्होंने कुएँ में गिरी हुई और दुःखों में डूबी हुई मेरे दुःख को दूर किया ? जल्दी बतलाइए"। यह सुनकर भूपति मन्द हास करके उस सुन्दरी कन्यारत्न के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए बोले—"मैं शत्रुओं के अन्तक, नरवीर नहुष का पुत्र ययाति हूँ"। यह सुनकर दीर्घ निश्वास लेती हुई चन्द्रमुखी देवयानी ने कहा—"आपने जो मेरा हाथ पकड़ा था[1] उसमें कोई

१ कुएँ से उद्धारने के समय ।

कुट्मल्लेतुमेन्टो कै पिटिच्चतिनिनि
मट्टोरु पुरुषने कोळ्ळरुतेन्नेयुळ्ळु । ४८
विधिच्चवण्णंतन्ने वेट्टुकोळ्ळुकवेण्टु
विधिच्चतोळ्ळिञ्ञुण्टो वरुन्नु निरूपिच्चाल् । ४९
ॲन्नतु केट्टु नृपन् कन्यकयोटु चोन्नान्
मन्नवर्क्कुचितमल्लिन्नु नी चोन्नतेटो । ५०
मानवाद्यष्टादशस्मृतिकळेल्लाट्टिलु-
मानुलोम्यमे विधियुळ्ळतु वेदत्तिलु । ५१
प्रातिलोम्यत्तिनेरेप्पापमुण्टेन्नु नूनं
पातिव्रत्यत्तिल् निष्ठ पारमुण्टेन्नाकिलुम् । ५२
अन्योन्यमनुरागंकोण्टतु चेय्तीटिलुं
निन्नुटे जनकनेप्पेटिक्कवेणमल्लो । ५३
पावकायुधकाकोळादिकळेल्लाट्टिलु-
मावोळं पेटिक्केणं विप्ररे मरोहरे ! ५४
इच्चोन्न वस्तुक्कळालोरुत्तन् मुटिञ्ञीटुं
निश्चयं मरयवर् वंशमे मुटिच्चीटुम् । ५५
नीयिनियकत्तूट्टु पोयालुं मुनिकुल-
नायकनाय शुक्रन्तानिप्पोळ् वरुंमुन्पे । ५६
ॲन्नेल्लामुरचेय्तु मन्नवन्तानुं पोयान्
कन्यक दुःखिच्चोरु वृक्षत्तिन्कीळ्ळु निन्नाळ् ।५७

दोष नहीं है। इतना ही है कि अब मैं और किसी पुरुष को स्वीकार नहीं कर सकती। विधि के अनुसार अब विवाह कर लेना, यही शेष रह गया है। विचार किया जाय तो विधि ने जो चाहा वही अन्त में होगा"। ४२-४९

यह सुनकर राजा ने उस कन्या से कहा—"जो बात तुमने कही वह क्षत्रियों के लिए अनुचित है। मनुस्मृति आदि अठारह स्मृतियों में अनुलोम विवाह का ही विधान है। वेदों में भी यही स्थिति है। पातिव्रत्य में निष्ठा होने पर भी प्रतिलोम विवाह में निःसन्देह बड़ा पाप है। माना कि यह विवाह परस्पर अनुराग के कारण होगा, फिर भी तुम्हारे पिता से तो हमको डरना चाहिए। हे मनोहरे! पावकायुध, काकोळ विष आदियों से भी अधिक ब्राह्मणों से डरना चाहिए। क्योंकि ऊपर कही वस्तुएँ एक ही व्यक्ति का नाश करती हैं, पर ब्राह्मण तो निःसन्देह सारे वंश का नाश कर देते हैं। मुनिकुल के नायक शुक्र के आने से पहले तुम कृपया अन्दर चली जाओ"। ५०-५६

मुन्नमे नीळे नटन्नन्वेषिच्चवळु पो-
न्नन्नेरं देवयानितन्नेयुं कण्टाळल्लो । ५८
ऎन्तुण्णी मकळे नीयिङ्ङने निल्कुन्नतु ?
अन्तियुमायि तातन् काणाञ्ञु खेदिक्कुन्नु । ५९
पोरे नीयेन्नु केट्टु देवयानियु चॊन्नाळ् ।
पोरिकयिल्ल दनुजाधिपन् पुरत्तिङ्कल् ञान् । ६०
शर्म्मिष्ठ चॆय्तॊरु दुष्कर्म्मवुमऱियिच्चाळ्
धर्म्मिष्ठयायोरूर्ज्जस्वतीतन्नुटॆ मकळ् । ६१
अक्कथयॊक्कच्चेन्नु शुक्रनोटवळ् चॊन्नाळ्
दु:खिच्चु शुक्रन्तानुमप्पोळे पोन्नुवन्नान् । ६२
ऎन्तय्यो निनक्कु निर्ब्बन्धमुण्टायतॊरु-
बन्धमॆन्तिवट़िनु बन्धुरकळेबरे ! ६३
बन्धुक्कळोटु वैरं चिन्तिच्चीटरुतल्लो
सन्ततं वणक्कं नल्लन्धत्वं कळञ्ञालुम् । ६४
पैन्तेनिन्मॊळियाळे पोरिक वैकिक्कॆण्टा ।
पन्तेलुंमुलयाळुमुत्तरमुरचॆय्ताळ् । ६५
ऎन्तिनु तातनॆन्नोटित्तरं परयुन्नु
बन्धुशत्रूदासीनभेदमॊट्टऱिवन् ञान् ६६

यह सब कहकर राजा चले गये और वह कन्या एक वृक्ष के नीचे खड़ी रही। (धाय) जो पहले ही उसे ढूँढ़ती चलती थी उसने अब देवयानी को देखा। (और कहा—) "बेटी! तुम इस तरह यहाँ क्यों खड़ी हो? सांझ हो गयी है, तुम्हें न देखकर तुम्हारे पिता दु:खित हैं, चली आओ"। यह सुनकर देवयानी ने कहा—"मैं दानवों के राजा के नगर में नहीं आऊँगी, तत्पश्चात् शर्मिष्ठा ने जो दुष्कर्म किया था उसको धर्मिष्ठा ऊर्जस्वती[1] की पुत्री देवयानी ने बतलाया। उसने (धाय ने) जाकर सारा किस्सा शुक्र को सुनाया। तब दुखित होकर शुक्र तत्काल ही वहाँ पर चले आये। और कहा—"यह तुम क्या आग्रह कर रही हो? हे कोमल शरीरवाली! इसका कारण तो बतलाओ। ५७-६३ बन्धुओं के साथ वैर तो सोचना ही न चाहिए, हर अवस्था में विनय ही ठीक है, अपना अन्धत्व त्याग करो। मधुमय बात करनेवाली! साथ चलो, अब बिलम्ब मत करो"। तब कन्दुकसमानस्तनवाली देवयानी ने उत्तर दिया—"पिता जी! आप

१ प्रियव्रत और बर्हिष्मती की पुत्री और शुक्र की पत्नी।

महिमयिल्ला, कुलमाका, वृत्तियुं पोरा
सहिया शीलवुमेन्नुळ्ळिलुळ्ळवरुटे ६७
गृहत्तिलिरिक्कयिल् मरिक्कतन्ने नल्लू ।
सहिच्चीटुमो निन्दावचनादिकळेल्लां । ६८
पापिकळोटुचेर्न्नु वसिक्कुन्नवर्कळ्क्कुं
पापमेयुण्टाय्वरू केवलमरिञ्ञालुम् ६९
शुक्रनुं देवयानियाकिय पुत्रितानुं
सूक्तिकळ् परञ्ञतु विस्तरिच्चुरचेय्किल् ७०
एत्रयुं पेरुप्पमुण्टक्कथयिरिक्कट्टे
युक्तिकळ् मुट्टि शुक्रन्तनिक्कु नीतिकोण्टुम् । ७१
एन्मकळोटुकूटे ञानेन्नु कल्पिच्चुटन्
अम्मुनि वृषपर्व्वातन्नोटु यात्रचोल्वान् ७२
चेन्नप्पोळवस्थकळसुराधिपनरि-
ञ्ञेन्नाल् वेण्टुन्नतेन्तेन्नप्पोळे कालकल्वीणु । ७३
एन्नुटे मकळ्कूटातिविटेयिरिक्कयि-
ल्लिन्नवळ् वरुन्नाकिल् मटोन्नुं वेण्टतिल्ल । ७४
अन्नेरमसुरेन्द्रन् तान्तन्ने देवयानि
तन्नुटे कालकल्वीणान् कात्तुकोळ्केन्नुतन्ने ७५

मुझसे इस प्रकार क्यों कह रहे हैं ? बन्धु, शत्रु, उदासीन, इन तीनों में भेद मैं जानती हूँ । जिसकी कोई महिमा न हो, जिसका कुल ठीक न हो, जिसका बर्ताव अच्छा न हो, तथा जिसका शील सहा न जा सकता हो, ऐसे के घर में रहने से मर जाना ही ठीक है । निन्दा के वचन कैसे सहे जा सकते हैं ? जो पापियों के साथ रहते हैं जान लीजिए उनको भी पाप ही प्राप्त होता है" । ६४-६९ इस प्रकार शुक्र और उसकी पुत्री देवयानी ने आपस में जो बातें कीं वे अगर विस्तार से कही जायँ, तो किस्सा बहुत बड़ा हो जायगा । अस्तु । शुक्र को और कोई नैतिक युक्ति न सूझी । "मैं अपनी पुत्री का साथ न छोड़ूँगा" ऐसा निश्चयकरके मुनि जी वृषपर्वा से विदा लेने गये । तब असुराधिप सारी स्थिति समझ-कर गुरु के पैरों पड़े और बोले, "अब क्या करना चाहिए ?" शुक्र ने उत्तर दिया कि अपनी पुत्री के बिना मैं यहाँ नहीं रहूँगा । वह मेरे साथ आजाय, मुझे और कुछ नहीं चाहिए । तब असुरेन्द्र स्वयं देवयानी के पैरों पड़े और बोले, "मेरी रक्षा कीजिए" । ७०-७५ तब उसने कहा—

ऒॆङ्किलो निन्टॆ मकळाकिय शर्म्मिष्ठयुं
मंगलांगिकळाकुमायिरं दासिकळुं ७६
इन्नुतॊट्टिनिमेलिलॆन्नुटॆ दासिकळा-
यॆन्नोटुकूटॆत्तन्नॆ ञान् चॊल्लुन्नतुं केट्टु ७७
वाळुकिल् ञानो कूटिप्पोरामॆन्नरिञ्ञालुम् ।
दोषङ्ङळरियातॆ चॆय्तव सहिच्चीटा- ७८
मप्पोळॆ वृषपर्व्वावयच्चान् मकळॆयु-
मप्पुरिकुळलाळुमप्पोळॆ पोन्नुवन्नाळ् । ६९
दासिकळायिरवुं ञानुं नी चॊल्लुंवण्णं
दासिकळॆन्नु काल्क्कल् वीणितुशर्म्मिष्ठयुम् । ८०
ब्रह्मचर्यत्तोटिरुन्नीटुकायिरत्ताण्टु
निर्म्मर्यादं चॆय्ततिन् प्रायश्चित्तार्त्थमॆन्नाळ् । ८१
शुक्रनुं पुत्रितानुं दैत्यराजनुं पुन-
रुळ्क्कान्पु तॆळिञ्ञकंपुक्कितु राज्यं तन्निल् । ८२

देवयानीपरिणयम्

अङ्ङनॆ चिलकालं कळिञ्ञोरनन्तर-
मंगनाशिरोमणियाकिय देवयानि १

"जान लीजिए कि अगर आपकी पुत्री शर्मिष्ठा और उसकी एक हज़ार सुन्दरी दासियाँ आज से मेरी दासियाँ बनकर मेरे साथ रहकर मेरा कहना मानती रहेंगी तो मैं साथ चलूँगी। बिना दोष समझे जो किया गया उसको मैं क्षमा कर दूँगी"। वृषपर्वा ने तत्काल ही अपनी पुत्री को भेजा। वह भी तत्क्षण ही चली आयी। "मेरी एक हज़ार दासियाँ और मैं तुम्हारे कहे के अनुसार तुम्हारी दासियाँ हैं", यह कहकर शर्मिष्ठा पैरों पड़ी। देवयानी ने कहा, "एक हज़ार वर्ष ब्रह्मचर्य का पालन करती रहो। तुम्हारे मर्यादोल्लंघन का यही प्रायश्चित्त है"। शुक्र, उसकी पुत्री और दैत्यराज सब प्रसन्न हुए और राज्य में अपने-अपने घर चले गये। ७६-८२

देवयानी परिणय

कुछ दिन इस प्रकार बीतने के बाद महिलाओं की शिरोमणि देवयानी शर्मिष्ठा और अपनी एक हज़ार दासियों के साथ विनोद के लिए स्वेच्छानुसार उद्यानों में घूमने लगी। जब वे शहद का मद्य पीती हुईं, उत्साह

शर्म्मिष्ठयोटुं दासीसहस्रत्तोटुं कूटॆ
नर्म्मार्त्थं यथाकामं पोयितारामंतोरुम् । २
माधवमाय मधुपानवुं चॆय्तानन्दि-
च्चादरवोटुमाटिप्पाटि वाणीटुन्नॊरं ३
दाहमुळक्कॊण्टु मृगयापरिश्रमत्तोटुं
नाहुषनाय नृपन् काननंपुक्कानन्नु । ४
कण्टितु कळिक्कुन्न कन्यकाजनत्तॆयु-
मुण्टतिल् प्रधानियायॊरुत्तियवळुटॆ ५
पादवुं तलोटिक्कॊण्टाभरणादि मणि-
दीधितियोटुकूटॆक्काणायितॊरुत्तियॆ । ६
चोदिच्चान् नृपवरन् निङ्ङळारिरुवरुं ?
मोदत्तोटुरचॆय्तु देवयानियुमप्पोळ् । ७
शुक्रमामुनियुटॆ पुत्रि ञान् देवयानि
चॊल्कॊण्ट दनुजेन्द्रन् वृषपर्व्वाविन् मकळ् । ८
शर्म्मिष्ठयायतिवळॆन्नुटॆ दासियल्लो ।
निर्म्मलाङ्गिकळ् मट्टुळ्ळवरुं दासीवर्ग्गम् । ९
मुट्टुमॆन्नोटुकूटॆप्पोरुमिन्निवरॆल्लां
मट्टारुमुटयवरिल्लॆन्नु धरिच्चालुम् । १०
अतु केट्टवनीशनवळोटुरचॆय्ता-
नतुलगुणमुळ्ळोरिवळॆङ्ङनॆ निन्टॆ ११
दासियाय् चमञ्ञवारॆङ्ङनॆ पऱकॆटो ।
हासमोटतु केट्टु देवयानियुं चॊन्ना- १२

के साथ नाचती, गाती हुईं, आनन्द करती थीं, तब राजा नहुष (ययाति) शिकार के परिश्रम से प्यासे होकर वन में प्रविष्ट हुए। उन्होंने खेलती हुई कन्याओं के समूह को देखा। उनमें एक कन्या प्रधान थी जिसके पैर दबाती हुई और आभूषणों की किरणों से चमकती हुई एक दूसरी कन्या भी दिखाई दी। १-६ नृपवर ययाति ने पूछा—"आप दोनों कौन हैं" ? तब देवयानी ने प्रमोद के साथ उत्तर दिया—"मैं हूँ महामुनि शुक्र की पुत्री देवयानी और यह है प्रसिद्ध दनुजेन्द्र वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा जो मेरी दासी है। और सब ललनायें मेरी दासियाँ हैं। वे सब मेरे साथ चली जायेंगी। और कोई स्वामी यहाँ नहीं है, जान लीजिये।" यह सुनकर राजा ने कहा—"असीम गुणवाली यह कैसे तुम्हारी दासी

ळीश्वरमतमॆल्लामार्क्कुपोलऱियावि-
ताश्चर्यं तोन्नीटुवानॆन्तितिलितुकालम् । १३
केळ्क्कणमल्लो भवानारॆन्नतिनिक्किप्पोळ्
भोष्कल्ल राजश्रेष्ठनॆन्नु तोन्नीटुं कण्टाल् । १४
ऎङ्किलङ्ङनॆतन्ने भूपति ययाति, ञान्
पङ्कजविलोचने नहुषात्मजनल्लो । १५
ऎङ्किल् नीयॆन्ने वेट्टुकॊळ्ळुक मटियाते
सङ्कटमॆल्लां तीरुं संशयमुण्टाकेण्टा । १६
मन्नवनतु केट्टु पिन्नॆयुमुरचॆय्तु ।
कन्यकातिलकमे ! धन्ये ! केळ् मनोरमे ! १७
सिद्धमल्लयो निनक्केतुमे शुक्रन्तन्टॆ-
पुत्रियॆन्नॆनिक्केतुं तोन्नीतिल्लिप्पोळॆटो । १८
पतिता परभार्या भगिनी सगोत्रयुं
विधवाकुलंतन्निलेऱिय नारितानुं १९
सर्व्वसङ्गङ्ङळिलुं निवृत्तिवन्नवळुं
सर्व्वलोकङ्ङळालुं निन्द्ययायुळ्ळवळुं २०
तन्नुटॆ मकन् वेट्ट तन्वियुं स्वतन्त्रयुं
ऒन्नुं कॊण्टीटुमारिल्लॆन्नल्लो विधियिप्पोळ् । २१

हुई, यह मुझे बतलाओ।" यह सुनकर देवयानी हँसती हुई बोली—७-१२ "ईश्वर का अभिप्राय कौन जान सकता है? आप को यह आश्चर्य क्यों लगता है? मुझे तो यह जानने की इच्छा है कि आप कौन हैं? दिल्लगी नहीं, आप देखने में एक राजवर लगते हैं।" राजा ने कहा "यह ठीक है, हे कमलनयने! मैं राजा ययाति हूँ, नहुष का पुत्र।" अगर ऐसा है तो बिना संकोच के मुझसे विवाह करो। मेरा सब दुःख दूर हो जायगा। इसमें सन्देह नहीं।" राजा ने यह सुनकर फिर कहा—हे कन्यकातिलक! धन्ये! मनोरमे! सुनो। १३-१७ "तुम तो शुक्र की पुत्री हो, इसलिए तुम्हारे लिए सब सिद्ध ही है। मुझे तो अब कुछ भी नहीं सूझता। पतिता, परस्त्री, बहिन, अपने गोत्र की स्त्री, जो नारी विधवा हो गयी हो, जो सभी सङ्गो से विरक्त हो गयी हो, जो सारे संसार की निन्द्य हो, अपनी पुत्रवधू तथा स्वतन्त्र स्त्री, इनमें कोई भी, विधि के अनुसार, स्वीकार योग्य नहीं है। १८-२१

शराघाते शोणिते भासिला रघुनाथे ❋ जेन सूर्यपात ह'ये पड़िल भूमिते
पड़िलेन रामचन्द्र, सर्ब्बजन देखे ❋ मुखेते उठिल रक्त झलके झलके
ब्यथा संवरिया राम जुड़िलेन बाण ❋ वीरबाहुर काटिते चाहेन धनुखान
तीक्ष्ण बाण मारे राम धनुक काटिते ❋ धनुके ठेकिया बाण पड़े एक भिते
वीरबाहु बले, अवधान रघुनाथ ❋ आमार धनुके मिथ्या करिछ आघात
धनुक काटिते ना पारिबे रघुनाथ ❋ वीरबाहु कहितेछे करि जोड़हात
अक्षय धनुक आमि करियाछि हाते ❋ त्रिभुवने कार साध्य, के पारे काटिते
धनुः काटा नाहि गेल, श्रीराम लज्जित ❋ अर्द्धचन्द्र-बाण राम जुड़ेन त्वरित
एड़िलेन बाण राम तारा जेन छुटे ❋ सेइ बाणे वीरबाहुर धनुर्ब्बाण टुटे
धनुर्ब्बाण गेल, वीरबाहुर उल्लास ❋ एत दिने बुझि वा पूरिल मनो-आश
मने जानिलाम, आज नाहि अब्याहति ❋ श्रीरामेर बाणे प'ड़े पाइब निष्कृति
एकमने वीरबाहु करिछे स्तवन ❋ धनुर्ब्बाण काटा गेल, अवश्य मरण
धनुः काटा गेल, वीर आर धनु लय ❋ शरजाल-बाण एड़े रावण-तनय
बाणे आच्छादिल रघुनाथ-कलेवर ❋ बाण खेये रघुनाथ हइल फाँफर
मने मने रघुनाथ करि अनुमान ❋ ऐषिक बाणेते राम पूरिला सन्धान

श्रीराम के वक्ष में बज्र के समान वे दसों बाण बिंध गये। बाणों के आघात से रघुनाथ रक्त से सराबोर हो गये। ऐसा लगा मानों सूर्य का पतन हो गया है और वह भूमि पर गिर पड़ा है। सभी लोगों ने देखा कि रामचन्द्र गिर पड़े और उनके मुँह से भल-भल खून निकलने लगा। पीड़ा को सहकर राम ने एक बाण साधा। उन्होंने वीरबाहु का धनुष काटना चाहा। धनुष से टकरा कर बाण एक ओर गिर पड़ा। वीरबाहु ने कहा, रघुनाथ सुनो, तुम नाहक मेरे धनुष पर चोट कर रहे हो, मेरे धनुष को तुम नहीं काट सकते। वीरबाहु ने हाथ जोड़ कर कहा, मैंने हाथों में अक्षय धनुष ले लिया है। त्रिभुवन में कौन है जो उसको काट सके। जब धनुष नहीं काटा जा सका तो श्रीराम अत्यन्त लज्जित हुए। राम ने तुरन्त ही अर्धचन्द्र बाण साधा। जब राम ने बाण फेंका तो वह नक्षत्र सा लपका। उसी बाण से वीरबाहु के धनुष-बाण कट गये। जब धनुष-बाण गिर गये तो वीरबाहु उल्लसित हो उठा। उसने सोचा शायद इतने दिनों में मेरे मन की अभिलाषा अब पूरी होगी। मन ही मन मैंने यह जान लिया कि आज मेरा कोई बचाव नहीं, श्रीराम के बाणों से मर कर मुक्ति मिलेगी। एकाग्र मन होकर वीरबाहु स्तुति करने लगा, और कहा कि धनुष टूट गया तो अब मृत्यु अवश्यम्भावी है। जब धनुष टूट गया तो वीर ने दूसरा धनुष ले लिया। रावण-तनय के फेंके हुए बाणों के समूहों से रघुनाथ का सारा शरीर ढक गया। बाणों से घायल होकर रघुनाथ जरा किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। मन ही मन अनुमान लगाकर

श्रीराम ऐषिक बाण बसाइल चापे ❋ राक्षसेर बाण काटिलेन वीर-दापे
श्रीराम काटेन बाण मनेर कौतुके ❋ दाण्डाय बानर-गण दूर हैते देखे
राम बले, वीरबाहु, तुमि बड़ वीर ❋ तव बाणे मम सैन्य ना हय सुस्थिर
वीरबाहु बले, राम, क्षणेक थाकह ❋ यत दु:ख दिले, तार प्रतिफल लह ३०५
राक्षसेर वाक्य शुनि कुपिया लक्ष्मण ❋ राक्षस उपरे करे बाण-बरिषण
लक्ष्मणेर बाणे वीरबाहु क्रोधान्वित ❋ एड़िल दुर्ज्जय बाण, अग्नि प्रज्वलित
चलिल लक्ष्मण-बाण तारा हेन छुटे ❋ सेइ बाणे राक्षसेर अग्निबाण काटे
पञ्चबाण लक्ष्मण जे जुड़िला धनुके ❋ सन्धान पूरिया मारे वीरबाहु-बुके
बाणाघाते वीरबाहु हइल कम्पित ❋ लक्ष्मण उपरे मारे बाण आचम्बित
अष्टबाण वीरबाहु जुड़िल धनुके ❋ सन्धान पूरिया मारे लक्ष्मणेर बुके
वीरबाहु-बाण लक्ष्मणेर फुटे बुके ❋ घुरिया पड़िल बीर, रक्त उठे मुखे
कतक्षणे लक्ष्मण हइल सचेतन ❋ पुनरपि दुइजने हैल महारण
लक्ष्मणे मारिते वीरबाहु करे मति ❋ वायुवेगे चालाइया हस्ती शीघ्रगति
आइसे दुर्ज्जय हस्ती त्वरित-गमन ❋ लक्ष्मणे मारिल जाठा रावण-नन्दन
अति वेगे एड़े जाठा, चले शीघ्रगति ❋ देखिया चिन्तित बड़ हैला दाशरथि

रघुनाथ ने धनुष पर ऐषीक बाण साधा। श्रीराम ने धनुष पर ऐषीक बाण चढ़ाया और राक्षस के बाण काट डाले। हँसीखेल में राम ने राक्षस के बाण काट डाले, दूर खड़े हुए बन्दरों ने यह सब देखा। राम ने कहा, वीरबाहु तुम बड़े वीर हो, तुम्हारे बाणों से हमारी सेना स्थिर नहीं रह पाती। वीरबाहु ने कहा, राम तनिक देर ठहरो, जितना दुख दिया है उसका बदला तो ले लो ॥ ३०५ ॥

राक्षस की बात सुनकर लक्ष्मण को क्रोध आ गया। वह राक्षस पर बाण बरसाने लगे। लक्ष्मण के बाणों से वीरबाहु क्रोधित हो उठा और उसने प्रज्वलन्त अग्नि वाला दुर्जय बाण फेंका। लक्ष्मण का बाण भी नक्षत्र सा लपका—उसी बाण से राक्षस का अग्निबाण कट गया। लक्ष्मण ने धनुष पर पंचबाण साधा और वीरबाहु के वक्षस्थल का निशाना साध कर फेंका। बाण के आघात से वीरबाहु काँपने लगा। उसने भी तुरन्त लक्ष्मण पर बाण फेंका। वीरबाहु ने धनुष पर अष्टबाण चढ़ाया और लक्ष्मण के वक्षस्थल को लक्ष्य कर फेंका। वीरबाहु का बाण लक्ष्मण के सीने में चुभ गया। वीर चक्कर खाकर गिर पड़े और उनके मुँह से खून निकलने लगा। थोडी ही देर में लक्ष्मण होश में आये तो फिर दोनों में महारण छिड़ गया। वीरबाहु ने लक्ष्मण को मारने का निश्चय कर लिया—उसने हाथी को पवन-वेग से दौड़ाया। दुर्जय हाथी तेज चाल से आ पहुँचा और रावण-नन्दन ने लक्ष्मण पर जाठा फेंका। यह देखकर दाशरथि राम बड़े चिन्तित हो गये। राम

जाठार उद्देशे राम एड़िलेन बाण ❊ तिन बाणे जाठार करिला खान खान
जाठारे काटिया राम राखिल लक्ष्मण ❊ डाक दिया बले तबे रावण-नन्दन
साक्षी हओ जाम्बवान्, खुड़ा विभीषण ❊ साक्षी हओ कपिगण पवन-नन्दन
क्षत्रियेरे धर्म्म एइ युद्धे आछे पण ❊ जार संगे युद्ध करे, मारे सेइ जन
आमि जाठा मारिलाम लक्ष्मण-उपरे ❊ तुमि केन से जाठा काटिले अविचारे
एकेर संगेते युद्धे अन्ये देन हाना ❊ धर्म्मशास्त्रे तारे नाहि बले वीरपणा ६
श्रीराम बलेन, शुन रावण-नन्दन ❊ लक्ष्मणे आमाते भिन्न बले कोन् जन
वीरबाहु बले, राम, आमि ताहा जानि ❊ ब्रह्माण्डे तोमाते भिन्न आछे कोन प्राण
वीरबाहु-वाक्य शुनि, लज्जित श्रीराम ❊ पुनरपि दुइजने बाधिल संग्राम
गगन छाइया दोंहे बाण-बरिषण ❊ बाणे बाणे काटाकाटि, उठे हुताशन
दशबाण रघुनाथ जुड़िला धनुके ❊ वज्रसम बाजे बाण वीरबाहु,बुके
बुके बाण बाजे, रक्त उठे अनिवार ❊ अचैतन्य ह'ये पड़े रावण-कुमार
रक्तधारे वीरबाहुर भासे कलेवर ❊ गड़ागाड़ि जाय वीर गजेर उपर
वीरबाहु ल'ये गज उठिल गगन ❊ जोड़ हाते श्रीरामेरे बलेन लक्ष्मण
लक्ष्मण बलेन, प्रभु, करि निवेदन ❊ ब्रह्म-अस्त्र मेरे ओर बधह जीवन

ने जाठा के काटने के उद्देश्य से बाण फेंके और तीन बाणों से जाठा को खंड-खंड कर डाला। जाठा काटकर राम ने लक्ष्मण को बचा लिया। तब रावण-नन्दन ने गुहार कर कहा, हे जाम्बवान, हे चाचा विभीषण, तुम लोग सब गवाह हो। हे पवन-नन्दन और दूसरे कपि, तुमलोग भी साक्षी हो। क्षात्र-धर्म में युद्ध की शर्त्त यह है कि जिसके साथ युद्ध होता है वही मारता है। मैंने लक्ष्मण पर जाठा मारा, तुमने क्यों अन्याय पूर्ण ढंग से उस जाठा को काट डाला। एक के साथ लड़ाई छिड़ी हुई हो और दूसरा आकर उसमें हमला बोल दे तो यह कोई दिलेरी नहीं है॥ ३०६॥

श्रीराम ने कहा, हे रावण-नन्दन सुनो, मुझमें और लक्ष्मण में भेद है यह कौन बताता है। वीरबाहु ने कहा, राम, यह मुझको भलीभाँति मालूम है कि इस ब्रह्मांड में कौन सा प्राणी तुमसे भिन्न है। वीरबाहु के वाक्य सुन कर श्रीराम लज्जित हो गये। फिर दोनों में संग्राम छिड़ गया। दोनों की बाण-वर्षा से आकाश छा गया। बाण से बाण टकरा कर चिनगारियाँ निकलने लगीं। रघुनाथ ने धनुष पर दस बाण चढ़ाये, वीरबाहु के वक्ष पर वे वज्र के समान जा लगे। सीने पर बाण लगे और मुँह से निरन्तर खून निकलने लगा। रावणकुमार वीरबाहु अचेतन हो गया, उसका सारा शरीर खून से लथपथ हो गया और हाथी पर लोट-पोट खाने लगा। तब वीरबाहु को लेकर गज गगन पर चढ़ गया। लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर श्रीराम से कहा, प्रभो, मेरा निवेदन है कि ब्रह्म-अस्त्र मार कर इसके प्राण ले लो। राम ने

राम बले, ए बेटा राक्षस-महावीर ❋ धर्म्मेते धार्म्मिक बड़ सुबुद्धि-सुधीर
करिया अन्याय युद्ध ना मारि उहारे ❋ मारिब धर्म्मतः जुद्धे वीरबाहु-वीरे७
कतक्षणे राक्षस हइल अचेतन ❋ हरिष हइया वीर कहिछे तखन
आरबार एस देखि रणेर भितर ❋ जानिलाम वीर बट तुमि रघुवर८
एत बलि धनुक धरिल बाम करे ❋ देखिया रुषिल तबे सुग्रीव-वानरे
सुग्रीव बलेन, शुन जगत्-गोसाँइ ❋ शुनियाछि हस्ति-संगे, इहार प्रमाइ
हस्ती मैले वीरबाहु मरिबे निश्चय ❋ हस्तीरे मारिया कर राक्षसेर क्षय
एत बलि सुग्रीव पवन-गति धाय ❋ दूरे थाकि पाथर से देखिवारे पाय
दश योजन पाथर तुलिया निल हाते ❋ दानवे रुषिला जेन देव जगन्नाथे
वीरदर्प करि वीर हानिल पाथर ❋ दन्त दिया पाथर धरिल गजवर
खान खान करिलेक दन्तेर ताड़ने ❋ शालगाछ सुग्रीव उपाड़े एकटाने
दुर्ज्जय से शालवृक्ष विंशति योजन ❋ बृक्षेर छायाते ढाके सूर्य्येर किरण
पाथर हइल ब्यर्थ, सुग्रीव लज्जित ❋ हानिलेक शालगाछ हइया कुपित
गजेर माथाय मारे दुहातिया बाड़ि ❋ हस्तीर माथाय गाछ ह'ये गेल गुँड़ि

कहा, यह राक्षस महान् वीर, धार्मिक, बुद्धिमान् और सुधीर भी है। अन्यायपूर्ण युद्ध कर मैं इसको नहीं मारूँगा। वीर वीरबाहु को मैं धर्मयुद्ध में ही वध करूँगा ॥ ३०७ ॥

जब कुछ देर में राक्षस सचेतन हुआ तो उसने हर्ष से राम को ललकारा, हे रघुवर, यह मालूम हो गया कि तुम वीर हो, आओ फिर रण में आओ ॥ ३०८ ॥

इतना कहकर उसने बाएँ हाथ में धनुष ले लिया। यह देखकर वानर सुग्रीव को क्रोध आ गया। सुग्रीव ने कहा, हे जगत् के स्वामी सुनो, मैंने सुना है कि इस हाथी के साथ इसकी आयु बँधी है। हाथी के मरने पर ही वीरबाहु मरेगा। हाथी को मार कर राक्षस का निधन करो। यह कहकर सुग्रीव पवन-गति से दौड़ पड़ा। दूर रहकर ही उसने एक पत्थर देख लिया। दस योजन वाला वह पत्थर उसने हाथों में उठा लिया। मानों देव जगन्नाथ दानवों पर रुष्ट हो गये हों, इस प्रकार वीर सुग्रीव ने बड़े ही वीरदर्प के साथ पत्थर फेंका। गजराज ने उस पत्थर को अपने दाँतों से पकड़ लिया और दाँतों के प्रहार से ही उसको चूर-चूर कर डाला। फिर सुग्रीव ने एक साखू का वृक्ष खींच कर जमीन से उखाड़ लिया। बीस योजन लम्बा वह साखू का वृक्ष अपनी छाया से सूर्य की किरणें ढके हुए था। पत्थर जब व्यर्थ गया तो लज्जित होकर सुग्रीव ने वह साखू दोनों हाथों से पकड़कर उसने गज के माथे पर दे मारा; किन्तु गज के माथे से टकराकर पेड़ खंड-खंड हो गया। हाथी ने सुग्रीव को अपनी सूँड़ में लपेट लिया और उठाकर जमीन

शुण्डे जड़ाइया हस्ती सुग्रीवेरे धरे ❋ आछाड़ मारिया तार अस्थि चूर्ण करे
भूमेते पड़िया राजा करे धड़फड़ ❋ देखिया वानर-गण उठे दिल रड़
मुखे रक्त उठे राजार झलके-झलके ❋ सुग्रीव मरिल बलि कपिगण डाके९
अनेक यतने राजा पाइल चेतन ❋ रामेरे डाकिया बले रावण-नन्दन
एकजन उपरेते दुइजन रोषे ❋ धर्म्म नाहि सहे ताहा, मरे निज दोषे
तुमि आमि युद्ध करितेछे दुइ जना ❋ बानरा आसिया केन माझे दिल हाना
बनपशु, युद्धे किन्तु आम्बा देखि बाड़ा ❋ सेइ पापे हस्तीते आछाड़े करे गुँड़ा१०
वीरबाहु-वाक्येते लज्जित रघुवर ❋ ईषत् हासिया राम करेन उत्तर
बनेते लक्ष्मण छिल ह'ये ब्रह्मचारी ❋ शूर्पणखा राँड़ि गेल वर-वाञ्छा करि
सेइ दोषे नाक कान काटिल लक्ष्मण ❋ बिधवार धर्म्म भाल करिल पालन
तोर पिता रावणेर एक लक्ष बेटा ❋ चौद्द हाजार नारी तार, विभा कैल कटा
परम पातकी बेटा लङ्का-अधिकारी ❋ जन्मावधि चुरि क'रे आने पर-नारी
ज्येष्ठ भाइ कुबेर धनेर अधिपति ❋ तार बधु हरिया आनिल पापमति
ब्रह्म-अंशे जन्म देख यत निशाचर ❋ खाइया मानुष पशु पूरये उदर

पर पटक दिया। सुग्रीव की हड्डियाँ चूर-चूर हो गईं और जमीन पर पड़ा-पड़ा राजा सुग्रीव छटपटाने लगा। राजा सुग्रीव के मुँह से भल-भल खून निकलने लगा, यह देखकर सारे वानर भाग खड़े हुए। सारे कपि यह कहकर चिल्लाने लगे कि सुग्रीव मर गया॥ ३०६॥

बहुत काफी यत्न करने के उपरान्त राजा (सुग्रीव) होश में आया। रावण-नन्दन ने राम को पुकार कर कहा, एक व्यक्ति पर दो जने मिलकर हमला करते हो, धर्म इस बात को सहन नहीं कर सकता, यह अपने दोष से ही मर रहा है। तुम और मैं युद्ध कर रहा हूँ इसके बीच में यह वानर आकर क्यों टूट पड़ा। यह जंगल का जानवर है किन्तु युद्ध करने में बड़ी स्पर्धा रखता है—इसी पाप के कारण हाथी ने उसको पटक कर चूर-चूर कर डाला है॥ ३१०॥

वीरबाहु के वाक्य से रघुवर लज्जित हुए और मुस्कराकर उत्तर दिया, वन में लक्ष्मण ब्रह्मचारी बना रह रहा था, विधवा सूर्पनखा उसके पास पति की अभिलाषा लिए गई। उसी दोष से लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिये। विधवा का धर्म सूर्पणखा ने खूब पालन किया। तेरे पिता रावण के एक लाख बेटे हैं। चौदह हजार उसकी नारियाँ हैं—इसमें कितनी नारियों से उसने विवाह किया है। यह लंका का अधिकारी परम पापी है, आरम्भ से ही यह पर-नारियों को चुरा-चुरा कर लाने लगा। इसका बड़ा भाई कुबेर धन का अधिपति है उसी की पत्नी को यह पापिष्ठ पकड़कर ले आया। ब्रह्म-अंश से जन्म लेकर भी ये सारे निशाचर, मनुष्य और पशुओं

एत दिने लङ्कापुर पापे हैल पूर्ण * पाठाइब यमालये, हबे दर्प चूर्ण११
एतेक बलिया राम पूरये सन्धान * मारिला राक्षस-गणे शत शत बाण
मारिया रामेर बाण वीरबाहु वीर * शत शत बाणे बिन्धे रामेर शरीर
बाणे बाणे काटाकाटि करे दुइ जन * अग्निमय बाण मारे रावण-नन्दन
बाणेर मुखेते अग्नि पर्व्वत-प्रमाण * वीरबाहु-बाणे राम हइला अज्ञान
सम्मुख-युद्धेते राम हइल मूर्च्छित * देखिया बानर-गण हइल चिन्तित१२
शीघ्रगति आसिया राक्षस विभीषण * श्रीरामेर धनुर्ब्बाण ल'ये करे रण
पञ्च-बाण विभीषण जुड़िल धनुके * सन्धान पूरिया मारे वीरबाहु-बुके
बाणेर उपरे बाण एड़े विभीषण * फाँफर हइल डरे रावण-नन्दन
बाणे भीत वीरबाहु चाहे चारि भिते * राम-मूर्च्छा, केवा बाण मारे आचम्बिते१३
हेनकाले देखे वीर खुड़ा विभीषण * वीरबाहु बले, खुड़ा, सार्थक जीवन
वंश-चूड़ामणि तुमि आछ एकजन * देव-द्विज-गुरु-भक्त बुद्धे विचक्षण
कुले एकजन ह'ले विष्णुते भकति * सकल पुरुष तार पाय दिव्य गति
परम-पुरुष राम ब्रह्म सनातन * सकलि त्यजिला तुमि रामेर कारण
तोमार चरणे खुड़ा करि दण्डवत् * आशीर्व्वाद कर, येन पूरे मनोरथ

का भक्षण कर पेट भरते हैं। इतने दिनों में लंका पाप से भर गई, अब रावण को यमालय भेजकर उसके दर्प को चूर-चूर करूँगा ॥ ३११ ॥

इतना कहकर राम ने धनुष-बाण साधा और राक्षसों पर सैकड़ों बाण फेंके। राम के बाणों से निबटकर वीरबाहु ने सौ-सौ बाणों से राम का शरीर छेद दिया। दोनों जने एक दूसरे के बाणों को बाणों से काटने लगे। रावण-नन्दन ने एक अग्निमय बाण फेंका। उस बाण के मुख पर पर्वत के समान आग थी। वीरबाहु के बाण से राम अचेतन हो गये। सम्मुख-युद्ध में राम अचेतन हो गये यह देखकर सारे वानर बड़े चिन्तित हुए ॥ ३१२ ॥

तब फौरन राक्षस विभीषण ने आकर श्रीराम का धनुष-बाण ले लिया और युद्ध करने लग गया। धनुष पर विभीषण ने पंचबाण चढ़ाया और निशाना साध वीरबाहु के वक्ष पर मारा। विभीषण बाण पर बाण चलाने लगा तो रावण-नन्दन घबरा गया। बाणों से डर कर वह चारों तरफ देखने लगा कि राम तो अचेतन हो गया है अब यह अचानक बाण कौन चलाने लग गया ॥ ३१३ ॥

इतने में ही उस वीर ने देखा कि यह तो चाचा विभीषण हैं। वीरबाहु ने कहा, चाचा, मेरा जीवन आज सार्थक हो गया। तुम ही एक वंश के चूड़ामणि हो, देव-द्विज-गुरु के भक्त हो और बुद्धि में भी विचक्षण हो। सारे वंश में यदि एक भी व्यक्ति विष्णु-भक्त हो जाय तो सारी पीढ़ी को दिव्य-गति प्राप्त हो जाती है। राम परम पुरुष हैं और सनातन ब्रह्म हैं। उन्हीं

विभीषण बले, बाछा, तुमि भाग्यवान् ❊ तोमार चरित्र बाछा ना हय बाखान १४
एइरूपे दुइजने कथोपकथन ❊ हेनकाले रघुनाथ पाइला चेतन
पुनरपि संग्राम बाजिल दुइजने ❊ बाणे बाणे काटाकाटि उठिल गगने
दुइजने बाण मारे, जार जत शिक्षा ❊ प्राणपणे एड़े बाण नाहि लेखा-जोखा
अमर्त्य समर्थ बाण, बाण-महाबल ❊ विष्णुजाल अग्निजाल बाण-कालानल
वरुणमुख उल्कामुख अति शरखान ❊ ग्रहादि नक्षत्र रुद्र ज्योतिर्मय बाण
शिलीमुख सूचीमुख घोर-दरशन ❊ सिंहदन्त वज्रदन्त बाण-बिरोचन
रिपुहन्ता बिश्वहन्ता बिपक्ष-संहार ❊ चन्द्रमुख सूर्यमुख बाण-सप्तसार
कालदण्ड यमदण्ड बाण-कर्णिकार ❊ इन्द्रजाल ब्रह्मजाल बाण-शतधार
गरुड़ असुर-मुख हंस-मुख बाण ❊ धूम्रमुख कूर्म्ममुख शमन-समान
नील हरिताल बाण बिकट-दशन ❊ बिलाप प्रलाप बाण महा-पद्मासन
भयंकर दुष्कर कामिनी-मनोहर ❊ पाशुपत हयग्रीव देखिते सुन्दर
कुबेर पवन अस्त्र अति खरशाण ❊ नवघन उल्का-बाण के करे बाखान
शोषक-पोषक बाण अंग जे बिभंग ❊ त्रिशूल-अंकुश बाण विह्वल मातंग
विकट-संकट बाण सार्थक पथिक ❊ माल्यवान् हीरावन्त शारंग ऐषीक

के कारण तुमने सब कुछ त्याग दिया। चचा! मैं तुम्हारे चरणों में प्रणाम करता हूँ। यह आशीर्वाद दो कि मेरी मनोकामना पूर्ण हो जाय। विभीषण ने कहा, बेटा तुम भाग्यवान् हो, तुम्हारा चरित्र बखाना नहीं जा सकता ॥ ३१४ ॥

इस प्रकार दोनों में बातचीत हो ही रही थी कि रघुनाथ होश में आ गये। फिर दोनों में संग्राम ठन गया। गगन में दोनों के बाण एक दूसरे से टकराने लगे। अपनी-अपनी शिक्षा के अनुसार दोनों बाण फेंकने लगे। प्राणपण से दोनों अनगिनती बाण चलाने लग गये। अमर्त्य, समर्थ बाण, महाबल बाण, विष्णुजाल, अग्निजाल, कालानल बाण, वरुणमुख और उल्कामुख जैसे तीखे बाण, ग्रहादि, नक्षत्र, रुद्र नामक ज्योति से पूर्ण बाण, विकट दिखने वाले शिलीमुख, सूचीमुख बाण और सिंहदन्त, वज्रदन्त और विरोचन बाण, रिपुहन्ता, विश्वहन्ता, विपक्ष-संहार, चन्द्रमुख, सूर्यमुख, सप्तसार नामक बाण, कालदंड, यमदंड, कर्णिकार, इन्द्रजाल, ब्रह्मजाल, शतधार नामक बाण, गरुड़ बाण, असुर-मुख, हंस-मुख नामक बाण, धूम्रमुख, कूर्ममुख जैसे यम के समान बाण, विलाप, प्रलाप, महापद्मासन, भयंकर, दुष्कर, कामिनी-मनोहर पाशुपत, देखने में सुन्दर हयग्रीव बाण, कुबेर, पवनास्त्र आदि बड़े ही खरधार बाण थे। नवघन उल्का-बाण को कौन बखान सकता है। शोषक-पोषक बाण के अंग-विभंग थे। त्रिशूल-अंकुश बाण से मातंग विह्वल हो जाते थे। विकट और संकट बाण अपने पथ के सार्थक पथिक बाण थे। माल्यवान, हीरावन्त, शारंग और ऐषीक बाण भी थे। गजांकुश, शिलाचर्ण

गजाङ्कुश शिलाचूर्ण गभीर गरजे ❋ जाइते बाणेर मुखे जयघण्टा बाजे
एत बाण दुइजने करे अवतार ❋ सब लङ्कापुरी हैल बाणे अन्धकार
जिनिते ना पारे केह, समान दु-जन ❋ दुइजने महायुद्ध, ना जाय लिखन
ब्रह्मार निकटे पेयेछिल पूर्व्वे बाण ❋ सेइ बाणे वीरबाहु पूरिल सन्धान
मन्त्रेते हइल बाण अति भयंकर ❋ महातेजे आसे बाण रामेर उपर
विपरीत ब्रह्म-अस्त्र देखिया सम्मुखे ❋ तीक्ष्ण अस्त्र रघुनाथ जुड़िला धनुके
श्रीरामेर बाण व्यर्थ राक्षसेर शरे ❋ देखिया त रघुनाथ भाविला अन्तरे १५
राक्षसेर बाणेर मुखेते अग्नि ज्वले ❋ देखिया त पुरन्दर पवनेरे बले
शरभंग-मुनि-स्थाने पाइला ये शर ❋ सेइ बाण राक्षसे मारह रघुवर १६
एत यदि पुरन्दर कहे पवनेरे ❋ पवन गोपने गिया कन रघुवरे
जे बाण पाइला राम शरभंग-स्थाने ❋ वीरबाहु ब्रह्म-अस्त्र काट सेइ बाणे
एत बलि पवन पलाय उभरड़े ❋ सेइ बाण तखन रामेर मने पड़े
तूण हैते सेइ अस्त्र ल'ये शीघ्रगति ❋ मन्त्र पड़ि' धनुके जुड़िला रघुपति
आकर्ण पूरिया बाण जुड़िल धनुके ❋ ब्रह्म-अग्नि प्रज्वलित हैल अस्त्र-मुखे
कोपे कम्पमान् छाड़े बाण दाशरथि ❋ बाणेर प्रतापे घन काँपे बसुमती

बाणों का गर्जन गंभीर था। चलते समय बाण के मुख से जयघंटा बजता रहता था। इस प्रकार दोनों ने मिलकर इतने बाणों का प्रयोग किया कि सारी लंकापुरी बाणों से अन्धकारमय हो गई। दोनों में कोई भी जीत नहीं पा रहा है, दोनों ही समान योग्यता के हैं। दोनों में महायुद्ध होने लगा, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ब्रह्मा से वीरबाहु को पहले ही एक बाण मिला था, वीरबाहु ने उस बाण को धनुष पर चढ़ाया। मंत्र से वह बाण महा भयंकर बन गया, तेजोद्दीप्त होकर वह बाण राम पर आने लगा। विपरीत दिशा से आते हुए ब्रह्म-अस्त्र को सम्मुख देखकर राम ने धनुष पर तीक्ष्ण अस्त्र चढ़ाया। श्रीराम का बाण राक्षस के शर से व्यर्थ हो गया यह देखकर रघुनाथ ने अपने मन में सोचा॥ ३१५॥

राक्षस के बाण के मुख पर जलते हुए अग्नि को देखकर पुरन्दर ने पवन से कहा, शरभंग मुनि के स्थान पर जो बाण मिला था, वह बाण रघुवर चला कर राक्षस को मारें॥ ३१६॥

पुरन्दर ने जब पवन से इतना कहा तो पवन चुपके से जाकर रघुवर से कह आया कि हे राम, जो बाण शरभंग के स्थान पर मिला था, वीरबाहु का ब्रह्म-अस्त्र उसी बाण से काटो। इतना कहकर पवन भाग खड़ा हुआ। तब राम को वह बाण याद आया। तूण से वह अस्त्र झटपट निकालकर मंत्र पढ़कर धनुष पर लगाया और कान तक खींच कर राम ने बाण को धनुष पर चढ़ाया। उस अस्त्र के मुख पर ब्रह्म-अग्नि प्रज्वलित हो उठी।

इऩम्पोऩ्ऱु इऩम्अल्लार् केण्मै महळिर्
मऩम्बोल् वेऱु पडुम् ।। २ ।।

स्वाँग मित्र का रचते हैं, मन में जिनके है किन्तु न प्रीति ।
उन्हें बदलते देर न लगती, ज्यों छलिनी[1] नारी की रीति ।। २ ।।

बन्धु की तरह रहने का (ढोंग) तो करें, पर वास्तव में बन्धु न हों, ऐसे व्यक्तियों की मैत्री, वेश्या के मन की तरह अन्दर कुछ और बाहर कुछ, यों बनावटी ही रहेगी ।। २ ।।

पलनल्ल कट्रक् कडैत्तुम् मऩनल्लर्
आहुदल् माणार्क्कु अरिदु ।। ३ ।।

प्रेमशून्य जड़-हृदय व्यक्ति से कभी न सम्भव सद्व्यवहार ।
कुटिल-मनों पर सद्ग्रन्थों का गहन अध्ययन भी बेकार ।। ३ ।।

कई सद्ग्रन्थों का अध्ययन कर चुकने पर भी उसके परिणामस्वरूप प्राप्त सुन्दर मन से व्यवहार कर सकने की क्षमता, उन लोगों को प्राप्त नहीं होती जो आंतरिक प्रेम से निर्मल नहीं हुए हैं । (सद्ग्रन्थों का अध्ययन सुन्दर मन से व्यवहार कर सकने की प्रवृत्ति और क्षमता उत्पन्न करता है, परन्तु जिनका मन आंतरिक प्रेम से विशुद्ध नहीं हुआ है उनके लिए यह अध्ययन परिणामशून्य होता है ।) ।। ३ ।।

मुहत्तिऩ् इऩिय नहाअ अहत्तिऩ्ऩा
वञ्जरै अञ्जप् पडुम् ।। ४ ।।

मुख पर मृदु मुस्कान, किन्तु है मन में भरा हलाहल[2] वैर ।
सावधान ! कपटी जन की मित्रता-प्राप्ति में कभी न खैर[3] ।। ४ ।।

मुख पर मधुर मुस्कान हो, परन्तु मन में वैर-भावना भरी हो, ऐसे कपटी व्यक्तियों की मैत्री से डरना चाहिये ।। ४ ।।

मऩत्तिऩ् अमैया दवरै ऍऩैत्तॊऩ्ऱुम्
शॊल्लिऩाल् तेट्रपाट्रु अऩ्ऱु ।। ५ ।।

उर में तो सौहार्द[4] नहीं है, वचनों से मित्रता प्रकाश ।
अति घातक है बात खोखली[5] में फसकर करना विश्वास ।। ५ ।।

मन से जुड़े बिना ही मैत्री का नाता रखनेवालों की केवल बातें सुनकर ही किसी कार्य में उन्हें विश्वास-भाजन नहीं बनाना चाहिये ।। ५ ।।

---

१ धोखा देनेवाली स्त्री २ विष ३ कल्याण ४ मित्रभाव ५ झूठी, चिकनी-चुपड़ी ।

नट्टार्पोल् नल्लवै चॊल्लिनुम् ऒट्टार्चॊल्
ऒल्लै उणरप् पडुम् ।। ६ ।।

हित के विविध वचन कहते हैं, मन में किन्तु शत्रु का भाव।
देर न लगती, अवसर आते खुल जाता सब बात-बनाव[1] ।। ६ ।।

मित्र की तरह हितकारी वचन चाहे बोलें, परन्तु शत्रु-भाव रखने वालों के वचनों की वास्तविकता शीघ्र ही प्रकट हो जाती है ।। ६ ।।

चॊल्वणक्कम् ऒन्नार्कण् कोळ्ळऱ्क विल्वणक्कम्
तीङ्गु कुऱित्तमै यान् ।। ७ ।।

धनुष झुका, तो झुका न समझो, है प्रत्यक्ष बाण-सञ्चार।
रिपु के मुख से मृदुल वचन को समझो सदा कपट का वार[2] ।। ७ ।।

धनुष का नमन, नमन होते हुये अहित का सूचक होता है, उसी प्रकार शत्रुता का भाव रखनेवालों की बातों की नम्रता को हितकारी नहीं समझना चाहिये ।। ७ ।।

तॊऴुदहै युळ्ळुम् पडैयॊडुङ्गुम्; ऒन्नार्
अऴुदकण्णीरुम् अनैत्तु ।। ८ ।।

कपटी के प्रणाम—करअंजलि[3] में भी छिपी शस्त्र की धार।
तुम्हें डुबाने को सागर है, रिपु के नयनों की जलधार[4] ।। ८ ।।

शत्रु के प्रणाम के लिए जुड़े हाथों में भी अस्त्र छिपा रहता है; उसके अश्रु जल-धार में भी वही (भाव) रहता है ।। ८ ।।

मिहच्चॆय्दु तम्मॆळ्ळु वारै नहच्चॆय्दु
नट्पिनुळ् शाप्पुल्लऱ् पाऱ्ऱु ।। ९ ।।

उर में घृणा-विरोध, प्रकट में मानो गहन[5] मित्रता व्याप्त।
उसी बनावट से हँस-हँसकर, वह अपनापा[6] करो समाप्त ।। ९ ।।

जो बाहर से अत्यन्त मैत्री प्रकट करे, पर मन में उपहास करे, उसकी मैत्री को उसकी तरह ही बाहर से प्रसन्न मुख रखते हुए अन्दर से समाप्त कर देना चाहिये ।। ९ ।।

पहैनट्पाम् कालम् वरुङ्गाल् मुहम्नट्टु
अहनट्पु ऒरीइ विडल् ।। १० ।।

---

१ पाखण्ड, कपट २ चोट ३ हाथ जोड़े हुए ४ आँसुओं की धारा ५ गहरी
६ अपनत्व, मित्रता ।

रिपु की कपट-प्रीति के प्रति, तुम भी दरसाओ छल का नेह ।
अवसर मिलते देर न करना, तजना वह भी कपट-सनेह ।। १० ।।

शत्रु, मित्र-सा (कपट) व्यवहार करना आरम्भ करें, ऐसा समय आये तो चेहरे पर मित्रता का भाव रखते हुए मन में मैत्री-रहित ही रहना चाहिये, और अवसर आने पर उसे (अर्थात् बाहरी मैत्री-भाव को) भी छोड़ देना चाहिये ।। १० ।।

अदिहारम् (अध्याय) ८४
पेदैमै (मूढ़ता)

पेदैमै ऍन्बदोन्रु यादॆनिन् एदम्कॊण्डु
ऊदियम् पोह विडल् ।। १ ।।

रिपु को मित्र, मित्र को रिपु, हित और अहित का जिन्हें न ज्ञान ।
विष को अमिय[1] अमिय को विष—बस निपट मूढ़ की यह पहचान ।। १ ।।

'मूढ़ता किसे कहें' यों पूछा जाये तो, अपने लिये हानिकारक (कार्य, वस्तु या व्यक्ति) को ग्रहण करना और लाभदायक को त्याग देना यही 'मूढ़ता' है ।। १ ।।

पेदैमैयुळ् ऍल्लाम् पेदैमै कादन्मै
कैयल्ल तन्कट् चॆयल् ।। २ ।।

जिनको रुचिकर वही काम हैं, जिनमें उनका ह्रास-विनाश ।
निपट मूढ़ता, इन मतिमन्दों में पाती है पूर्ण प्रकाश ।। २ ।।

किसी व्यक्ति की मूर्खताओं में सबसे बड़ी मूर्खता यही है कि वह अपने लिए अहितकर कार्यों में अपना मन लगाये ।। २ ।।

नाणामै नाडामै नारिन्मै यादोन्रुम्
पेणामै पेदै तॊऴिल् ।। ३ ।।

लज्जा-नेह-विहीन, 'भला क्या बुरा ?' न जिनको है परवाह ।
उदासीनता[2] आदि दुर्गुणों का मूढों में पूर्ण प्रवाह ।। ३ ।।

(लज्जाजनक कार्य करने पर भी) लज्जित न होना, (अपनाने

---

१ अमृत २ बेपरवाही ।

योग्य गुणों, कार्यों को) न अपनाना, स्नेह-भाव न होना, (पोषण योग्य) किसी भी बात को न पोसना, ये सब मूर्ख के कार्य हैं ।। ३ ।।

ओदि उणर्न्दुम् पिऱर्क्कुरैत्तुम् ताऩडङ्गाप्
पेदैयिन् पेदैयार् इल् ।। ४ ।।

गहन अध्ययन-अध्यापन[1] है, तत्वज्ञान के हैं भण्डार ।
किन्तु आचरण में कोरे, बस यही विमूढ़ों[2] के सरदार ।। ४ ।।

शास्त्रों का अध्ययन कर, उनके तत्वों को समझकर, दूसरों को समझाकर और फिर उनके बताये मार्गों पर अपने को संयमित कर स्वयं न चलनेवाले मूढ़ के समान और कोई मूढ़ नहीं हो सकता ।। ४ ।।

ऒरुमैच् चॆयलाट्रुम् पेदै ऎऴुमैयुम्
तान्बुक्कु अऴुन्दुम् अळरु ।। ५ ।।

जन्म-जन्म की नरक-यातना, सात जन्म का रौरव-त्रास[3] ।
मूढ़, कुमतिवश, एक जन्म में न्यौत बुलाता[4] अपने पास ।। ५ ।।

सात जन्म लेकर, (उनमें) सहन करनी पड़ती नरक-यातना को मूर्ख व्यक्ति अपने एक जन्म में ही प्राप्त कर सकने में समर्थ होता है ।। ५ ।।

पॊय्पडुम् ऒन्ऱो पुनैपूणुम् कैयऱियाप्
पेदै विनैमेऱ् कॊळिन् ।। ६ ।।

कौशल-ज्ञान विना पिल पड़ते[5] किसी काम में बे-सिर-पैर[6] ।
होते विफल जुर्म[7] में फसकर, हथकड़ियों से माँगें ख़ैर[8] ।। ६ ।।

विधि-नियम न जाननेवाला मूढ़ यदि किसी कार्य को हाथ में लेगा तो वह काम पूरा हुए बिना ही बिगड़ जायेगा; साथ ही [आश्चर्य नहीं कि] उसे अपराधी के रूप में हथकड़ी पहननी पड़े ।। ६ ।।

एदिलार् आरत् तमर्पशिप्पर् पेदै
पॆरुञ्चॆल्वम् उट्रक् कडै ।। ७ ।।

दैवयोग से यदि विमूढ़ को कहीं मिल गया धन-आगार[9] ।
मौज उड़ाते ग़ैर-ग़ैर, पर भूखों मरता निज परिवार ।। ७ ।।

मूढ़ को प्रचुर धन प्राप्त हो जाता है तो उससे संबंध न रखनेवाले

---

१ पढ़ना-पढ़ाना २ मूर्खों ३ रौरव नरक की यातना ४ निमंत्रण देता है ५ जुट जाते ६ बिना आगा-पीछा समझे ७ अपराध ८ बचाव ९ ख़जाना ।

पराये व्यक्ति तो मौज उड़ाते हैं और स्वजनों को भूख से पीड़ित रहना पड़ता है ॥ ७ ॥

मैयल् ऑरुवन् कळित्तट्राल् पेदैतन्
कैयोंन्रु उडैमै पेंरिन् ॥ ८ ॥

जिस प्रकार उन्मादग्रस्त[1], मदिरा पीकर होता मदमस्त।
उसी भाँति धन-वैभव के मद[2] में मूरुख हो जाता ग्रस्त[3] ॥ ८ ॥

मूढ़ के हाथ में कोई (मूल्यवान) वस्तु आ जाये तो उसकी स्थिति ऐसी हो जाती है जैसे मस्तिष्क में विकार वाला व्यक्ति ताड़ी पी ले। (अर्थात् मूलतः ही उसमें विवेक-बुद्धि का अभाव होता है और अब तो पूरी चेतना ही लुप्त हो जाती है।) ॥ ८ ॥

पेंरिदिन्रिदु पेदैयार् केण्मै; पिरिविन्कण्
पीळै तरुवदोंन्रु इल् ॥ ९ ॥

मूरुख की मित्रता सुखद[4] है, सदा मिलन में सुख-संयोग।
क्योंकि विलग होने पर, दुखकर कभी न होता मूर्ख-वियोग[5] ॥ ९ ॥

मूर्खों से वियोग होते समय, वह वियोग-पीड़ा नहीं देता; इसलिए मूर्खों के साथ नाता रखना अत्यन्त मधुर होता है। (इसमें कवि ने व्यंग्य किया है कि मूर्खों से लंबी मित्रता बनाये रखना असंभव ही होता है—उसकी समाप्ति अवश्यंभावी है, अतः वैसी मैत्री का आरम्भ सुख का ही भाव जगाता है, पीड़ा या डर का नहीं।) ॥ ९ ॥

कळा अक्काल् पळ्ळियुळ् वैत्तट्राल् शान्रोर्
कुळा अत्तुप् पेदै पुहल् ॥ १० ॥

धवल विमल शय्या पर मानो मैले पैर हुए आसीन।
धीमानों में उसी भाँति है मूढ़-आगमन शोभाहीन ॥ १० ॥

बुद्धिमानों की सभा में मूर्ख का प्रवेश करना वैसा ही है, जैसे स्वच्छ शय्या पर बिना धुले मलिन पैरों को रखना [जिस प्रकार मैले-कुचैले पैरों से स्वच्छ धुली चादर की सारी आब बिगड़ जाती है, उसी प्रकार एक मूर्ख के प्रवेशमात्र से सारी विद्वान्मण्डली श्रीहीन हो जाती है।] ॥ १० ॥

---

१ पागल   २ अहंकार   ३ फस जाता है   ४ सुखदायी   ५ मूर्ख की जुदाई।

अदिहारम् (अध्याय) ८५
पुल्लऱिवाण्मै (मिथ्या अहम्मन्यता)

अऱिविन्मै इन्मैयुळ् इन्मै; पिऱिदिन्मै
इन्मैया वैयादु उलहु ॥ १ ॥

सकल अभावों में दुखदाई सर्वोपरि 'बुद्धि' का अभाव।
अन्य अभाव नगण्य[1] पूर्ति सबकी करदेता 'बुद्धि-प्रभाव'[2] ॥ १ ॥

[यहाँ ऐसे व्यक्तियों का वर्णन है जो होते तो हैं मूढ़, परन्तु मिथ्या दंभ में अपने को बुद्धिमान् मानते हैं।]

बुद्धि का अभाव ही सभी अभावों में सबसे पीड़ादायक अभाव है; अन्य अभावों को संसार उतना बड़ा अभाव नहीं मानता ॥ १ ॥

अऱिविलान् नॆञ्जुवन्दु ईदल् पिऱिदुयादुम्
इल्लै पॆऱुवान् तवम् ॥ २ ॥

बुद्धिहीन यदि हर्षित होकर देता वस्तु किसी को दान।
श्रेय[3] न उसको, अपितु प्राप्तकर्ता का कोई गृह बलवान ॥ २ ॥

बुद्धिहीन व्यक्ति हार्दिक प्रसन्नतापूर्वक यदि कोई वस्तु प्रदान करे तो उसका कारण और कुछ नहीं; सिवाय इसके कि उस वस्तु को प्राप्त करनेवाले का भाग्य बलशाली है। (बुद्धिहीन का दान विवेक की कसौटी पर कसा हुआ दान नहीं होता; जिसे भी उससे कुछ मिल जाये उसे अपने पुण्यों का फल मानना चाहिए।) ॥ २ ॥

अऱिविलार् ताम्तम्मैप् पीऴिक्कुम् पीऴै
चॆऱुवार्क्कुम् चॆयदल् अरिदु ॥ ३ ॥

मूढ़ स्वयं अपनी करतूतों से अपना करते अपकार[4]।
उतनी क्षति तो कभी न पहुँचा सकते रिपु[5] भी किसी प्रकार ॥ ३ ॥

बुद्धिहीन स्वयं अपने को जितनी मात्रा में हानि पहुँचा सकते हैं, उतनी तो उसके शत्रु भी नहीं पहुँचा सकते ॥ ३ ॥

वॆण्मै ऎनप्पडुवदु यादॆनिन् ऒण्मै
उडैयम्याम् ऎन्नुम् चॆरुक्कु ॥ ४ ॥

"बुद्धिमान् हूँ"—अहम्मन्यता[6]—कथनी-करनी में यह भाव;
स्वयं प्रशंसा का बखान हो, यही मूर्ख का सहज[7] स्वभाव ॥ ४ ॥

---

१ तुच्छ २ बुद्धिबल ३ तारीफ़, यश ४ अनिष्ट ५ (उनके) शत्रु
६ मैं ही सब कुछ हूँ, यह भावना ७ स्वाभाविक।

तुच्छ बुद्धि किसे कहा जाये ? तो उत्तर यही है कि "हम बुद्धिमान् हैं"—यों कोई स्वयं अपनी ही प्रशंसा कर गर्व करे ॥ ४ ॥

कल्लाद मेऱ्कोण्डु ऑऴुकल् कशडर्
वल्लदूउम् ऐयम् तरुम् ॥ ५ ॥

पढ़े बिना बनते पढ़ीस[1], अज्ञानी दरसाते हैं ज्ञान।
यदि सचमुच कुछ ज्ञान उन्हें है, खो देते उसका भी मान[2] ॥ ५ ॥

बुद्धिहीनों द्वारा अपठित ग्रन्थों को भी पठित-सा दिखाने का प्रयत्न, उनके द्वारा सचमुच प्राप्त किये तथा अधिकृत ज्ञान के प्रति भी लोगों के मन में संशय उत्पन्न करा देता है ॥ ५ ॥

अट्ऱम् मऱैत्तलो पुल्लऱिवु तम्वयित्
कुट्ऱम् मऱैया वऴि ॥ ६ ॥

यदि चरित्र के दोष त्यागकर, पा न सके जग में मर्याद[3]।
वस्त्रमात्र से तन ढकने पर, कैसे बच सकता अपवाद[4] ॥ ६ ॥

अपने (स्वभाव में स्थित) दोषों को पूरी तरह मिटाये, और लोगों की आँखों में निर्दोष हुए बिना, देह के गुह्य भागों-मात्र को वस्त्र द्वारा ढक कर आँखों की ओट करना बुद्धिहीनता ही होगी ॥ ६ ॥

अरुमऱै शोरुम् अऱिविलान् चॆय्युम्
पॆरुमिऱै तानॆ तनक्कु ॥ ७ ॥

पचा न सकते गोपनीय[5], कर देते हैं चौतरफ़ बखान।
हल्केपन[6] से स्वयं निमंत्रित करते हैं विपत्ति नादान[7] ॥ ७ ॥

अत्यन्त गोपनीय बात को मन में सुरक्षित न रख, व्यग्रता से उद्घाटित कर देने वाला बुद्धिहीन स्वयं अपनी बहुत बड़ी हानि कर बैठेगा ॥ ७ ॥

एववुम् शॆय्हलान् तान्तेऱान् अव्वुयिर्
पोऒम् अळवुमोर् नोय् ॥ ८ ॥

समझाने पर ध्यान न देते, स्वयं न हित की है पहचान।
अन्तकाल तक जीवन उनका सदा दुःखमय रोग-निदान[8] ॥ ८ ॥

---

१ अध्ययनशील विद्वान्   २ मूल्य, प्रतिष्ठा   ३ इज़्ज़त, प्रतिष्ठा   ४ उनका नंगापन, बुद्धि का खोखलापन   ५ गुप्त बातें   ६ मन में बात न रख सकने का हल्कापन   ७ मूर्ख, नासमझ   ८ रोग का कारण।

जो अपने लिए हितकर कार्य को दूसरों द्वारा समझाने पर भी न करे और न स्वयं अपने आप भी अपना हित समझ सके, तो ऐसे व्यक्ति के प्राण मृत्यु-पर्यन्त एक रोग-रूप ही रहेंगे ॥ ८ ॥

काणादान् काट्टुवान् तान्काणान्; काणादान्
कण्डाऩाम् तान्कण्ड वाऱु ॥ ९ ॥

नादानों को ज्ञान सिखाकर, ज्ञानी बनता है नादान।
अज्ञानी, वह ज्ञान प्राप्त कर बन जाता है स्वयं सुजान[1] ॥ ९ ॥

नासमझ को मार्ग दिखानेवाला स्वयं नासमझ सिद्ध किया जायेगा; और नासमझ अब उस बात को जान चुकने के कारण समझदार समझा जायेगा। (बुद्धिहीन व्यक्ति समझाने का प्रयत्न करनेवाले व्यक्ति को पहले तो मूर्ख ठहरायेगा, और फिर उसी बात को अब जान चुकने के कारण, लोगों के सम्मुख यों प्रस्तुत करेगा कि लोग उसे समझदार समझने लग जायेंगे।) ॥ ९ ॥

उलहत्तार् उण्डॆन्बदु इल्लॆन्बान् वैयत्तु
अलहैया वैक्कप् पडुम् ॥ १० ॥

तथ्य-मान्यताएँ[2] बुधजन की, बिमुख सदा उनसे इन्कार।
उसे प्रेतवत घृणित समझकर तजता है सारा संसार ॥ १० ॥

जगवाले, जिसके अस्तित्व को (अर्थात् जिन बातों, वस्तुओं के अस्तित्व को) "है" कहकर स्वीकार करते हैं, उसे "नहीं" कहकर अस्वीकार करनेवाला व्यक्ति, संसार में प्रेत की तरह अलगाकर रख दिया जाता है ॥ १० ॥

अदिहारम् (अध्याय) ८६

इहल् (विभेद-भाव, परायेपन की भावना)

इहलॆन्ब ऎल्ला उयिर्क्कुम् पहलॆन्नुम्
पण्बिन्मै पारिक्कुम् नोय् ॥ १ ॥

यह अपना, यह ग़ैर –ग़ैरियत[3] का जीवों में सहज स्वभाव।
विज्ञ-कथन[4]—इस विषम व्याधि[5] से ही उगता नफ़रत[6] का भाव ॥ १ ॥

---

१ समझदार २ बुद्धिमान के अनुभव और उपदेश ३ विरानापन ४ विद्वानों का मत है ५ कठिन बीमारी ६ घृणा।

किसी न किसी पहलू से बातों में ले आए जाएँ। आज़ाद फ़क़ीर जो एक ख़ास वज़अ रखते थे, ज़िलअ बोलने में बाकमाल माने जाते थे। अमानत ने अपनी शाअिरी में रिआयत की इस क़द्र कोशिश की कि तमाम शाअिरान: ख़ूबियों से क़तअ नज़र करके रिआयत ही को अपना मक़सद क़रार दे लिया। नतीजा यह हुआ कि उनका कलाम शाअिरी के दर्जे से निकल के ज़िलअ बोलने के हक़ में दाख़िल हो गया। मगर लखनऊ के अक्सर अवाम ने अपनी बेतकल्लुफ़ी की सुहबतों में इस फ़न को इस क़द्र बढ़ा दिया है कि अमानत की शाअिरी पीछे पड़ गई। सच यह है कि किसी जगह लोग ज़िलअ बोलने में, अहले लखनऊ के उश्रे अशीर[1] दर्जे को भी नहीं पहुँच सकते। इस फ़न में एक किताब भी शायअ हो गई (है)।

तीसरा फ़न तुकबन्दी है। यह शाअिरी की क़ाफ़िय: पैमाई है। बहुत से जाहिल जब इधर तवज्जुह करते हैं तो जवाब सवाल में इस तरह फ़िलबदीह क़ाफ़िय: इस्तिमाल करते हैं कि बड़े-बड़े शुअरा को हैरत हो जाती है। हमने अपने तालिबे-इल्मी के ज़माने में एक हिन्दू 'बुढ़िया के काते'[2] वाला देखा था जो सुबह को ख्वानच:[3] लगाके निकलता। सूरत देखते ही सद्‌हा बाज़ारी लौंडे उसे घेर लेते और वह सरे राह ख्वानच: रख के बैठ जाता। फ़ौरन लौंडों से उससे तुकबन्दी का मुक़ाबिला शुरू हो जाता। सारा मज्मा एक तरफ़ होता। फ़रीक़ैन में गालियों की बौछार होती मगर शर्त थी कि कोई गाली तुक से बाहर न हो और कोई क़ाफ़िय: रह न जाए। हमने उसे बीसियों बार देखा। घंटों उससे मुक़ाबला रहता मगर हमने कभी नहीं देखा कि वह जवाब में आजिज़ रहा हो, कोई न कोई क़ाफ़िय: ढूँढ़ के पेश ही कर देता।

इसी मज़ाक़ और गुफ़्तगू में तरह-तरह की ख़याल-आफ़रीनियाँ होती थीं। और जाहिल अवाम बाज़ वक़्त ऐसे ख़यालात पेश कर दिया करते थे कि बड़े-बड़े शुअरा हैरत में रह जाते। यह ज़मान: दरअस्ल लखनऊ का गोल्डेन एज (स्वर्णयुग) था शाअिरी और अदबी ख़ूबियाँ लोगों के रगोपै में सरायत कर गई थीं। हर शख़्स जो मामूली तौर पर पढ़ने में शुद-बुद हो जाता, तबअ आज़माई शुरू कर देता। जुहला[4] व अवाम, अदना तबक़े के लोगों और घर की बैठनेवाली औरतों तक में शाअिरान: लोच और अदबी नज़ाकतें पैदा हो गई थीं। अनपढ़ कबड़िए शाअिर थे और जुहला की ज़बान भी इस क़द्र शुस्त: व रफ़्त:, अख़्लाक़ी हिफ़्ज़े मरातिब व अल्फ़ाज से मामलू और तमद्दुनी आदाब से लबरेज़ थी कि अक्सर साहिबे अिल्म उनकी गुफ़्तगू सुन के शशदर[5] रह जाते और किसी को उन पर जाहिल होने का गुमान भी न होता। सौदा बेचनेवालों की सदाएँ, शाअिरान: निकात और फ़साहत व बलाग़त के ग़वामिज़[6] से इस क़द्र आरास्त: व पैरास्त:[7] थीं की औरों को समझना भी दुश्वार था।

---

१ शतांश २ एक प्रकार की मिठाई जिसकी शक्ल बुढ़िया के बालों जैसी होती है। ३ खोंचा, थाल ४ अशिक्षित ५ चकित, स्तब्ध ६ मुश्किलात, जटिलताओं ७ सजी-सवाँरी।

अदना तबक़े वालों ने भी अपने मज़ाक़ के मुताबिक़ ख़ास अदबी दिलचस्पियाँ पैदा कर ली थीं। मसलन एक फ़न ख़याल का पैदा हो गया। लोग फ़िलबदीह अश्आ़र तस्नीफ़ करके दायरे पर गाते। इसका नाम ख़याल इसलिए रखा गया कि हर शख़्स अपनी तख़ईल[1] का जौहर दिखाए और कोई नई बात पैदा करे। इस फ़न में यहाँ बहुत से बाकमाल पैदा हुए, जिनको आला सोसायटी और तअ़लीमयाफ़्तः लोगों की सुहबतों से गो कोई तअ़ल्लुक़ न था, मगर यह बजायख़ुद अगर ग़ौर कीजिए तो वह अस्ली और फ़ितरी शाअ़िरी थी और इस वज़अ़ की शाअ़िरी जैसी की अह्देजाहिलीयत[2] अरब में थी।

इसी तरह एक गिरोह डंडेवालों का पैदा हो गया। उन लोगों की यह शान थी कि क़रीब के ज़माने के अह्म और मशहूर वाक़िआत को कमाल आज़ादी के साथ मौज़ूँ करते। जो जैसा होता चाहे वह कितना ही साहिबे असर और दौलतमन्द हो, उसे वैसा ही बड़ी बेबाकी के दिखाते और साबित करते कि मुल्कोक़ौम को इससे क्या फ़ायदः हुआ या कितना बड़ा ज़रर[3] पहुँचा। फिर अपनी उन नज़्मों को एक शेअ़र-ख़्वानी की ख़ास वज़अ़ में डंडे बजा-बजा के सुनाते।

औरतों की ज़बान मर्दों के मुक़ाबिल हर मुल्क और क़ौम में ज़ियादः शुस्तः और दिलकश होती है। मगर लखनऊ में यह ख़ास बात थी कि महल्लात और मुहतरम ख़ानदान की मुअज़्ज़ज़ बेगमों की ज़बान में अलावः निसाई[4] दिल-फ़रेबियों के, अदबी और शाअ़िरानः नज़ाकतें पैदा हो गई थीं। बातें करतीं तो मालूम होता कि मुँह से फूल झड़ रहे हैं। और ग़ौर कीजिए तो सिह्हतें अल्फ़ाज़, प्यारी बन्दिशें और तर्ज़ें अदा की नज़ाकतें बतातीं कि ज़बान की ख़ूबियाँ इस सरज़मीन में किस आला कमाल को पहुँच गई हैं।

अ़िल्मोफ़ज़्ल

ज़बान और शाअ़िरी के कमालात के साथ लखनऊ ने अ़िल्मोफ़ज़्ल में भी हिन्दोस्तान के तमाम शहरों से ज़ियादः तरक़्क़ी की। अगर सच पूछिए तो उ़लूम के एतिबार से लखनऊ, हिन्दोस्तान का बग़दाद व क़ुर्तबः और अक़्साए मश्रिक़ का नेशापुर व बुख़ारा था।

यहाँ के अ़िल्मोफ़ज़्ल का आग़ाज़ उ़लमा-ए-फ़िरंगीमहल से हुआ, जिनके हालात की तरफ़ इस मज़मून के आग़ाज़ में इशारा किया जा चुका है। अ़िल्म बेशक यहाँ देहली ही से आया होगा। लेकिन पुराने ज़माने में उ़लमा-ए-देहली में से सिर्फ़ एक शेख़ अब्दुलहक़ नज़र आते हैं, जिन्होंने हदीस और उ़लूमे दीनियः में शुहरतें-दवाम[5] हासिल की। फ़िरंगीमहल के से दारुलउ़लूम का वहाँ किसी ज़माने में पता नहीं लगता। हाँ फ़िरंगीमहल के मश्हूर हो जाने के बाद देहली में शाह वलीउल्लाह साहब

१ ख़याल लाना, कल्पनाशक्ति २ अज्ञानकाल ३ हानि ४ स्त्रीसुलभ ५ स्थायी ख्याति।

का ख़ानदान अलबत्ता बहुत मशहूर हुआ, जिनके फ़ैज व बर्कत से आज हिन्दोस्तान के तमाम शहरों में अिल्मे हदीस की तअ़लीम जारी हुई। लेकिन अगर अिल्मे हदीस की तअ़लीम इस नामवर ख़ानदाने देहली की यादगार है, तो इसके साथ ही सर्फ़, नह्व, मंतिक़ो हिकमत, और मआ़नी व बयान और दीगर फ़ुनूने दर्सिय: की तअ़लीम लखनऊ की नामवर यूनिवर्सिटी फ़िरंगीमहल की यादगार है।

ग़ायर नज़र डालने और जुस्तुजू से साफ़ पता चलता है कि जैसे मऽक़ूली-उ़लमा लखनऊ और ख़ास फ़िरंगीमहल में पैदा हुए, कभी किसी ज़माने में और किसी जगह हिन्दोस्तान में नहीं पैदा हो सके थे। इसका क़तई सुबूत यह है कि सिलसिल-ए-दर्स[1] में जो किताबें जारी हैं वह या तो सलफ़ के नाम वराने अजम की तस्नीफ़ हैं या फ़िरंगीमहल वालों की। या उन लोगों की जिन्होंने फ़िरंगीमहल से फ़ैज़ हासिल किया था।

मुज्तहिदीने शीअ़: का आग़ाज़ भी फ़िरंगीमहल ही से हुआ। लखनऊ के पहले मुज्तहिद मौलवी दिलदार अली साहब ने भी इब्तिदाअन् कुतुबे दर्सिय: फ़िरंगीमहल ही में पढ़ी थीं। फिर इराक़ में जाके उ़लमा-ए-कर्बला व नजफ़ के सामने ज़ानूए शागिर्दी तह किया। और वापस आके ख़ुद फ़िरंगीमहल वालों की तस्दीक़ व तक़रीब से मुजतहिद और शीअ़: फ़रमाँ ख़ायाने वक़्त के मुक़्तदा[2] क़रार पाए। उन्होंने चूँकि इराक़ में तअ़लीम पायी थी, लिहाज़: अरबी का नया अदबी ज़ौक़ अपने साथ लाए। और अदबीयत में ख़ानदाने इज्तिहाद और लखनऊ के शीअ़: उ़लमा को फ़िरंगीमहल वालों पर हमेश: फ़ौक़ियत[3] हासिल रही और आज तक हासिल है।

उ़लमाए शीअ़: के अदबी मज़ाक़ ने लखनऊ को अदब की तअ़लीम का आला तरीन मर्कज़ बना दिया, जिसने मुफ़्ती मीर अ़ब्बास साहब का ऐसा अदीबेगराँ पाय: पैदा किया।

उ़लूमेदीनिय: में से फ़िक़:, उसूले फ़िक़:, कलाम, और अ़काइद में, उ़लूमे अदबीय: में से नह्व व सर्फ़ और मआ़नी व बयान में, उ़लूमे अ़क़लीय: में से मन्तिक़, फ़लसफ़:, तबीअ़ीयात व इलाहीयात में, और उ़लूमे रियाज़ी में से उक़्लैदिस[4] और हैअत में उ़लमा-ए-फ़िरंगीमहल को ख़ास नामवरी हासिल थी और सारे हिन्दोस्तान में इन उ़लूम की तअ़लीम का मर्कज़े अस्ली लखनऊ था। अदब, शाअ़िरी और अरूज़ेअरबी को उ़लमा-ए-शीअ़: व मुज्तहिदीने लखनऊ ने अपना लिया था।

मुनाज़िर:, जिससे हमारी मुराद यहाँ ख़ास कलामी मुबाहिस और शीअ़: व सुन्नी का बाहमी रद्दो क़द्ह[5] है, इस फ़न का आग़ाज़ हिन्दोस्तान में नूरुल्लाह शोस्त्री से हुआ, जो ईरान से इसलिए आए थे कि सुन्नियों की तर्दीद[6] करें। जब ही से यहाँ शीअ़: व

---

१ पाठ्यक्रम २ अनुकरणीय ३ वरीयता, श्रेष्ठता ४ रेखा गणित ५ शास्त्रार्थ ६ खण्डन।

सुन्नी में झगड़े पैदा हो गए। और आख़िर क़ाज़ी साहब के एक मुद्दत के बाद शाह अब्दुल अज़ीज़ मुहद्दिस देहलवी ने शीओं की रद में तुहफ़-ए-इस्ना अश्रियः लिखी। मौलवी दिलदार अली साहब ने इसके बाज़ अबवाब की तर्दीद में कुछ लिखा। फिर मौलाना हैदर अली पैदा हुए, जो अस्ल में रहनेवाले तो फ़ैज़ाबाद के थे, मगर उनका नाम लखनऊ ही से चमका। उन्होंने मुन्तहीयुल्कलाम लिखी जो शीओं की तर्दीद में आला तरीन किताब समझी जाती थी। इसी ज़माने में मौलवी लुत्फ़ुल्लाह साहब ने जो लखनऊ में तहसीलें अिल्म करके यहीं के हो गए थे, अपनी कई किताबें लिखीं जिनमें तहक़ीक़ व तर्दीद के अलावः शोख़िये-बयान भी थी। मियाँ मुशीर ने उनकी तर्दीद बड़े ज़ोरोशोर से की। लेकिन सच यह है कि उनकी किताब, तर्दीद के दर्जे से गुज़र के हज़्ल गोई व हज्व की सरहद्द में दाख़िल हो गई। आख़िर में मौलवी हामिद हुसैन ने सुन्नियों के मज़्हब की तर्दीद की है। और अब हम देखते हैं कि मौलवी अब्दुश्शकूर साहब भी इस फ़न में अह्लेसुन्नत की तरफ़ से नमूद हासिल कर रहे हैं।

हमारे मज़ाक़ में मज़हबी रद्दोक़द्ह चाहे किसी फ़रीक़ के लोगों को ख़ुश कर दे, मगर बिल्कुल बेनतीजा चीज़ है। और इसके नफ़े से मज़रत बढ़ी हुई है। मगर इस मौक़े पर हमें सिर्फ़ यह दिखाना है कि इस फ़न में भी लखनऊ ने जो उरूज हासिल किया है, इससे पहले कभी किसी शहर को नहीं नसीब हो सका था।

उलूमे दीनियः में से लखनऊ में तफ़सीर, हदीस, रिजाल और तारीख़ की कमी थी। इनमें तफ़सीर का फ़न एक मामूली दर्जे तक लखनऊ में मौजूद था और जितना था उससे ज़ियादः और भी कहीं नहीं था। ताहम बाज़ शहरों में बाज़ नामवर मुफ़स्सिर गुज़रे हैं मगर उनका तजर्रुद[१] व कमाल उन्हीं तक महदूद रहा और उन्हीं पर ख़त्म हो गया। हदीस को देहली ही के साथ ख़ुसीसीयत रही। आख़िर अहद में मौलाना अब्दुल हयी मर्हूम मक्कः मुअज़्ज़मः के शुयूखे हदीस से दर्स व खायतें हदीस की सनद हासिल करके आए और सिलसिल-ए-दर्स भी जारी कर दिया, मगर इस फ़न को यहाँ अच्छा नश्वुनमा[२] नहीं होने पाया। रिजाल का फ़न हदीस के ताबेअ है, हदीस में जिस क़दर तवग़ग़ुल[३] बढ़ता है, उसी क़दर फ़न्ने रिजाल में इंसान की बसीरत[४] बढ़ती जाती है, लिहाज़ः उलमा-ए-लखनऊ जिस क़दर हदीस के फ़न में नाक़िस थे, उसी क़दर रिजाल के फ़न में भी नाक़िस रह गए। बाक़ी रही तारीख़, इस फ़न को हिन्दोस्तान में कभी उरुज नही हासिल था। इसमें शक नहीं कि सोसायटी की ज़रूरत से फ़ारसी-दानों में तारीख़ का बहुत कुछ मज़ाक़ था, मगर उलमा-ए-हिन्द ने इस फ़न को अफ़्सानाख़्वानी से ज़ियादः वक़अत कभी न दी जिसकी वजह से उमूमन उलमा में एक बहुत बड़ा नुक़्स रह जाता था। और यही चीज़ थी जिसने हिन्दोस्तान

---

१ अद्वितीयता २ पालन-पोषण ३ ज्ञानवृद्धि ४ कुशलता।

के बच्चे-बच्चे के ज़िहन में यह ख़याल पैदा कर दिया कि "आलिमों को ज़मानः शिनासी[१] से क्या काम ? वह लोग तो सीधे-साधे जन्नती होते हैं।"

लेकिन ज़माने की ज़रूरतें देख के, दोनो फ़रीक़ के उलमा ने अपने निसाबों में मुनासिब इज़ाफ़ः शुरू कर दिया है। और दूसरी तरफ़ नदवतुल् उलमा का दारुल-उलूम क़ायम है, जो उन ज़रूरी उलूम की तरफ़ ख़ास तवज्जुह कर रहा है, जो इस वक़्त तक मतरूक थे; लेकिन इन नुक़्सानात के साथ भी लखनऊ में जो कुछ हुआ, दीगर मक़ामात से बहुत ज़ियादः है।

तिब्बे-यूनानी

हम यह बता चुके हैं कि शीअः ख़ानदाने इजतिहाद और फ़िरंगीमहल के उलम-ए-अहले सुन्नत की बरकत से इस आखिरी दरबार के अह्द में अिल्मी फ़ज़ल ने लखनऊ में कैसा उरुज हासिल किया और अपनी सवाद में कैसी अिल्मी कशिश और मर्जअीयत पैदा करा दी। लेकिन अभी हमें तिब्बे यूनानी से बहस करना बाक़ी है।

यह शरीफ़तरीन फ़न, जिसको आलमे इंसानी के महफ़ूज़ रखने और नस्ले इंसानी को तरक़्क़ी देने से वास्तः है, गो कि इसका ज़ुहूर हर क़दीम मुल्क में ख़ुद-रो तरीक़े और जुज़्ई तजुर्बात से हुआ है, मगर क़दीमुल्अय्याम में मग़रिब की तरफ़ अहले यूनान ने इस फ़न में बहुत ही नुमायाँ तरक़्क़ी की थी और मश्रिक़ में हिन्दुओं के नामवराने सलफ़ ने उसे आला दर्ज-ए-कमाल पर पहुँचा दिया था। मुसलमानों में जब दरबारे ख़िलाफ़त क़ाइम हुआ तो यह फ़न दोनो जगह से आया और दोनो सरज़मीनों के हाज़िक़ अतिब्बा दरबारे बग़दाद के तबीब थे। इब्तिदाअन् दो एक सद्‌यों तक तमाम मुस्तनद अतिब्बा-ए-दरबारे अब्बासी, हिन्दू थे, ईसाई थे, यहूदी थे, मगर मुसलमान न थे। मगर इस दौर के अतिब्बाए बाकमाल चाहे किसी मज़्हब के पैरौ[२] हों, आग़ोशे इस्लाम के परवरदः और आलमे इंसानी के मुमताज़ नामवर थे। और उन्हीं के हाथों से फ़न्ने तिब् एक नई शान और नए उनवान से मुदव्वन[३] व मुन्ज़बित[४] होना शुरू हुआ; जिसमें थोड़ी इस्लाह और रद्दो बदल के बाद, उसूली तर्तीब तो यूनानियों की बरक़रार रखी गई, मगर तजुर्बात हर मुल्क और हर क़ौम के यकसाँ तौर पर लिए गए।

इसके चन्द रोज़ बाद मुसलमान अतिब्बा-ए-नामवर पैदा होना शुरू हुए। और उन्होंने फ़न्ने तिब को अपने इजतिहादों और अपने तजुर्बात से अपना बनाना शुरू किया। यहाँ तक कि इब्नि सीना ने क़ानून की सी बेनज़ीर व ला-जवाब किताब लिख के दुनिया के हाथ में दे दी, और उसके आगे मश्रिक़ व मग्रिब की तमाम क़ौमों ने सर झुका दिया। उधर दरबारे उन्दुलुस ने अमले बालीद और तजुर्बात में मश्रिक़ से भी ज़ियादः तरक़्क़ी की, और फ़न्ने तिब मुसलमानों का ख़ास फ़न बन गया।

---

१ सामयिक ज्ञान   २ अनुयायी   ३ जमा किया हुआ   ४ क़ाअिदे में लाना।

जिसके मर्जअ् व मावा हर जगह वही थे। हर क़ौम उसे उन्हीं से हासिल कर रही थी और उसी पर यूरोप की मौजूद: डाक्टरी की इमारत क़ाइम हुई, जिसको ज़ियाद: तअ़ल्लुक़ उन्दुलुस के इस्लामी तिब्बी स्कूल से था।

लेकिन इधर आख़िरी सदियों में जब मुसलमानों का ज़वाल शुरू हुआ, तो उसका असर सबसे पहले इनके उ़लूमोफ़नून में और सबमें ज़ियाद: फ़न्ने तिब्ब में नुमायाँ हुआ और अक्सर मुमालिक में उसकी वही हालत हो गई, जो उ़रूजे यूनान के आग़ाज़ में थी। यानी मामूली क़ाबलीयत के लोग, बग़ैर इसके कि फ़न की आलातरीन किताबों पर उनकी नज़र पड़ी हो, अपने जुज़ई तजुर्बों से लोगों का इलाज करते। नतीजा यह हुआ कि चन्द ही रोज़ में मिस्र, अरब, शाम व इराक़, फ़न जाननेवाले तबीबों से ख़ाली हो गए। सिर्फ़ ईरान और हिन्दोस्तान में यह फ़न बाक़ी था। लेकिन इस पिछली सदी में ईरान भी तबीबों से ख़ाली हो गया। और तमाम मुमालिके इस्लाम में अपने इस फ़न्ने क़दीम के मुतअ़ल्लिक़ ऐसी जिहालत थी कि जब यूरोप के फ्रांसीसी और अंग्रेज़ डाक्टर नमूदार हुए तो अ़वाम व ख़्वास[1] सबको एक नेअ़मते-इलाही नज़र आए और किसी को इसकी हिस[2] न थी कि यह असली फ़न हमारा ही था या हमारे यहाँ भी कभी अतिब्बा होते थे।

मुसलमानों के तिब को अगर फ़ना होने से बचाया तो सिर्फ़ हिन्दोस्तान ने, जहाँ आज तक अतिब्बा-ए-यूनानी, यूरोप की जदीद अस्नाफ़े तिब का मुक़ाबला कामियाबी के साथ कर रहे हैं। और बावजूदे कि ख़ैराती हस्पताल गाँव-गाँव मौजूद हैं, मगर फिर भी लोगों को जो एतिबार यूनानी अतिब्बा के इलाज पर है, डाक्टरों पर नहीं।

देहली में अगले दिनों इस फ़न के बहुत से बाकमाल गुज़रे, जिनमें हकीम अर्ज़ानी, हकीम शिफ़ाई ख़ाँ, हकीम अलवी ख़ाँ, हकीम मुहम्मद शरीफ़ ख़ाँ, बहुत आला शुहरतो-कमाल के अतिब्बा गुज़रे हैं। लखनऊ में बुर्हानुल्मुल्क के ज़माने से देहली के हा़ज़िक़ अतिब्बा सरज़मीने अवध में आना शुरू हो गए। ख़ुसूसन शुजाउद्दौल: के अ़हद में तो देहली के दो एक तबीबों के सिवा, जितने थे, सब यहीं चले आए। फ़ैज़ाबाद की तारीख़ से पता चलता है कि वहाँ जितनी सरकारें थीं, उनमें से हर एक से कोई यूनानी तबीब ज़रूर वाबस्त: था, जिनका बहुत कुछ अदब और पासोलिहाज़ किया जाता। और माहवार तनख़्वाह के अलावा रोज़ान: इनाम व इकराम से सरफ़राज़ होते रहते।

असिफ़ुद्दौल: के ज़माने में जब लखनऊ, कमालों की क़द्रदानी का मर्कज़ क़रार पाया, तो देहली के बहुत से ख़ानदानी अतिब्बा ने यहीं तवत्तुन[3] इख़्तियार कर लिया और चन्द रोज़ के बाद ज़बान और शाअ़िरी की तरह फ़न्ने तिब भी ख़ास यहीं का फ़न बन गया। चुनाँचि: लखनऊ ने हकीम मसीहुद्दौल:, हकीम शिफ़ाउद्दौल:,

१ जनसाधारण और विशिष्ट जन २ अनुभूति ३ निवास।

हकीम मिर्ज़ा मुहम्मद अली, हकीम सय्यद मुहम्मद मर्तअ़श, हकीम मिर्ज़ा कूचक, हकीम बन्ना, हकीम मिर्ज़ा मुहम्मद जाफ़र के ऐसे आलीपायः व गराँक़द्र तबीब पैदा किए। जो सच यह है कि अपने फ़ुनून के मुजतहिद थे और सलफ़ के सारे सर्माय-ए-अ़िल्मी पर उनकी नज़रें थीं। होते-होते फ़न्ने तिब की यहाँ तक तरक़्क़ी हुई कि लखनऊ का शाज़ोनादिर ही कोई मुहल्ला होगा जिसमें कोई नामवर ख़ानदाने अतिब्बा न मौजूद हो। खास शहर के सद्हा मुहल्लों के अ़लावः गिर्दोनवाह़[1] के गाँव और क़स्बों में भी हज़ारों मतब जारी थे। और हिन्दोस्तान के जिन दरबारों और शहरों में मशहूर और नामवर तबीब थे, सब लखनऊ और अतराफ़े लखनऊ के थे। चुनाँचिः क़स्ब-ए-मोहान के एक तबीब को दरबारे गेकिवाड़ बड़ौदा में वह अ़िज़्ज़त ह़ासिल हुई जो बहुत कम अतिब्बा को ह़ासिल हो सकी होगी। ग़रज़ ऐसे नामवर तबीब ख़ाके लखनऊ ने पैदा किए, जिनकी मसीह़ नफ़्सी के कारनामे बच्चे-बच्चे की ज़बान पर हैं।

दरबारे अवध के आख़िर अ़ह्द में सय्यद मुहम्मद मुर्तअश के एक शागिर्द रशीद हकीम मुहम्मद याक़ूब ने अपना मतब जारी करके ऐसी मर्जअ़ीयत आ़म्मः ह़ासिल की कि उनकी ज़ात से एक बहुत बड़े नाम और तिब्बी ख़ानदान की बुनियाद पड़ गई जो आज दुनिया भर में जवाब नहीं रखता। इसी ख़ानदान के मर्हूम नामवरों में हकीम मुहम्मद इब्राहीम, हकीम हाफ़िज़ मुहम्मद अब्दुल अ़ली, हकीम मुहम्मद इस्माअ़ील, हकीम मुहम्मद मसीह, हकीम मुहम्मद अब्दुल अज़ीज, हकीम हाफ़िज़ मुहम्मद अब्दुल वली थे। और हकीम अब्दुल ह़फ़ीज़ साहिब, हकीम अब्दुल रशीद साहिब, और हकीम अब्दुल मुईद साहिब इस वक़्त अपनी मसीहाई के कमालात दिखा रहे हैं। काश यह अपने ख़ानदानी फ़न को छोड़ के दूसरी हविसों में न पड़ते।

देहली में हकीम मुहम्मद शरीफ़ ख़ाँ का ख़ानदान इस वक़्त तक मौजूद है जिसमें हकीम महमूद ख़ाँ और हकीम अब्दुल मजीद ख़ाँ के ऐसे बाकमाल गुज़र चुके और हाज़िक़ुलमुल्क[2] हकीम मुहम्मद अजमल ख़ाँ साहिब बुज़ुर्गों के नाम को अपने ज़ाती कमालात से आज तक ज़ाहिर कर रहे हैं। देहली में हकीम मुहम्मद अजमल ख़ाँ साहिब ने एक मदर्स-ए-तिब्बियः भी जारी कर दिया है, और तिब्बी वैदिक कांफ्रेंस क़ाइम करके अपने फ़न को बहुत उरूज दे रहे हैं। इनके मुक़ाबिल लखनऊ में हकीम अब्दुल अज़ीज साहिब ने मदर्सः तक्मीलुत्तिब क़ाइम किया, जिससे हर साल बीसियों अतिब्बा तय्यार हो के अक़्तारे अर्ज़[3] में फैलते और लखनऊ की तिब्बी मर्जअ़ीयत का सुबूत देते हैं।

बहर तक़दीर, मुसलमानों का बराए नाम यूनानी फ़न्ने तिब आज अगर दुनिया भर में कहीं ज़िन्दः है तो हिन्दोस्तान में और हिन्दोस्तान में उसके मर्कज़ वही शहर

१ आस-पास (क़रीब)। २ देश के प्रवीणजन ३ पृथ्वी।

हैं, देहली और लखनऊ। मगर देहली में सिर्फ़ एक हकीम महमूद ख़ाँ का ख़ानदान है और लखनऊ में ऐसे बीसियों ख़ानदान पड़े हैं। देहली में बाज़ और अतिब्बा भी मतब करते नज़र आते हैं। वह इसी ज़माने के जदीद तबीब[1] हैं जिन्होंने अपने मतब जमा लिए हैं। लखनऊ में गो कि बहुत से नए तबीब हैं, लेकिन ऐसे बहुत से ख़ानदान हैं जिनमें सद्‌यों से फ़न्ने तिब को तरक़्क़ी रही।

लखनऊ और देहली के अतिब्बा में एक और फ़र्क़ भी है। तिब का मौजूदः निसाबे तअ़लीम, हमें नहीं मालूम अतिब्बा-ए-देहली का मुरत्तब किया हुआ है या अतिब्बा-ए-लखनऊ का; लेकिन इस पर पूरा-पूरा अ़मल जैसा अतिब्बा-ए-लखनऊ ने किया, अतिब्बा-ए-देहली नहीं करते। पढ़ाई वहाँ भी यही किताबें जाती हैं, मगर देहली में तबीबों का मतब एक बड़ी हद तक उनकी मुदव्वनः तिब से अलग हो जाता है। जिसकी वजह यह है कि उन्होंने वैदिक की दवाओं के इख़्तियार कर लेने में इसी क़दर नहीं किया कि उन नए अजज़ा को अपने मतब में दाख़िल कर लिया बल्कि यह बदएहतियाती भी की कि उनके दाखिल करने में अपने क़दीम मुदव्वनः व मुसल्लिमः उसूल, ख़ुसूसन मिज़ाज के मबाहिस से चश्मपोशी कर ली। और उन अजज़ा को इस्तेमाल करा देते हैं जिनके मिज़ाज और अफ़्आ़ल व ख़वास से वह पूरी तरह वाक़िफ़ नहीं हैं। वहाँ फ़िलहाल सबसे बड़ी शिकायत यह सुनी जाती है कि मदर्स-ए-तिब्बियः देहली के निसाब में तश्‌रीह के अ़लावः, डाक्टरी के दीगर उसूल भी इस कसरत और बेएहतियाती से इख़्तियार कर लिए गए हैं कि असली फ़न्ने तिब बजाए तरक़्क़ी करने के, बिल्कुल मिटा जाता है। यही बेएहतियाती उन्होंने पहले उसूले वैदिक के इख़्तियार करने में की थी। और यही अब उसूले डाक्टरी के लेने में हो रही है। ऐसी हालत में देहली में हमारे क़दीम फ़न्ने तिब का जो अंजाम होता नज़र आता है, निहायत ख़तरनाक है। बरख़िलाफ़ इसके, लखनऊ के तमाम तिब्बी ख़ानदानों, ख़ुसूसन हकीम याक़ूब मर्हूम के ख़ानदान और तकमीलुत्तिब में असली उसूले तिब्बी के क़ाइम रखने और उनको उन्हीं के दायरे में रख के तरक़्क़ी देने की कोशिश की जाती है। उनके मतब इस वक़्त तक अपने फ़न और अपनी किताबों से ज़रा भी जुदा नहीं है और ऐसी सलामत-रवी के रास्ते पर जा रहे हैं जिससे उम्मीद हो सकती है कि शायद इस्लामी तिब दस्तबुर्दे ज़मानः[2] से बच जाये, अगरचि अस्ली ख़िदमते फ़न से यह लोग भी हनोज़[3] बहुत दूर हैं। तिब की रूह, अ़िल्मे दवासाज़ी है जो हमारे क़दीम अ़िल्मे कीमिया[4] का एक शोअ़बः[5] है। इसी फ़न पर यूरोप के मौजूदः मुअ़्जिज़नुमा फ़न कैमिस्ट्री की बुनियाद क़ाइम हुई है। इस फ़न में मुसलमान मुसन्निफ़ीने सलफ़ की किताबें अभी कुल्लीयतन नहीं मिटीं, बल्कि बहुत सी बाक़ी रह गई हैं। असातिज़-ए-तिब[6] का काम है कि बार-बार उनके तिब का मुतालअ़ः[7] करके उनको समझें, उनकी

---

१ नये हकीम २ ज़माने की काट-छाँट ३ अभी तक ४ रसायनशास्त्र ५ विभाग ६ हकीमी के अध्यापक ७ अध्ययन।

तो अल्लाह तआ़ला फ़रमाता है कि मेरे बन्दे ने गुनाह किया और वह जानता है कि उसका एक रब है जो गुनाह मुआ़फ़ भी करता है और पकड़ता भी है। फिर वह गुनाह में मुब्तिला हो जाता है और कहता है कि ऐ अल्लाह दरगुज़र फ़रमा। तो अल्लाह तआ़ला फ़रमाता है कि मेरे बन्दे ने गुनाह किया और उसको अ़िल्म है कि उसका एक मालिक है जो ग़ल्ती से चश्मपोशी[1] भी फ़रमाता है। और सज़ा भी देता है। तो मैंने अपने बन्दे को मुआफ़ कर दिया, जो चाहे* करे। [बुख़ारी-मुस्लिम]

१९१ बख़्शिश चाहना बन्दगी[2] की दलील है

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, उसकी क़सम जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है, अगर तुम गुनाह न करो तो अल्लाह तुमको उठा लेगा और एक ऐसी क़ौम को लायेगा जो गुनाह करेंगे और अल्लाह से बख़्शिश चाहेंगे तो अल्लाह उनको बख़्श देगा। [मुस्लिम]

हज़्रत अबू अय्यूब (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सुना है कि अगर तुम गुनाह न करोगे तो अल्लाह तआ़ला ऐसी मख़लूक़ पैदा करेगा जो गुनाह करेगी। और अल्लाह उनको बख़्श देगा। [मुस्लिम]

१९२ सच्चे दिल के साथ ला इलाह इल्लल्लाहु कहने वालों को जन्नत की बशारत[3]

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (स़०) की ख़िदमत में हज़्रत अबूबक्र (र०) हज़्रत उमर (र०) और हम चन्द आदमी हाज़िर थे। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हमारे पास से उठकर कहीं तश्रीफ़ ले गये; देर हो गयी और तश्रीफ़ नहीं लाये। हम डरे कि नसीबे दुश्मनान कहीं कोई ख़तरा तो पेश नहीं आया। हम सब घबराये और उठ खड़े हुए। सबसे पहले मैं ही घबराया। मैं रसूलुल्लाह (स़०) की तलाश में निकला। तलाश करते-करते अन्सार के एक बाग़ की तरफ़ आया (आगे उन्होंने पूरी तफ़सील सुनाते हुए कहा कि) रसूलुल्लाह (स़०) ने फ़रमाया, जाओ जो तुम्हें बाग़ के पार मिले और सच्चे दिल के साथ गवाही दे कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं उसको जन्नत की बशारत दो। [मुस्लिम]

---

१ निगाह हटा लेता है २ इबादत, भक्ति ३ शुभ समाचार, ख़ुशख़बरी।

---

* जो चाहे करे का मतलब यह है कि जब तक गुनाह के बाद तौबः करता रहे मैं उसको बख़्श दूँगा क्योंकि तौबः गुज़श्ता अ़मल को धो देती है।

११३ आँहज़रत (स०) का उम्मत के लिए बेक़रार होना

हज़्रत अ़ब्दुल्लाह (र०) बिन अम्र (र०) बिन अलआ़स से रिवायत है कि नबी (स०) ने इब्राहीम (अ०) का यह कहना दुहराया जो अल्लाह तआ़ला ने क़ुर्आन मजीद में नक़्ल फ़रमाया हैः—

रब्बि इन्नहुन्न अज़्लल्न कसीरम्-मिनन्नासि ज फ़मन् तबिअ़नी फ़इन्नहू मिन्नी ज ...

ऐ परवरदिगार बेशक मअ़बूदानें बातिल ने बहुत लोगों को गुमराह किया पस जो मेरी इत्तिबाअ़ करेगा वह मुझसे है। [सू० इब्राहीम, रु० ६ आ० ३६]

फिर हज़रत ई़सा (अ०) का क़ौल पढ़ा :—

इन् तुअ़ज्जिबहुम् फ़इन्नहुम् इ़बादुक ज व इन् तग़्फ़िर् लहुम् फइन्नक अन्तल्-अ़ज़ीज़ुल्ह़कीमु।

अगर तू उन पर अ़ज़ाब करे तो यह तेरे बन्दें हैं तुझे हर तरह इख़्तियार है। और अगर तू उनको बख़्श दे तो बेशक तू ज़बरदस्त हिकमत वाला है। [सू० माइदः रु० १६ आ० ११८]

फिर आपने हाथ उठाये और फ़रमाया, अल्लाहुम्म† उम्मती-उम्मती और यह फ़रमाकर रो दिये। अल्लाह तआ़ला ने हज़्रत जिबरील (अ़) से फ़रमाया कि मुहम्मद (स०) के पास जाओ और पूछो कि आप क्यों रोये; हाँलाँकि तुम्हारा रब ख़ूब वाक़िफ़ है। जिबरील (अ़०) आये और पूछा तो रसूलुल्लाह (स०) ने हज़्रत जिबरील (अ०) को अपने रंज का सबब बतलाया। अल्लाह तआ़ला तो जानता ही था, फ़रमाया, ऐ जिबरील! (अ़०) मुहम्मद (स०) के पास जाओ और कहो कि अ़न्क़रीब तुम्हारी उम्मत[1] के बारे में हम ख़ुश कर देंगे और तुम्हें रंज न देंगे। [मुस्लिम]

११४ अल्लाह का हक़ बन्दों पर और बन्दों का हक़ अल्लाह पर

हज़्रत मआ़ज़ (र०) बिन जबल से रिवायत है कि मैं गधे पर रसूलुल्लाह (स०) के पीछे था। आपने फ़रमाया, ऐ मआ़ज़! क्या तुम जानते हो अल्लाह का बन्दों पर क्या हक़ है, और बन्दों का अल्लाह पर क्या हक़ है ? मैंने अ़र्ज़ किया, अल्लाह और उसके रसूल ज़ियादः जानते

† ऐ अल्लाह मेरी उम्मत मेरी उम्मत।

१ अनुयायी समुदाय।

हैं। फ़रमाया, अल्लाह का हक़ बन्दों पर यह है कि उसकी अ़िबादत करें, और उसके साथ किसी को शरीक न करें; और बन्दों का अल्लाह पर यह हक़ है कि जिसने उसका शरीक न ठहराया हो उस पर अज़ाब न करे। मैंने कहा या रसूलल्लाह! क्या मैं लोगों को ख़ुशख़बरी दे दूँ। फ़रमाया नहीं, वरना भरोसा कर लेंगे। [बुख़ारी-मुस्लिम]

हज़्रत बरा (र०) बिन आ़ज़िब से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया मुसलमान से जब क़ब्र में पूछा जाता है वह गवाही देता है कि अल्लाह के सिवा कोई मऽबूद नहीं और मुहम्मद (स०) उसके रसूल हैं। यही माने इस इरशाद के हैं।

युसब्बितुल्लाहुल्लज़ीन आमनूबिल्क़ौलिस्साबितिफ़िलह्ूयातिद्दुन्या व फ़िल्आख़िरति।

अल्लाह ईमानवालों को मज़बूत करता है। पक्की बात के साथ दुनिया की ज़िन्दगी और आख़िरत की ज़िन्दगी में§। [बुख़ारी-मुस्लिम]

१३६८ मोमिन को नेक कामों का अज्र दुनिया और आख़िरत में मिलेगा

हज़्रत अनस (र०) से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया कि काफ़िर जब कोई भलाई करता है तो उसको दुनिया में उसका कुछ न कुछ इनआ़म मिल जाता है। और मोमिन की भलाइयों का ज़ख़ीरः उसको आख़िरत में मिलेगा और दुनिया में भी उसको ताअ़त[1] पर रिज़्क़[2] मिलता है।

एक रिवायत में है कि अल्लाह तआ़ला किसी मोमिन[3] के साथ भलाई के मुआ़मले में कोई कमी नहीं फ़रमाता; दुनिया में भी देता है और आख़िरत में भी बदला देगा। लेकिन काफ़िर जब कोई भलाई अल्लाह के लिए करेगा तो उसको दुनिया में उसका फल मिल जायेगा; और आख़िरत में उसके लिए कोई नेकी न होगी जिसका बदला दिया जाये। [मुस्लिम]

§ यानी जिन लोगों ने सच्चे दिल से दुनिया में कलिमा पढ़ा और ईमान लाये और उस कलिमा ने उनके दिल में जड़ पकड़ ली तो ऐसे आड़े वक़्त पर भी कि ख़ुद उनके हवास बजा न होंगे, अल्लाह उनकी मदद फ़रमायेगा। और उनकी ज़बान से भी सच्ची बात निकलवायेगा।

1 इबादत, उपासना, भक्ति २ रोज़ी, जीविका ३ ईमानवाला।

१४/३९६ नमाज़ों की मिसाल

हज्रत जाबिर (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, पाँच वक़्त की नमाज़ों की मिसाल रवाँ[1] और लबालब नहर की मिसाल है, जो तुममें से किसी के दरवाज़े पर हो; वह उस नहर से रोज़ पाँच मर्तबा ग़ुस्ल करता हो। [मुस्लिम]

१८/३९७ चालीस मुवह्हिद[2] मुसलमानों की शफ़ाअत[3] मुर्दे के हक़ में क़ुबूल होगी

हज्रत इब्नि अब्बास (र०) से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह (स०) से सुना है कि मुसलमान आदमी मर जाये और उसके जनाज़े पर ऐसे चालीस आदमी हों जो अल्लाह का शरीक न ठहराते हों तो शफ़ाअत[3] उसके हक़ में क़ुबूल फ़रमायेगा। [मुस्लिम]

हज्रत इब्नि मस्ऊद (र०) से रिवायत है कि हम लोग रसूलुल्लाह (स०)के साथ क़रीब चालीस अश्ख़ास[4] के एक ख़ैमा[5] में थे। रसूलुल्लाह (स०) ने फ़रमाया, क्या तुम राज़ी हो कि चौथाई जन्नत वालों में हो? हमने कहा, हाँ। फ़रमाया, क्या तिहाई जन्नती होना पसन्द है? हमने कहा, हाँ। तो फ़रमाया, क़सम है उसकी कि जिसके क़ब्ज़े में मुहम्मद (स०) की जान है बेशक मैं उम्मीद करता हूँ कि तुम निस्फ़ जन्नती हो। क्योंकि जन्नत में सिर्फ़ मुसलमान ही दाख़िल होंगे। और तुम्हारी निस्बत अहलॅ शिर्क[6] में ऐसी है जैसे एक सफ़ैद बाल बैल की काली खाल में या एक काला बाल बैल की सुर्ख़ खाल में। [बुख़ारी-मुस्लिम]

१६/३९८ बख़्शिशॅ एज़दी[7]

हज्रत अबू मूसा (र०) अशअ़री से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (स०) ने फ़रमाया, अल्लाह तआ़ला क़ियामत के दिन हर मुसलमान को एक यहूदी या नसरानी देगा और फ़रमायेगा कि यह तुम्हारा आग से फ़िदयः है और फ़रमाया कि क़ियामत के दिन मुसलमान पहाड़ जैसे गुनाहों में लदेफँदे आयेंगे और अल्लाह तआ़ला उनको बख़्श देगा।

१७/३९९ अल्लाह तआ़ला के अ़फ़्व व करम[8] की नज़र

हज्रत इब्नि उमर (र०) से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सुना है कि क़ियामत के दिन मोमिन अल्लाह तआ़ला —

---

१ बहती हुई २ एक ईश्वर को माननेवाला ३ नजात की सिफ़ारिश ४ व्यक्तियों ५ रावटी, तम्बू ६ बहुदेव-पूजकों ७ ईश्वरीय, ख़ुदाई ८ क्षमा और दया।

से क़रीब किया जायेगा और वह उसपर अपनी रह्‌मत का साया करेगा। और उससे उसके गुनाहों का इक़रार लेगा। फ़रमायेगा, क्या तुम इस गुनाह को जानते हो? वह कहेगा, ऐ हमारे परवरदिगार! हम इसको जानते हैं। अल्लाह तआ़ला फ़रमायेगा, मैंने दुनिया में तुम्हारी सत्रपोशी[1] की और आज भी मैं तुमको बख़्शे देता हूँ। फिर नेकी का आमालनामः उसको देगा। [बुख़ारी-मुस्लिम]

$\frac{१८}{४००}$ नमाज़ गुनाहों का कफ़्फ़ारः[2] है

हज़्रत इब्नि मसऊ़द (र०) से रिवायत है कि एक शख़्स एक गुनाह करके अपने दिल में बहुत नादिम हुआ। वह आँहज़रत (स़०) की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और आपसे उस गुनाह का ज़िक्र किया। इस मौक़ा पर यह आयत नाज़िल हुई। उस आदमी ने कहा यह हुक्म सिर्फ़ मेरे लिए है। आपने फ़रमाया, नहीं मेरी सारी उम्मत[3] के लिए है। [बुख़ारी-मुस्लिम]

…अक़िमिस्सलात तरफ़यिन्नहारि व ज़ुलफ़म्मिनल्लैलि ॥ अिन्नल्-हूसनाति युज़्हिब्नस्सय्यिआति ॥ …।

नमाज़ को क़ायम करो दिन के दोनों सिरों पर और रात के कुछ हिस्सों में; बेशक नेक काम बुरे कामों को मिटा देते हैं।

[सू० हूद, रु० १० आ० ११४]

$\frac{१९}{४०१}$ रसूलुल्लाह (स़०) के साथ नमाज़ पढ़ने से गुनाह मुआ़फ़ हो गया

हज़्रत अनस (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (स़०) की ख़िदमत में एक आदमी हाज़िर हुआ। अ़र्ज़ किया या रसूलल्लाह! मैं एक जुर्म का मुर्तकिब[4] हो गया हूँ। आप मुझपर हद क़ायम कीजिए। इतने में नमाज़ का वक़्त आ गया। उसने नबी (स़०) के साथ नमाज़ पढ़ी। जब नमाज़ पूरी हो गयी तो अ़र्ज़ किया या रसूलल्लाह! मैं एक जुर्म का मुर्तकिब हुआ हूँ, पस अल्लाह तआ़ला का हुक्म मेरे बारे में नाफ़िज़ कीजिए[5]। आपने फ़रमाया, तुमने हमारे साथ नमाज़ पढ़ी? अ़र्ज़ किया, हाँ। फ़रमाया, बस तुम बख़्श दिये गये☼।

[बुख़ारी-मुस्लिम]

☼ यह कोई ऐसा ही गुनाह था जैसा पिछली हदीस में सायल[6] नावाक़िफ़ियत से यह समझता था कि उस पर हदें शरई[7] क़ायम होगी वह नमाज़ से मुआ़फ़ हो गया।

१ ऐबों को दरगुज़र करना २ प्रायश्चित्त ३ जमात ४ अपराधी ५ लागू कीजिए ६ प्रश्नकर्ता ७ दीन की मर्यादा।

२०/४०२ खाने और पीने पर अल्लाह की तारीफ़

हज़्रत अनस (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, अल्लाह तआ़ला ऐसे बन्दे से इतनी ही बात पर ख़ुश हो जाता है जो खाना खाये तो अल्लाह की तारीफ़ और शुक्र अदा करे और पानी पिये तो उसकी तारीफ़ और शुक्र अदा करे। [मुस्लिम]

२१/४०३ अल्लाह तआ़ला का मोमिन बन्दे की तौबः को चाहना

हज़्रत अबू मूसा (र०) अश्अ़री से रिवायत है कि नबी (स़०) ने फ़रमाया, अल्लाह तआ़ला रात को अपना हाथ फैलाता है ताकि दिन का गुनहगार तौबः करे; और अपना हाथ दिन को फैलाता है ताकि रात का गुनहगार तौबः करे यहाँ तक कि सूरज मग़्रिब से[1] निकले†।

[मुस्लिम]

२२/४०४ वज़ू और नमाज़ की ख़ासिय्यत

हज़्रत उमर (र०) बिन अ़बसः से रिवायत है कि मैं जाहिलीयत में गुमान करता था कि लोग गुमराही पर हैं। उनके पास कुछ भी हक़ व हिदायत नहीं है। और वह बुतों को पूजते हैं। फिर मैंने सुना कि मक्का में एक साहब आसमानी ख़बरें देते हैं। मैं अपनी सवारी पर बैठकर उनके पास आया। मैंने देखा कि रसूलुल्लाह (स़०) पोशीदः रहते हैं और आपकी क़ौम बड़ी गुस्ताख़ है। मैंने छुपे-चोरी आप से मिलने की तदबीर की; यहाँ तक कि मैं आपके पास पहुँच गया। मैंने अ़र्ज़ किया कि आप कौन हैं ? फ़रमाया, मैं नबी हूँ। मैंने कहा, नबी किसको कहते हैं ? फ़रमाया, मुझे अल्लाह ने भेजा है। मैंने अ़र्ज़ किया, किस चीज़ के साथ ? फ़रमाया, मुझको इस पैग़ाम के साथ भेजा है कि रिश्तों को जोड़ा जाये और बुतों को तोड़ा जाये; और अल्लाह को एक समझा जाये, उसके साथ किसी को शरीक न किया जाये। मैंने कहा आपके साथ कौन है ? फ़रमाया, आज़ाद और ग़ुलाम और उस दिन आपके साथ हज़्रत अबूबक्र (र०) और हज़्रत बिलाल (र०) थे। मैंने कहा, मैं आपकी पैरवी करना चाहता हूँ। आपने फ़रमाया इस वक़्त ऐसा करना तुम्हारे लिए बहुत मुश्किल है। क्या तुमको मेरे और लोगों के हाल की ख़बर नहीं ? जब सुनना कि मैं ग़ालिब[2] आ गया तो मेरे पास

---

† यानी दिन रात उसके लिए दरे इजाबत[3] यानी उसके अ़फ़्व[4] का दामन हर वक़्त फैला रहता है।

---

१ पश्चिम से २ प्रबल ३ अपनाने का द्वार ४ क्षमा का आँचल।

आना। मैं अपने घर चला आया और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम मदीना तशरीफ़ ले गये। जब आप मदीना पहुँच गये तो मैं लोगों से ख़बरें मालूम करने लगा। फिर मदीना के कुछ लोग आये। मैंने उनसे कहा, जो साहब मदीना तशरीफ़ ले गये हैं। उनका क्या हाल है? उन्होंने जवाब दिया, लोग उन पर टूटे पड़ते हैं। उनकी क़ौम ने उनके क़त्ल का इरादा किया था मगर कुछ न कर सके। यह सुनकर मैं मदीना आया और हाज़िर ख़िदमत हुआ। मैंने अर्ज़ किया आपने मुझे पहचाना? फ़रमाया, तुम वही हो जो मक्का में मुझसे मिले थे। मैंने कहा या रसूलल्लाह! जो अल्लाह तआला ने आपको सिखलाया है, मुझे सिखलाइए। मैं उससे नावाक़िफ़ हूँ और मुझे नमाज़ के मुतअल्लिक़ भी बतलाइए। आपने फ़रमाया, सुबह की नमाज़ पढ़ो, फिर ठहर जाओ, यहाँ तक कि सूरज निकल आये और बलन्द हो जाय। क्योंकि वह शैतान के दो सींगों के दर्मियान निकलता है। उस वक़्त काफ़िर उसको सिज्दः करते हैं। फिर नमाज़ पढ़ो। इसलिए कि नमाज़ के वक़्त रह्मत के फ़िरिश्ते मौजूद रहते हैं। फिर ठहर जाओ। जब साया नेज़े के बराबर हो जाये तो रुक जाओ इसलिए कि उस वक़्त दोज़ख़ दहकायी जाती है। फिर जब साया बढ़ने लगे (ज़वाल हो जाये) तो नमाज़ पढ़ो क्योंकि उस वक़्त भी रह्मत के फ़िरिश्ते मौजूद रहते हैं। यहाँ तक कि तुम अस्र पढ़ो। फिर सूरज के ग़ुरूब तक ठहर जाओ उस वक़्त शैतान दो सींगों के दर्मियान छुपता है। इस वक़्त काफ़िर उसको सिज्दः करते हैं। मैंने कहा, या नबिय्यल्लाह! वज़ू के मुतअल्लिक़ भी बतला दीजिए। आपने फ़रमाया, जब कोई शख़्स वज़ू का इरादा करता है तो कुल्ली करता है। नाक में पानी डालता है। फिर नाक साफ़ करता है। तो उसके चेहरे, मुँह और बाँसों से[1] गुनाह झड़ जाते हैं। फिर वह अपना चेहरा धोता है। उसके चेहरे की ख़ताएँ पानी के साथ उसकी दाढ़ी के किनारों से निकल जाती हैं। फिर अपने हाथ कुहनियों तक धोता है। तो उसके हाथ की ख़ताएँ पानी के साथ उसकी उँगलियों से निकल जाती हैं। फिर अपने सर का मस्ह[2] करता है तो उसके सर की ख़ताएँ पानी के साथ उसके बालों के किनारे से निकल जाती हैं। फिर वह अपने पाँव टख़नों तक धोता है, तो उसके पाँव की ख़ताएँ पानी के साथ उसकी उँगलियों से निकल जाती♦ हैं। फिर वह

♦ हाथ, पाँव, आँख, कान, नाक सबसे गुनाह हो सकते हैं। नाजायज़ चीज़ की तरफ़ हाथ बढ़ाना, उसकी तरफ़ पाँव से चलकर जाना, उसको आँख उठाकर देखना, नाजाइज़ बात को सुनना, नाजाइज़ ख़ुश्बू सूँघना, यह सब उन अअ्ज़ा[3] के गुनाह हैं जो

१ नाक की हड्डी २ वज़ू के समय सर पर गीला हाथ फेरना ३ अंगों।

नमाज़ पढ़ता है। उसमें अल्लाह की तारीफ़ और सना बयान करता है और ऐसी बुज़ुर्गी जिसका वह अहल[1] है। और अपने दिल को अल्लाह की तरफ़ यकसू कर देता है। तो वह अपनी ख़ताओं से इस तरह पाक व साफ़ हो जाता है जैसे लड़का पैदाइश के दिन। अम्र (र०) बिन अ़बसः ने यह ह़दीस अबू उमामः से बयान की। (अबू उमामः सहाबी थे) तो उन्होंने उनसे कहा, देखो क्या कहते हो, एक जगह पर इतना मर्तबा आदमी को दिया जायगा। अम्र (र०) ने कहा, ऐ अबू उमामः! समझकर कहो; मेरी उम्र बड़ी हो गयी और मेरी हड्डी कमज़ोर हो गयी, मौत मेरे क़रीब आ गयी। मुझे ज़रूरत नहीं कि मैं अल्लाह और उसके रसूल पर झूठ बोलूँ। अगर मैंने इसको रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से न सुना होता एक मर्तबा, दो मर्तबा, तीन मर्तबा (यहाँ तक कि सात तक गिन गये) तो मैं कभी न कहता; लेकिन मैंने इससे ज़ियादः इसको सुना है। [मुस्लिम]

हज़्रत अबू मूसा (र०) अश्अ़री से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया जब अल्लाह तआ़ला किसी उम्मत पर रह्मत का इरादा करता है, तो उनके नबी को उनसे पहले अपने पास बुला लेता है और उनको इस उम्मत का पेशरव[2] बना देता है। और जब किसी उम्मत पर हलाकत[3] का इरादा करता है, तो उन पर उनके नबी की ज़िन्दगी में अ़ज़ाब भेजता है। और वह उसको मुलाहिज़ा फ़रमाते हैं। उनकी आँखे उनकी हलाकत से ठण्डी करता है; इसलिए कि उन्होंने झुठलाया और उनके हुक्म की नाफ़रमानी[4] की। [मुस्लिम]

वज़ू के पानी के साथ धुलते और झड़ते जाते हैं। अलबत्ता इसका यक़ीन होना चाहिए कि वज़ू में यह ख़ासिय्यत है। और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का यह ख़बर देना कि वज़ू में यह ख़ास्सः बरहक़ है। और वज़ू करते वक़्त उसका शौक़ और लालच होना चाहिए कि यह सग़ायर[5] जो सुबह से शाम तक बेख़बरी में होते रहते हैं, वज़ू में धुल जायें और इन गुनाहों से हम वज़ू करके पाक व साफ़ होकर उठें। इस नीयत, ख़्याल और ध्यान के साथ वज़ू होना चाहिए। इस तरह वज़ू में ख़ास नूरानियत[6] और रूहानियत[7] पैदा हो जायेगी।

---

१ अधिकारी, योग २ पथप्रदर्शक, अगुवा ३ विनाश ४ अवज्ञा ५ छोटे गुनाह ६ तेज ७ आत्मिक शान्ति (आध्यात्मिकता)।

वृक्षस्तम्भे राजे फळवन्त होइ सेहि ।
बान्धव कुमुदर कि प्रभा-सुधा बहि ये । ४७ ।

सरलार्थ--उस आँगन पर जो छायामण्डप बना था, उसके खंभों में सुपारियों, नारियलों आदि नाना प्रकार के फल सुसज्जित किये गये थे। इस हेतु वे खम्भे फलवन्त वृक्षों की तरह शोभा पा रहे थे। फिर उन खम्भों पर चूना पोता (लेपा) गया है। इसलिए वे खम्भे चन्द्र की अमृत-प्रभा-धारा के समान प्रतीत हो रहे हैं। (४७)

बान्धव-कुमुदर—कुमुदबन्धु चन्द्रमा की; सुधा—चूना, अमृत। (४७)

ब्रह्मा आननकु ये होइला अनुरूप ।
वेदवाक्य पूर्ण होइ चतुर मण्डप ये । ४८ ।

सरलार्थ--वहाँ चार मण्डप ब्रह्मा के चार मुखों के समान प्रतीत हुए। चतुरानन ब्रह्मा वेदों से परिपूर्ण हैं। उसी प्रकार ये चार मण्डप ब्राह्मण-मुखों से निःसृत वेदवाक्यों से पूर्ण हैं। (४८)

आनन—मुख। (४८)

विप्रे लक्षित होइले ताङ्क कर सङ्गे ।
विष्टर ताम्र सुपात्री श्रुव श्रुच योगे ये । ४९ ।

सरलार्थ--उन्हीं ब्रह्माओं तथा आचार्यों के हस्तों सहित कर्मकारी ब्राह्मण समान दिखाई पड़े। ब्राह्मण कुशासन, ताम्बी पात्री, स्रुव, स्रुच आदि धारण किये रहते हैं। उसी तरह इन्हीं पुरोहितों के हाथों में कुशासन, ताम्बे पात्र, स्रुव, स्रुच आदि सुशोभित हो रहे हैं। (४९)

विष्टर—कुशासन; ताम्र सुपात्री—ताम्बे से बनी अच्छी पात्री; स्रुव—स्रुवा, घी की आहुति डालने की करछी; स्रुच—लकड़ी की बनी उंगलियोंवाली स्रुवा। (४९)

वरकन्याङ्कु बोलन्ति ईश्वर पार्वती ।
बान्धिले से मुकुट करि कि एहि मति ये । ५० ।

सरलार्थ--लोग वरकन्या को शंकर-पार्वती बोलते हैं। शंकर पार्वती के सिरों पर रत्न-मुकुट शोभित होते हैं। मानों इसी दृष्टि से पुरोहितों ने वरकन्या के मस्तकों पर मुकुट बाँधे। इस तरह वरकन्या शंकर-पार्वती की तरह दिखाई दिये। (५०)

बर्द्धित पुण ए गोत्रवंशवर ख्यात ।
विशीर्ण्ण भीतिहिँ होए कामर उदित ये । ५१ ।

सरलार्थ--पर्वतवंश श्रेष्ठ हिमालय के कैलास शृंग में वर्द्धित महादेव जी को देखकर काम के मन में अपने क्षीण हो जाने का भय उत्पन्न होता है। उसी प्रकार राम-लक्ष्मणादि वर सर्वकुल-श्रेष्ठ विख्यात सूर्यवंश में पाले पोसे गये हैं। उन्हें तथा उनके साथ कन्याओं को शंकर-पार्वती के सदृश देखकर कन्दर्प के मन में भय हुआ कि कहीं इनके संयोग से मैं क्षीण न हो जाऊँ। (५१)

गोत्रवंशवर—पर्वतसमूह में श्रेष्ठ, हिमालय (कैलास पर्वत), प्रधान सूर्यवंश (श्लेष); विशीर्ण—विशेष रूप से क्षीण; भीति—भय। (५१)

वैशाले शूळ भरम उपुजि ता थिव।
बळा-डम्बर-नादकु शुणि पळाइब ये।५२।

सरलार्थ--विवाह वेदी के पास गाड़े वैशाल (बाँस के दण्ड) को देखकर काम के मन में त्रिशूल का भ्रम उत्पन्न होगा और पाजेबों की आवाज़ को डमरू का शब्द समझकर काम दूर भाग जाएगा। (५२)

वीतिहोत्रे लाजा-होम करु लज्जाबळि।
बळिरे विचार काहिँ होइब सम्भाळि ये।५३।

सरलार्थ--पुरोहितों द्वारा अग्नि में लाजा (खील) होम करने पर लज्जाओं ने विचार किया, जब इनका मन रतिरस के प्रति चलेगा, तो हम लोग कहाँ सम्हाल कर रह सकते हैं? अर्थात् अभी लाजा-होम के मिस लज्जा को जला दिया जा रहा है, ताकि मिलन के समय लज्जा के रहने की गुँजाइश न रहे। (५३)

बीतिहोत्रे—अग्नि में; लाजा—खील, लावा। (५३)

बन्धाइले दुहिङ्कर कर से कोविदे।
वामा पुंस एक करि से दम्पति-पदे ये।५४।

सरलार्थ--विज्ञ ब्रह्माओं तथा आचार्यों ने वर-कन्याओं के हस्तों को इकट्ठा किया एवं स्त्री तथा पुरुष का 'दम्पती' पद में एकीकरणपूर्वक दोनों के हाथ बँधाये। (५४)

विप्र दुहिताए तहिँ परवेश हेले।
विपद-पाश फिटिला पाञ्चि फिटाइले ये।५५।

सरलार्थ– तदनन्तर ब्राह्मण कन्याओं ने वहाँ उपस्थित होकर वर-कन्याओं का कर-बन्धन खोला। यह देखकर ऐसा प्रतीत हुआ उन्होंने यह समझकर कि काम की विपत्ति रूपी फाँस खुल गई (वर-कन्याओं की हस्तग्रन्थि खोल दी)। (५५)

बाहारिले गण्ठिआळ अळंकृत होइ।
विश्वकेतु रणारम्भे कि से शाढ़ी पाइ ये। ५६।

सरलार्थ--अनन्तर वरकन्याएँ विवाह-उत्तरीयों से सुशोभित होकर निकले। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो वरकन्याओं ने कन्दर्प से युद्ध छेड़ने के पहले से ही पुरस्कार-स्वरूप साड़ियाँ पाई हैं। (५६)

गइंठाळ—विवाह के अवसर पर वरकन्या दोनों के कन्धों का योग करनेवाला उत्तरीय। (५६)

वराटके अन्तःपुरे द्यूत खेळाइले।
वळवन्त अवळा धरषि न पारिले ये। ५७।

सरलार्थ--सखियों ने वरकन्याओं को अन्तःपुर में कौड़ियों से जुआ खेलाया। इसमें वलवान् रामचन्द्रादि वरसमूह सीतादि अबला कन्याओं को हरा नहीं सके। अर्थात् उनके सुकोमल हस्तों को कहीं पीड़ा न पहुँचे, इस कारण वे बलात् उनसे कौड़ियाँ नहीं छीन सके। अतएव हार जाने का बहाना किया। (५७)

वराटक—कौड़ियाँ; द्यूत—जुआ, कौड़ी; धरषि न पारिले—हरा नहीं सके। (५७)

वृद्धिनदी तटतरु उत्पाटि भसाइ।
बेतस मध्यरे किछि करि न पारइ ये। ५८।

सरलार्थ--बढ़ी हुई नदी कूलस्थित बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़ कर बहा ले जाती है। परन्तु गर्भस्थित बेंत के पौधों का कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती। उसी प्रकार इस जुआ (विवाहकालीन कौड़ियों का खेल) की भी घटना हुई। (५८)

बिहुँ पञ्चग्रासी हस्त स्थाळीरु न चाळि।
बळये राममूरति दिशन्ते मैथिळी ये। ५९।

सरलार्थ--पंचग्रासी करते समय मैथिली (सीता) को अपने कंगन में राम की मूर्ति दीखने से, उन्होंने अपने हाथ को थाली से नहीं सरकाया, क्योंकि सरकाने से रामचन्द्र की मूर्त्ति फिर दिखाई नहीं पड़ेगी। (५९)

पंचग्रासी—विवाह के बाद वरकन्या का एक थाली से एकत्र पाँच कौरों का अन्न-भोजन; स्थाळीरु—थाली से; बळये—कंगन में। (५९)

बारि-विधु-विम्बे यथा चकोर सुस्नेही ।
बसि पत्राच्छन्न वृक्षे टेकि न अनाईं ये । ६० ।

सरलार्थ--चकोर पक्षी पत्राच्छन्न वृक्ष पर बैठे जलमध्यस्थित चन्द्रविम्ब का दर्शन करके उसके प्रति अत्यन्त स्नेह प्रकट करते हुए उसकी ओर टकटकी लगाये देखा करता है और दूसरी ओर मुँह उठाकर नहीं देखता। उसी प्रकार सीता वस्त्रों से आच्छादित अपने कंगन में रामचन्द्र का प्रतिविम्ब निर्निमेष निहारने लगीं। (६०)

बढ़िला ए विधान शाशुए बन्दाइले ।
वितरण अमूल्य रतनमान कले ये । ६१ ।

सरलार्थ--ऐसे विधानानुसार पंचग्रासी के समाप्त होने पर सासों ने वरकन्याओं की वन्दना की और अमूल्य रत्नों का वितरण किया। (६१)

वीरवर भञ्ज सीता-रामकु ध्याइला ।
बाषठि पदे ए छान्द शेषकु बिहिला ये । ६२ ।

सरलार्थ--वीरवर उपेन्द्र भंज ने उन्हीं सीताराम का अपने मन में ध्यान करके बासठ पदों में इस छान्द को समाप्त किया। (६२)

॥ इति चतुर्द्दश छान्द ॥

पञ्चदश छान्द

राग—केदार। चक्रकेळि वाणी

बिचित्रित चित्ररे होइथिले, वामा मधुशय़्याकु मण्डाइले,
बपुवन्तरे होइछि रञ्जन, व्यक्त सुनेत्र रोहित खञ्जन। १।

सरलार्थ—मधुशय्या गृह (केलिमन्दिर सब) सुन्दरी वामाओं (रमणियों) के सदृश बने हुए थे। वामाएँ तिलकादि चित्रों से चित्रित होती हैं। ये केलिमन्दिर भी नाना प्रकार के चित्रों से चित्रित किये गये हैं। मधुशय्या के उद्देश्य से वामाओं का वस्त्रों तथा आभूषणों आदि से मण्डन किया जाता है। इन गृहों का भी मधुशय्या के योग्य मण्डन किया गया है। वामाएँ अपने-अपने सुन्दर शरीरों से शोभित होती हैं। ये गृह भी प्रशस्त आकृति द्वारा सुशोभित हैं। वामाओं के मनोहर नेत्र रोहितों (लाल वर्ण के मत्स्यों) तथा खञ्जन पक्षियों के सदृश प्रकाशमान होते हैं। ये गृह भी लाल रंग के मनोहर वस्त्रादि (चन्द्रातप आदि) से प्रकाशमान हो रहे हैं। (१)

वपवन्त—शरीरवन्त, लावण्यमय, शरीरवाली (रमणी के पक्ष में) प्रशस्त आकृति वाले (केलिपुर के पक्ष में); सुनेत्र—अच्छे चक्षु (रमणी के पक्ष में), अच्छे वस्त्र (केलिपुर); रोहित—मत्स्य विशेष (वामा), लाल रंग (केलिपुर); खञ्जन—पक्षी विशेष, सज्जित; (श्लेष)। (१)

विपतन य़े पलङ्क पलक, बेणी रत्नप्रदीपरे अधिक,
बेणी शोभा अगुरु धूम धार, बहिअछि अळका मनोहर। २।

सरलार्थ—वामाओं के नेत्रों में पलक-पतन की क्रिया होती है। इन गृहों में पलंग पड़े हुए हैं। वामाओं के भूषण रत्न जड़े रहने की वजह से वे अधिक दीप्ति प्राप्त करती हैं। इन गृहों में अनेक रत्नप्रदीप खचित हुए हैं। इसलिए ये अधिक उज्ज्वल दीखते हैं। वामाएँ धुआँधारों-सदृश वेणियों से सुशोभित होती हैं। ये गृह अगुरुकाष्ठ की धुआँ-धाराओं से सुशोभित हो रहे हैं। वामाएँ मनोहर अलके (चूर्ण-कुन्तल) धारण करती हैं। उसी तरह इन गृहों ने अलकापुर (कुबेरपुरों) की शोभा धारण की है। (२)

अगुरु—कृष्णचन्दन,; धमधार—धुआँधार; अळका—चूर्णकुन्तल, कुवेरपुर (श्लेष)। (२)

बक्त्र दर्पण चन्द्रातपे शोहि, विनोदकु प्रकाशिबारे स्नेही,
बिहि पुरे रूपक श्ळेष छन्दि, बाहे दम्पति हेबे बन्धाबन्धि । ३ ।

सरलार्थ—वामाओं के मुख दर्पणों की सी चमक से शोभित होते हैं। ये गृह दर्पण-खचित चन्द्रातपों (चँदोवों) से शोभा पा रहे हैं। वामाएँ रतिक्रीड़ा प्रकाश करने की अभिलाषिणी होती हैं। ये गृह भी उसी तरह आनन्द को प्रकट कर रहे हैं। कवि ने श्लेषरूपकों से वाँधकर केलिगृहों की वर्णना इस अभिप्राय से की कि इन गृहों में पत्नी-पति पारस्परिक बाहुबन्धन से एक दूसरे को गले लगावें। (३)

बक्त्र—मुख; छन्दाछन्दि—बाँधकर, उलझ-पुलझकर। (३)

बसु तहिँ रामा हेले राघव, बिधिरे त बासकसज्जा भाव,
विलोकित कान्ता स्मरे आगते, बळि चित्तद्वारे चाहिँ आरते। ४ ।
विरहरे उत्कण्ठिता प्रकाशि, बिहिबाकु सुरस मान घोषि,
बिम्बाधरे होइबाकु खण्डिता, बेग-बेग होइअछि ममता । ५ ।

सरलार्थ—अपने केलिगृह में रामचन्द्र बैठे 'रामा' की तरह हुए। रामा (स्त्री) अष्टलक्षण धारण करती है। विधि में तो रामचन्द्र ने वासकसज्जा नायिका का भाव धारण किया है। वह नायिका सुवेश से मण्डित होकर मण्डनगृह में बैठी रहती है। वैसे रामचन्द्र सुवेश- सुशोभित होकर केलिगृह में बैठे हुए हैं। प्रोषित-भर्त्तृका नायिका अपने कान्त का स्मरण करके उसके आगमन की प्रतीक्षा में रहती है। राम सीता के के कमनीय रूप का स्मरण करके उनके आगमन की प्रतीक्षा में मार्ग जोह रहे हैं। पति के नियमित समय पर न आने से विप्रलब्धा नायिका चित्त की उद्विग्नता से द्वार पर जाकर पति के आगमन-मार्ग को ताकती है। सीता के आगमन में विलम्ब होते देखकर रामचन्द्र भी उसी प्रकार ताक रहे हैं। फिर विरहोत्कण्ठिता नायिका के सदृश राम सीता-विरह-जनित उत्कण्ठा प्रगट कर रहे हैं। स्वाधीन-भर्त्तृका पति सहित नाना प्रकार की सुरतियों का विधान करने का विचार करती हैं। कलहान्तरिता 'मान'-भरी कथाओं को रटती रहती हैं। रामचन्द्रजी सुरसों का विधान करने के लिए उसी प्रकार रट रहे हैं। खण्डिता पक्व विम्बफल की-सी रक्तिमा अपने होठों तथा नेत्रों में धारण करके क्रोध के द्वारा अपना खण्डिता-भाव अभिव्यक्त करती है और अभिसारिका सम्भोग पाने के आवेश से शीघ्र शीघ्र गमन करती है। रामचन्द्रजी के मन में भी अपने विम्बफल के सदृश अधरों के सीताजी के दन्ताघात से खण्डित होने की इच्छा उदित हो रही है। (४-५)

बहुवचने एणु सिद्धि-र्तकि, व्याकरणे राम रामा करि कि ?
बिहि एणु गीते ग्रोषा सुषमा, बोले पश्चाते बस राम रामा। ६ ।

विलक्षित होइब किपाँ कले, विरोचन मोहने रामा हेले,
बयसीए एकाळे सुलक्षिणी, बिजे कराइले बाजुँ किंकिणी। ७ ।

बड़ 'तृषार्त्त' चातक ग्रेमन्त, बारिवाह ध्वनि शुणि तेमन्त,
विद्यु विद्युत कान्ति दिशिगला, बर्द्धमान तोष अति होइया। ८ ।

सरलार्थ—फिर कवि ने तर्क करके कहा, "शायद इन्हीं सब कारणों से संस्कृत व्याकरण में 'राम' शब्द बहुवचन में (राम, रामौ, रामाः) 'रामा' सिद्ध हुआ है ?" और भी कवि बोले, "गीत में रामचन्द्र को सर्वतो रूपेण नायिका के समान वर्णित करके उन्हें 'रामा' कहने से असंगत क्यों होगा ?" यदि पूछो कि 'राम' शब्द के पीछे 'रामा' शब्द कैसे बैठा, तो यह बात भी अप्रासंगिक नहीं होगी, क्योंकि पहले इन्हीं रामचन्द्र-विष्णु ने मालती-कन्या के रूप में विरोचन राक्षस को मोहित किया था और उसके पीछे बैठ उसके केशों का उत्पाटन किया था। इसी समय सखियों ने सुलक्षणी सीता को केलिमन्दिर में पधराया। चलते वक्त सीता की कटि-किंकिणियों के बजने से उनकी आवाज सुनकर रामचन्द्रजी वैसे ही आनन्दित हुए जैसे मेघका गर्जन सुनकर अत्यन्त तृवार्त्त चातक आनन्दित होता है। यदि मेघ-गर्जन के समय बिजली की चमक दिखाई पड़े, तो उसका आनन्द बहुगुना बढ़ जाता है। उसी प्रकार सीता की शरीर-कान्ति की चमक के दीखने से रामचन्द्र का आनन्द और भी अधिक बढ़ गया। (६-७-८)

बाळा तहुँ केळिपुर सन्निधि, बयसिकाए छळभाबे बोधि,
विकर्त्तन तेजे मोद पद्मिनी, विकर्त्तनवंशी से तु पद्मिनी। ९ ।

सरलार्थ—लज्जा तथा भय के हेतु केलिगृह के समीप सीता रुक गईं। तो एक सखी ने व्यञ्जना से उन्हें समझाते हुए कहा—तेजस्वी सूर्य अपने प्रखर तेज से अत्यन्त कोमल पद्मिनी को भी प्रफुल्ल करते हैं। उसी प्रकार तेजोमय सूर्यवंशी वीर रामचन्द्र सूर्यसम तुझे आनन्द प्रदान करेंगे, क्योंकि तू ही स्वभावतः पद्मिनी (पद्मिनी-जातीया स्त्री) है। इसलिए भय तथा लज्जा मत करना। (९)

बाकचातुरी केमन्त रहिला, बल्लभरे सर्मपिबा होइला,
बळाइण बळे द्वार देहळी, बाहुड़िले कबाट किळि आळी। १० ।

सरलार्थ—इसमें वचन की चातुरी कैसी रह गई ? (अर्थात् सखियों की यह वचन चातुरी अनूठी ही थी।) अनन्तर सीता को अपने कान्त के समीप सर्मपित किया गया। ऐसा बोलकर सखियों ने सीता को केलि-मन्दिर के द्वार की देहली तक ठेलकर पहुँचा दिया और किवाड़ बन्द करके वापस आईं। (१०)

केमन्त—कैसी; बळाइण—ठेलकर पहुँचा देना; कपाट—किवाड़; किळि—बन्द करके; आली—सखियाँ। (१०)

बळे बसाउँ तळेकोळे कान्त, बिराजित प्रभारे दुर्गामत,
ब्रीडावती चञ्चळ न छाड़िले, बोधुँ बिनये धीरा धीर हेले। ११।

सरलार्थ—रामचन्द्र के बलात् सीता को अपनी गोद में बैठाते यह दृश्य ऐसा दिखाई पड़ा मानो नीलमणि-प्रभा के बीच में कनक-दुर्गा विराजमान हो रही हों। लज्जावशत: सीता चंचलता नहीं छोड़ सकीं। परन्तु थीं तो वे पण्डिता। इसलिए रामचन्द्र के विनय-पूर्ण वाक्यों से वे धीर-स्थिर हुईं। (११)

ब्रीड़ावती—लज्जावती; धीरा—पण्डिता; धीर—स्थिर। (११)

बिदगध श्रीरामचन्द्र कहे, बन्धु जीवन थिबारे ए देहे,
बिळासिनी न करिबि आनकु, बोलि छुईं दीप हुताशनकु। १२।

सरलार्थ—लीलाप्रिय कला-विलासचतुर रामचन्द्र ने कहा—"प्रिये ! जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं, तब तक मैं अन्य रमणी को प्रिया नहीं करूँगा।" यह बोलकर उन्होंने दीपाग्नि को छूकर शपथ ली। (१२)

बिदगध—लीलाप्रिय कलाविलास चतुर; बिलासिनी—प्रिया; दीप हुताशनकु—दीपाग्नि को। (१२)

बइदेही केशुँ काढ़ि केतकी, वर्णलिखित पोछि कस्तूरीकि,
बळि नाहिँ आने आजियाए त, बळाइबि जन्मे-जन्मे मो चित्त। १३।

सरलार्थ—राम की सौगन्ध के उपरान्त सीता ने अपने केशों से केवड़ की एक पँखुड़ी निकाली और अपने चिबुक से कस्तूरी पोंछ लाई। पँखुड़ी पर कस्तूरी से अक्षर लिखे, "आज तक मेरा मन दूसरे पुरुष के प्रति नहीं ललचाया है, न तो भविष्य में ललचाएगा ही। जन्म-जन्म में मेरा मन आपके प्रति ही आकर्षित होता रहेगा। (१३)

मज आतां। १२१ म्हणे धांव धांव इंदिरावरा। वैकुंठवासिया करुणाकरा। पतितपावना सर्वेश्वरा। राजीवनेत्रा जगद्-गुरो। १२२ तत्काळ प्रगटला जगज्जीवन। म्हणे रे गाधि सावधान। माझी माया परम गहन। ब्रह्मादिकां अतर्क्य। १२३ तूं म्हणविसी सर्वज्ञ जाणता। सत्य कीं असत्य माया सांग आतां। बहुत ऋषी तर्क करितां। निर्वाह सर्वथा नव्हेचि। १२४ जे कथिती सदासर्वदा ज्ञान। सांगती माया लटकी म्हणोन। तेही मायेंत गेले गुंफोन। जाहले दीन सर्वही। १२५ तुज माया दाविली किंचित। पुढें आणिक पाहें अद्भुत। गाधि धांवोन चरण धरीत। सोडवीं मज येथोनी। १२६ मग गाधि भगवंतें हृदयीं धरिला। वरदहस्त मस्तकीं ठेविला। निजात्म-बोध प्रकट केला। सावध जाहला ब्राह्मण। १२७ जैसा स्वप्न देखतां जागा होय। कीं यामिनीअंतीं उगवे सूर्य। तैसा बोध प्रकटतां मोहभय। विरोन गेलें सर्वही। १२८ असो गाधीचा उद्धार जाहला। आपुले स्वरूपीं मेळविला।

मेरे लिए अब कैसा ब्राह्मणत्व? १२१ (फिर) वे कहते हैं--हे इन्दिरापति! दौड़ो! दौड़ो! हे वैकुण्ठवासी! हे करुणाकर, हे पतितपावन सर्वेश्वर! हे राजीवनयन जगद्गुरो! (दौड़ो)। १२२ (इस पर) जगज्जीवन भगवान् तत्क्षण प्रकट हुए और बोले--हे गाधि! सावधान! मेरी माया परम गहन है (और) ब्रह्मा आदि के लिए अतर्क्य है। १२३ तुम सर्वज्ञ तथा जानकार कहाते हो। अब कहो कि माया सत्य है वा असत्य। बहुत ऋषियों के तर्क करने पर भी उनकी बिलकुल नहीं निभती। १२४ जो सदा सर्वदा ज्ञान (की बातें) कहते हैं, माया को मिथ्या कहकर बताते हैं वे भी माया (के जाल) में फँस गये और सभी दीन हो गये। १२५ मैंने (तो) तुम्हें किंचित् (ही) माया दिखायी--आगे और अद्भुत (बात) देखो। (यह सुनकर) गाधि ने दौड़कर चरण पकड़ लिये और कहा--'मुझे इससे मुक्त करो।' १२६ तदनन्तर भगवान ने गाधि को हृदय से लगाया और उसके मस्तक पर हाथ रखा। आत्म-ज्ञान का बोध कराया, तो ब्राह्मण होश में आया। १२७ जैसे (कोई) सपना देखते हुए जागृत हो जाए अथवा जैसे रात के अन्त में सूर्य का उदय हो जाए, वैसे बोध (ज्ञान) के प्रकट हो जाने पर सभी मोह तथा (अज्ञान के कारण उत्पन्न) भय नष्ट हो गया। १२८ अस्तु! गाधि का उद्धार हुआ और उन्हें

हा इतिहास सांगितला । मायेनिमित्त श्रीरामा । १२९ मग बोले रघुनंदन । माया व्हावया काय कारण । स्वरूप निर्विकार निर्गुण । तेथें स्फुरण कां जाहलें । १३० पिंड ब्रह्मांड नाना योनी । नाना वर्ण नाना खाणी । हे मुळींहून मायेची करणी । मिथ्याभूत सर्वही । १३१ कीं निर्गुणा सगुण लागलें । अव्यक्त तें व्यक्तीस आलें । अनामास नाम ठेविलें । कां अंग लाविलें अनंगा । १३२ ऐकोन श्रीरामाचा प्रश्न । आनंदला ब्रह्मनंदन । म्हणे बा रे तूं परिपूर्ण चैतन्यघन । जाणोन प्रश्न करितोसी । १३३ रामा तुझेंचि दिव्य ज्ञान । तुजलाचि सांगतों परतोन । जैसें सुर-तरूचें फळ घेऊन । त्यासचि नैवेद्य दाविजे । १३४ कीं कनकाद्रीचें सुवर्ण घेऊन । त्यावरीच अलंकार घातले घडून । कीं क्षीरसिंधूचें दुग्ध घेऊन । पुन्हां त्यासीच सर्मपिलें । १३५ कीं सागरींचें उदक मेघ नेती । मागुती सरिता आणूनि सर्मपिती । तैसा श्रीरामा तुजप्रती ।

स्वस्वरूप को प्राप्त कराया गया । हे श्रीराम ! माया के निमित्त मैंने यह इतिहास कहा । १२९

तदनन्तर श्रीराम ने कहा--' माया के निर्माण का क्या कारण है ? जो स्वरूप में निर्विकार और निर्गुण है, वहाँ (उसमें) गुण, विकार आदि का संचार क्यों हो गया ? १३० पिण्ड, ब्रह्माण्ड, नाना योनियाँ, नाना वर्ण और नाना खानें--यह मूलतः माया की करनी है--(अतः) सभी मिथ्या है । १३१ अथवा (क्या) निर्गुण (ब्रह्म) से सगुण की उपलब्धि हुई ? क्या जो अव्यक्त है, वही व्यक्त रूप को प्राप्त हुआ ? अथवा क्या जो अनामा (नाम-रहित) है, उसे ही नाम दिया गया ? अथवा जो शरीर-रहित (निराकार) है, उसके ही अंग (शरीर) लगाया (उत्पन्न किया) गया ?' १३२ श्रीराम का प्रश्न सुनकर ब्रह्मनन्दन वसिष्ठ आनन्दित हुए । उन्होंने कहा--'तुम तो पूर्णतः चैतन्य रूपी घन हो । तुम जानते हुए (भी) प्रश्न कर रहे हो । १३३ हे श्रीराम ! जिस प्रकार कल्प-वृक्ष का फल लेकर उसे ही (उसका) भोग लगाया जाता है, उसी प्रकार तुम्हारा ही दिव्य ज्ञान तुमसे ही फिर से कहता हूँ । १३४ अथवा सुवर्ण-पर्वत से सोना लेकर उसके गहने बनाकर उसी (पर्वत) को पहना दिये, अथवा क्षीर-सागर से दूध लेकर उसी को फिर से समर्पित किया, अथवा मेघ समुद्र से पानी ले जाते हैं और नदियाँ (वह पानी) फिर से लाकर उसे समर्पित करती हैं; उसी प्रकार हे श्रीराम ! तुम्हारा ही ज्ञान

तुझेंच ज्ञान सांगतों। १३६ तरी तुवां केला प्रश्न। स्वरूपीं कां जाहलें स्फुरण। तरी येविषयीं दृष्टांत सांगेन। ऐक रामा निर्धारें। १३७ जैसा कोणी पुरुष निद्रिस्थ। पहुडला असे चिंतारहित। तो स्वइच्छें होऊन जागृत। कार्य कांहीं आठवी। १३८ कीं समुद्रीं उठे लहरी। तैसी ध्वनि उठे चिदंबरीं। मी म्हणोन निर्धारीं। हांक थोर जाहली। १३९ एक असतां ब्रह्मानंद। निःशब्दीं उठिला शब्द। ते ध्वनि माया नाम प्रसिद्ध। वेदांतशास्त्र गर्जतसे। १४० जिचें नाम मूळ प्रकृती। जी आदिपुरुषाची चिच्छक्ती। तिनें शेजे निजवोनि पती। सृष्टिकार्य आरंभिलें। १४१ येवढें ब्रह्मांड केलें निर्माण। परी पतीस कळों नेदी वर्तमान। ते परम कवटाळीण। नसतींच दैवतें उभीं केलीं। १४२ विधि विष्णु उमाकांत। हीं तिन्ही बाळें जिचे आज्ञेंत। नेत्र उघडोन निश्चित। पाहों नेदी स्वरूपाकडे। १४३ ब्रह्मसुखाचे समुद्रांत। बुडाले हे जीव समस्त। परी तेथींची गोडी किंचित। चाखों

मैं फिर से तुम्हें बताता हूँ। १३५-१३६ अतः तुमने जो यह प्रश्न किया--भगवान के अपने रूप में स्फुरण क्यों हुआ, इस सम्बन्ध में मैं दृष्टान्त कहूँगा। हे श्रीराम! उसे निर्धार-पूर्वक सुनो। १३७ जैसे कोई एक पुरुष निद्राधीन हो, चिन्तारहित लेटा हुआ हो, और वह अपनी इच्छा से जागृत होकर कुछ कार्य को याद करने लग जाए, अथवा समुद्र में लहर उत्पन्न हो जाए, वैसे ही चैतन्य रूपी आकाश में ध्वनि उत्पन्न हो गयी और वह 'मैं ब्रह्म हूँ (सोऽहम्)'--ध्वनि निश्चय ही बड़ी उच्च टेर बन गयी। १३९ आनन्द रूप ब्रह्म अकेला था, तो निःशब्द (नितान्त शान्त--ध्वनि-हीन) अवस्था में से ध्वनि का निर्माण हुआ। वेदान्त शास्त्र ज़ोर से कहते हैं कि वह ध्वनि 'माया' नाम से प्रसिद्ध (विख्यात) है। १४० जिसका नाम 'मूल प्रकृति' है, जो आदि पुरुष की 'चिद्शक्ति' है, उसने अपने पति को शय्या पर सुलाकर सृष्टि के निर्माण कार्य का आरम्भ किया। १४१ उसने इतने (बड़े) ब्रह्माण्ड का निर्माण किया, फिर भी (अपने) पति को (इसका) समाचार जानने नहीं दिया। वह तो बड़ी जादूगरनी है--जिसने मिथ्या (मायावी) देवताओं को खड़ा (उपस्थित) कर डाला। १४२ विधाता, विष्णु तथा शिव-- ये तीनों बालक जिसकी आज्ञा में रहते हैं (आज्ञाकारी बने रहते हैं) वह (किसी को) आँखें खोलकर आत्मस्वरूप (ब्रह्मस्वरूप) की ओर नहीं देखने देती। १४३ ये सब जीव

नेदी कोणातें। १४४ चैतन्य इनेंच झांकिलें। इनें अरूप रूपासि आणिलें। अनंत ब्रह्मांडींचे पुतळे। एकेचि सूत्रें नाचवी। १४५ इनें निर्गुणास गुण लाविले जाण। अनामासी ठेविलें नामकरण। निराकारासी आकारून। जीवित्वासी आणिलें। १४६ हे परम पतिव्रता साचार। पतीस न कळतां जाह्ली गरोदर। ब्रह्मांड रचिलें समग्र। नाना विकारेंकरूनियां। १४७ नाना योनी विकार भाव। इनें फांसां पाडिले अवघे जीव। गाधीस कैसें दाविलें लाघव। मिथ्या कर्तृत्व नसतेंचि। १४८ कोणी मुरडे स्वरूपाकडे। त्यासी नसतेंचि घाली सांकडें। अथवा स्वर्गसुख रोकडें। पुढें दावून भुलवी कीं। १४९ निजात्मसुखगोडी निःसीम। ती जीवासी केली कडू परम। विषयविषरूप मोहभ्रम। तेथें गोडी आणिली। १५० असो ऐसी ते आदिशक्ती। तिनें इच्छा धरिली चित्तीं। तिसीच गुणक्षोभिणी म्हणती। त्रिगुण निश्चित केले इनें। १५१ सत्व रज तम जाण। तेचि विधि विष्णु ईशान। त्रिशक्तिरूपें

ब्रह्मसुख (ब्रह्मानन्द) के समुद्र में डूब गये, फिर भी वह (माया) किसी को वहाँ (उस) की मधुरता किंचित् भी चखने नहीं देती। १४४ इसी ने चैतन्य को ढँक लिया; इसने अरूप (रूप-हीन) को सरूपता को प्राप्त कराया। यह अनन्त ब्रह्माण्डों के पुतलों को एक ही सूत्र से नचाती है। १४५ समझो, इसने निर्गुण को गुण चिपका दिये, अनाम को नाम देकर उसका नामकरण किया; निराकार को आकार प्रदान कर जीवत्व को प्राप्त कराया। १४६ यह परम पतिव्रता (नारी) सचमुच पति के अनजाने में गर्भवती हो गयी। इसने नाना विकारों से समग्र ब्रह्माण्ड की रचना की। १४७ नाना योनियाँ, विकार और भाव उत्पन्न करके इसने समस्त जीवों को पाशों में उलझा दिया। (प्रत्यक्ष) कृतित्व नहीं होने पर भी इसने गाधि को कैसा मिथ्या कौशल दिखाया! १४८ कोई (भगवत्) स्वरूप की ओर मुड़ता है, तो यह (माया) मिथ्या संकट में डालती है अथवा सामने प्रत्यक्ष स्वर्गसुख दिखाकर उसे मोहित करती है। १४९ आत्मसुख की मधुरता असीम है—उसे जीव के लिए (उस माया ने) परमोच्च (अप्राप्य-सा) कर दिया और विषमय विषय-भोग, मोह, भ्रम में मधुरता ला दी। १५० अस्तु। ऐसी है वह आदि शक्ति। उसने मन में इच्छा (धारण) की। उसे ही 'गुण-क्षोभिणी' कहते हैं। इसने (सत्त्व, रज, तम—इन) तीन गुणों का निश्चय ही निर्माण किया। १५१

धरून। तिहीं ठायीं आपणा जाहली। १५२ ज्ञानशक्तीच्या आधारेंकरून। ज्ञानपंचक केलें निर्माण। तें अंतःकरण-चतुष्टय पूर्ण। तत्त्वविद म्हणती ते। १५३ क्रियाशक्तीच्या आधारें रजोगुण। प्रसवला तो पंचकें तीन। एक ज्ञानेंद्रिय-पंचक पूर्ण। कर्मेंद्रियपंचक दुसरें। १५४ तिसरें जाणावें वायु-पंचक। आतां तमद्रव्यशक्तिआधारें देख। विषयपंचक निर्मिलें सुरेख। पंचतन्मात्रा म्हणती ज्यातें। १५५ ऐसीं पंचवीस तत्त्वें निःशेष। मग केला परस्परानुप्रवेश। कर्दम करूनि विशेष। ब्रह्मांड हे रचियेलें। १५६ ब्रह्मांड ही पेठ पूर्ण ।। नाना रीतीं रची कमलासन। चहूं खाणींचीं केणीं आणून। चौऱ्यायशीं लक्ष

यह समझो कि (जो) सत्त्व, रज, तम (नामक तीन गुण हैं, वे) ही विधाता (ब्रह्मा), विष्णु और शिव हैं। तीन शक्तियों का रूप धारण करके यह तीनों स्थानों में स्वयं स्थित हो गयी (रह गयी)। १५२ इसने ज्ञान-शक्ति के आधार से ज्ञान-पंचक (पाँच प्रकार के ज्ञान) का निर्माण किया। तत्त्वों के ज्ञाता उसे पूर्ण अन्तःकरण-चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार से निर्मित अन्तर्मन—इन चारों से कार्य करनेवाला आत्मा) कहते हैं। १५३ क्रिया-शक्ति के आधार से उस रजोगुण ने (ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ तथा वायु-पंचक नामक) तीन पंचकों को जन्म दिया। उनमें से एक है सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रिय-पंचक (त्वचा, नाक, नेत्र, कान और जिह्वा), दूसरा है कर्मेन्द्रिय-पंचक (हाथ, पाँव, वाणी, शिस्न और गुदा) और समझो, तीसरा है वायु-पंचक (नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय नामक वायु—जो शरीर में रहते हुए उसे पुष्ट करते हैं)। अब देखो, तमोद्रव्य की शक्ति के आधार से इसने सुन्दर विषय-पंचक (स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और शब्द) का निर्माण किया, जिसे पंच-तन्मात्रा (पृथ्वी, आप, तेज, वायु और आकाश नामक पाँच महाभूतों के मूल-तत्त्व) कहते हैं। १५४-१५५ (इस प्रकार) उस माया ने (ज्ञान-पंचक, ज्ञानेन्द्रिय-पंचक, कर्मेन्द्रिय-पंचक, वायु-पंचक और विषय-पंचक के) पचीस तत्त्वों का पूर्णतः निर्माण किया। तत्पश्चात् इन तत्त्वों का परस्पर एक-दूसरे में प्रवेश कराया (क्रम से एक-दूसरे में मिला दिया) और उनका विशेष प्रकार का कर्दम (कीचड़) बनाकर इस ब्रह्माण्ड की रचना की। १५६ (यह) ब्रह्माण्ड एक परिपूर्ण हाट (बाज़ार) है, जिसकी ब्रह्मा (विधाता) ने नाना प्रकार से रचना की और (प्राणियों और वनस्पतियों के अण्डज, स्वेदज, जारज और उद्भिज्य नामक चारों वर्गों—) चारों खानों से वस्तुएँ

जीव केले । १५७ ऐसा ब्रह्मा पेठा भरीत । विष्णु तयांचा प्रतिपाळ करीत । दहा अवतारांच्या घिरट्या घेत । संकटीं तारीत भक्तांतें । १५८ सृष्टींत दोष होतां अपार । परम क्रोधी तो अपर्णावर । तत्काळ करी संहार । टाकी सर्व मोडोनियां । १५९ विराट जें रचिलें ढिसाळ । हें शिवाचें देह स्थूल । पायांचे तळवे तें पाताळ । प्रपद रसातळ जाणिजे । १६० याचा सांगतों निर्णय । ज्ञान जेणें प्राप्त होय । सकळ संतांचे समुदाय । ऐकोन बहुत आनंदती । १६१ गुल्फ-द्वय तें महातळ । पोटरिया जानु-युगुळ । तें तळातळ आणि वितळ । विराटाचें जाण पां । १६२ कटिप्रदेश तें महीतळ । जाण नैॠत्यलोक तें गुदस्थान । दक्षप्रजापति तो शिश्न । विराटाचें जाण पां । १६३ जठरामाजी पोकळ । तें हें अवघें नभमंडळ । जठराग्नि तो वडवानळ । महा

लाकर चौरासी लाख (प्रकार के) जीवों को उत्पन्न किया । १५७ इस तरह विधाता बाज़ारों को भर (सजा) देता है, विष्णु उनका प्रतिपालन करता है; दस-दस अवतारों के फेरे लगाते हुए भक्तों का संकट में से उद्धार करता है । १५८ सृष्टि में अपार दोषों के उत्पन्न होने पर वह परम क्रोधी अपर्णा-पति शिव तत्काल उसका संहार करता है और सबको तोड़ (नष्ट-भ्रष्ट कर) डालता है । १५९ जो विशाल विराट् (ब्रह्माण्ड) रचा गया है, यह है शिवजी का स्थूल शरीर । उसके पाँवों के तलुवे हैं (विराट ब्रह्माण्ड का) पाताल । रसातल को उसके प्रपद (पाँवों के अग्रभाग) समझो । १६० मैं इसका (अर्थ) निर्णय कहता हूँ, जिससे ज्ञान प्राप्त होता है । उसे सुनकर समस्त सन्तों-सज्जनों के समुदाय बहुत आनन्दित होते हैं । १६१ (शिवजी के स्थूल शरीर के) दोनों टखने (ब्रह्माण्ड के सात पातालों में से) महातल (नामक एक पाताल) हैं, (जहाँ नाग और असुर निवास करते हैं) । उस विराट ब्रह्माण्ड के (सात पातालों में से) तलातल (नामक चौथे पाताल) को और वितल (नामक दूसरे पाताल) को (शिवजी के स्थूल शरीर की) पिंडलियाँ और दोनों घुटने समझो । १६२ उसके कटि-प्रदेश को (सात पातालों में से) महीतल (नामक एक पाताल) समझो । उस विराट ब्रह्माण्ड के नैॠत्य लोक को (शिवजी के विराट स्थूल शरीर का) गुद-स्थान और प्रजापति को उसका शिस्न समझो । १६३ जठर के अन्दर जो पोला भाग होता है, वह ब्रह्माण्ड का नभ-मण्डल है और जो जठराग्नि है, वह वड़वानल है, जो

कल्लोळ धडकतसे । १६४ सप्त समुद्र उदरीं सकळ । ज्योतिर्लोक तें वक्षःस्थल । महर्लोक तें कंठनाळ । वदनकमळ जनलोक । १६५ वरुणलोक ते जिव्हा जाण । यमलोक त्या दंतदाढा तीक्ष्ण । अश्विनौदेव तें घ्राण । भ्रुकुटिस्थान भूर्लोक । १६६ तपोलोक तें कपाळ । मस्तक ब्रह्मभुवन निर्मळ । वासरमणि तो नेत्र तेजाळ । प्रकाशकल्लोळें ब्रह्मांड भरी । १६७ पातीं उघडी त्या नांव दिवस । झांकितां रात्र म्हणती त्यास । उभयहस्तरूपें अमरेश । कर्तव्य करी सर्वही । १६८ चंद्रमा तयाचें मन । वनस्पती रोमावळी पूर्ण । त्वचा ते जाण प्रभंजन । कर्दम पूर्ण मांस तें । १६९ नाडीचक्र गंगा निश्चिती । पृष्ठी तिकडे अधर्मरीती । कनकाचळ तो सुमती । शिरोभाग जाणिजे । १७० अस्थि त्या जाण पाषाण । फेण ती लाळ ओळखें खूण । दहिंवर तें मूत्र पूर्ण । जळ तें रक्त

ज़ोर-शोर से धधकता रहता है । १६४ (उस विराट ब्रह्माण्ड के क्षार, इक्षु-रस, सुरा, घृत, क्षीर, दधि, शुद्धोदक नामक) सात समुद्र सब (शिवजी के स्थूल शरीर के) उदर में हैं, ज्योतिर्लोक उसका वक्षःस्थल है; जो महर्लोक है वह है कण्ठनाल और जनलोक है मुखकमल । (पौराणिक मान्यता के अनुसार ज्योतिर्लोक, महर्लोक, जनलोक आदि ब्रह्माण्ड के सात लोक माने जाते हैं । इनके अतिरिक्त इन्द्र, वरुण, विष्णु, यम आदि देवताओं में से प्रत्येक का एक-एक लोक माना जाता है) । १६५ वरुणलोक को जिह्वा ही समझो । यमलोक है तीक्ष्ण दाँत और दाढ़ें । दोनों अश्विनीकुमार देव हैं नाक । भृकुटि (भौंह) भूर्लोक है । तपोलोक है कपाल और निर्मल ब्रह्म-भुवन है उसका मस्तक । वासरमणि अर्थात् सूर्य उसका तेजस्वी नेत्र है, जो प्रकाश की प्रचण्ड लहरों से ब्रह्माण्ड को भर देता है । १६६-१६७ (शिवजी के स्थूल शरीर की) आँखों की पलकों के खोलने का नाम दिवस है और उनके बन्द होने पर (उत्पन्न स्थिति को) रात्र कहते हैं । अपने दोनों हाथों से वह देवेश सभी कार्य करता है । १६८ चन्द्रमा उसका मन है, समस्त वनस्पतियाँ उसकी रोमावली हैं, त्वचा को प्रभंजन (वायु) समझो और सम्पूर्ण मांस कर्दम (कीचड़) है । १६९ (ब्रह्माण्ड की) गंगा (शिवजी के स्थूल शरीर) का निश्चय ही नाड़ीचक्र है, उधर पृष्ठ-भाग (पीठ) को अधर्म रीति और सुवर्ण पर्वत (मेरु) को शिरोभाग समझो । १७० (शिवजी के स्थूल शरीर की) उन हड्डियों को पत्थर समझो और फेन को लार की निशानी के रूप में

जाणिजे । १७१ पाषाण गर्भ मज्जा सत्य । पर्जन्य तें शिवाचें रेत । दुर्भिक्ष ती क्षुधा अद्‌भुत । जलशोष अत्यंत तृषा पूर्ण । १७२ आळस तो शीतकाळ । पर्जन्यकाळ ती निद्रा सबळ । उष्णकाळ तें मैथुन केवळ । वृष्टि व्हावया तावीतसे । १७३ झंझाट वायु तें धांवणें । वाहाटुळी तयाचें वळणें । दश दिशा पसरल्या संपूर्ण । तें पसरण तयांचें । १७४ स्तब्ध वायु तें आकुंचन । उकाडा तो निरोधन । जळवृष्टीची इच्छा काम पूर्ण । सृष्टि-संहारण क्रोध तो । १७५ शोक तो महा अनर्थ । मोह सृष्टि-पालन यथार्थ । भय तो मृत्यु ओळख सत्य । विराट पुरुषाचें राघवा । १७६ पीत वसन तें अंतःकरण । रमाबंधु तयाचें मन । विरिंचि बुद्धि संपूर्ण । चित्त नारायण जाणिजे । १७७ देवदत्त तो मुख्य प्राण । धनंजय पाताळीं आपण । दिशा तयाचे कर्ण । पवन संपूर्ण त्वचा त्याची । १७८

पहचानो । सम्पूर्ण ओस को मूत्र और जल को रक्त समझो । १७१ पत्थरों का अन्दर का भाग सचमुच मज्जा है। पर्जन्य (बारिश) शिवजी (के स्थूल शरीर) का वीर्य है। दुर्भिक्ष्य (अकाल) अद्‌भुत भूख और अनावृष्टि (सूखा) अत्यधिक परिपूर्ण प्यास है। १७२ शीतकाल (जाड़ा) आलस्य है, वर्षाकाल प्रगाढ़ (गहरी) नींद है, ग्रीष्म-काल (गर्मियों का मौसम) केवल मैथुन (ही) है, जो वर्षा के हेतु (सृष्टि को) गर्म कर देता है। १७३ (विराट ब्रह्माण्ड के अन्दर) झंझा वात (शिवजी के स्थूल शरीर का) दौड़ना है; आवर्त, उसका मुड़ जाना है और पूर्णतः फैली हुई दस दिशाएँ उसका फैलाव है। १७४ स्तब्ध वायु आकुंचन (सिकुड़ जाना) है, असीम गर्मी निरोधन है, जल-वर्षा की इच्छा सम्पूर्ण काम है, तो सृष्टि का संहार (शिवजी का) क्रोध है। १७५ (विराट ब्रह्माण्ड में होनेवाला) महान अनर्थ (संकट) (शिवजी का) शोक है, तो सृष्टि का परिपालन सचमुच मोह है। हे श्रीराम ! मृत्यु को सममुच (उस) विराट पुरुष के भय के रूप में पहचानो। १७६ पीताम्बर-धारी भगवान् विष्णु उसका अन्तःकरण, (लक्ष्मी का बन्धु) चन्द्र उसका मन, और ब्रह्मा उसकी सम्पूर्ण बुद्धि है। भगवान नारायण को उसका चित्त समझो। १७७ (पंच प्राणों में से) देवदत्त (नामक एक प्राण) उसका मुख्य प्राण है। (पाँच उपप्राणों में से जमुहाई उत्पन्न करनेवाला शरीरस्थ पाँचवाँ) धनंजय (नामक वायु) स्वयं पाताल में है। (विराट ब्रह्माण्ड की) दिशाएँ (शिवजी के उस स्थूल शरीर के) कान हैं और पवन उसकी सम्पूर्ण त्वचा है। १७८

दुइर शरे दुइ फुटिलन्त निरन्तर * जर्ज्जरित भैल दुइहन्तर कलेवर
दुइहानो शरीर ढाकि रुधिर बहय * फुलिल अशोक येन प्रकाश करय ९९
रणे आति सुजान लक्ष्मण बीरबर * काटिलन्त धनु शतधनुर हातर
खरतर शरे पाचे भेदिलन्त तनु * शरचोटे बिह्वल भैलेक शतधनु १३००
स्वस्थ हुया पाचे शतधनु गैला रागि * प्रहारिला मुदगर लक्ष्मणक लागि
देखिया लक्ष्मणे काटिलन्त शरे हानि * पाचे शतधनु शूल प्रहारिला टानि १
ताको खण्ड खण्ड करि लक्ष्मणे काटिला * तात पाचे शतधनु शकति मारिला
महाशब्द करिया शकति धाया आसे * लक्ष्मणे हानिया शर काटिला आकाशे २
देखि शतधनु महा असन्तोष पाइल * भयंकर गदागोट हानिया पठाइल
आकाशत आसे गदा महाबेग धरि * काटिला लक्ष्मणे गदा सातखान करि ३
शतधनु देखे मोर गदा भैल नाश * पाचे लक्ष्मणक प्रहारिला नागपाश
लक्ष्मणे देखन्त नागपाश आसे खेदि * हानिया गरुड़ बाण पेलाइलन्त छेदि ४
कौतुहले लक्ष्मणे छेदिला नागपाश * हानिलन्त बह्नि बाण देखि लागे त्रास
प्रलयर बह्नि सम चलय सत्वरे * निमाइलेक शतधनु बरुणर शरे ५
देखि बर कोप ज्वलि गैल लक्ष्मणर * शूलपाट लैलन्त देखिते लागे डर
प्रकाश करन्त शूल घरिया हातत * येन महेशर आति प्रलय कालत ६
चामर मृदुरा घट आछे थाने थाने * कालान्तक यम येन देखि विद्यमाने
करे लहलह अग्रप्रदेश शूलर * देखि त्रासयुत भैला देवासुर नर ७

दोनों के ही शरीर छिन्न-भिन्न हो गये। दोनों के ही शरीर से ख़ून बहने लगा, मानों अशोक के फूल खिल आये हों, यों शोभा देने लगे ।। १२९९ ।। वीरवर लक्ष्मण रण में अति कुशल है। उसने शतधनु के हाथ का धनुष काट डाला। इसके पश्चात् भयंकर बाण से उसका शरीर भेद दिया। शतधनु बाण के आघात से विह्वल हो गया ।। १३०० ।। इसके बाद शतधनु स्वस्थ होकर क्रोधित हो गया। उसने लक्ष्मण पर मुद्गर का प्रहार किया। यह देखकर लक्ष्मण ने बाण से उसे काट डाला। इसके पश्चात् शतधनु ने खींच कर शूल मारा ।। १३०१ ।। उसको भी लक्ष्मण ने खंड-खंड कर काट डाला। इसके बाद शक्ति दे मारी। महाशब्द कर शक्ति भागती हुई आने लगी। लक्ष्मण ने बाण चलाकर उसको भी आकाश में काट डाला ।। १३०२ ।। यह देखकर शतधनु के मन में बड़ा असन्तोष उत्पन्न हुआ। अपनी भयंकर गदा उसने फेंक कर मारी। आकाश में गदा महावेग से आने लगी। लक्ष्मण ने उस गदा को सात टुकड़ों में काट डाला ।। १३०३ ।। जब शतधनु ने देखा कि मेरी गदा भी नष्ट हो गयी तो उसने लक्ष्मण पर नागपाश फेंका। लक्ष्मण ने देखा कि नागपाश लपकता आ रहा है। तो उन्होंने गरुड़ बाण फेंककर उसको छेद डाला ।। १३०४ ।। लक्ष्मण ने बड़ी सरलता से नागपाश को छेड डाला। फिर उसने अग्निबाण फेंका तो देखकर भय होने लगा। प्रलय की आग के समान वह बाण शीघ्रगति से चलने लगा। शतधनु ने उसको वरुण बाण चलाकर बुझा डाला ।। ५ ।। यह देखकर लक्ष्मण का क्रोध प्रज्वलित हो उठा। उसने शूलपाट उठा लिया जिसको देखते ही डर लगने लगता। हाथ में शूल लिये वह ऐसा लगने लगा मानों प्रलय के समय महेश हो ।। ६ ।। स्थान-स्थान पर चँवर और घंटियाँ लगे हैं। साक्षात् कालान्तक यम मानों सामने दिखायी पड़ने लगा। शूल की नोक लपलपा रही थी। उसे देखकर देवता, असुर और नर त्रास से भर गये ।। ७ ।। लक्ष्मण ने शूल फेंका तो देवतागण आर्त्तनाद कर भागने लगे, धरती काँप गयी।

मारिला लक्ष्मणे शूल आर्त्तनाद करि * पलाय देवगण कम्पि गैला बसुन्धरी
देखि महाभये शतधनु नृपबर * लवरि पलाइला बेगे नामिया रथर ८
रथे परि शल बह्नि ज्वलि विपरीत * भस्म भैल रथ घोरा सारथि सहित
राजागणे देखे शतधनु भंग खाइल * शर धनु धरि सबे लक्ष्मणक धाइल ९
एकेबारे धाय सेना सागर समान * लक्ष्मणे सबाको ढाकि बरिषिला बाण
महा तीक्ष्णतर शर त्रिशूल साक्षात * हेन शरे हानि सेना करन्त निपात १०
राजा प्रजागण मारि लै यान्त निदलि * मृगगण पाया येन सिंह महाबली
हस्ती घोरा रथपति काटिला अपार * यमे येने प्रजागण करन्त संहार ११
उरु शिर कारो काटे बाहु बक्षःस्थल * कारो नाक कान कारो छिण्डिलन्त गल
केहो आधा मरा केहो समूलि मरिल * मराशव सबे रण-धरणी भरिल १२
रुधिरे बहवे नदी देखि लागे डर * महाभये भंग दिला राजा निरन्तर
हस्ती घोरा रथ छत्र ध्वज दंड यत * अस्त्र शस्त्र बस्त्र एरे प्राणर भयत १३
मुखत उशासे आति लवरि पलाय * कार कोन कैक गैल थान थिति नाइ
सुरा जेठा मामा पेसा सुहृद सोदर * बापे पोवे एराएरि भैल निरन्तर १४
पाया आछे सेनागण लक्ष्मणर कांडे * बिषते मरय तेज बहे धारा दण्डे
बाटत परिया थाके जाइबाक नपारे * हस्ती घोरा रथे पाया चटकिया मारे १५
सागर सङ्काश सेना लण्डभण्ड भैल * कतोहो मरिल कतो कतो पलाइ गैल
पाचक नचावे मात्र पलाय राजागण * रथे चरि परिहास करन्त लक्ष्मण १६

उसको देखकर राजा शतधनु भीषण भय से रथ से उतर कर दौड़ा और भाग गया ॥ ८ ॥ रथ पर गिर कर शूल की आग जलने लगी। घोड़े और सारथी-सहित रथ भस्म हो गया। राजाओं ने देखा कि शतधनु भाग खड़ा हुआ तो वे धनुष-बाण लेकर सब के सब लक्ष्मण की ओर दौड़ पड़े ॥ ९ ॥ एक ही साथ सारी सेना सागर के समान धावित हुई। लक्ष्मण ने सबको बाण-वर्षा से ढक दिया। बड़े ही तीखे-तीखे बाण मानों साक्षात् त्रिशूल हों। ऐसे बाण चला कर वे सेना का विनाश करने लगे ॥ १० ॥ लक्ष्मण राजा और प्रजाओं को जड़-मूल से मारते हुए यों चले जाते मानों महाबली सिंह को मृग मिल गये हों। उन्होंने असंख्य हाथी, घोड़े और रथ और पैदलों का संहार किया मानों यम प्रजाओं के प्राण ले रहा हो ॥ ११ ॥ किसी की जाँघ कटती तो किसी का सिर, किसी की बाँह तो किसी का वक्षस्थल, किसी के नाक-कान तो किसी का गला। कोई अधमरा हो गया तो कोई सम्पूर्ण रूप से मर ही गया ॥ १२ ॥ रक्त की नदी बहने लगी। देखकर डर लगने लगता। सारे राजा भीषण भय से भाग खड़े हुए। हाथी, घोड़े, रथ, छत्र, ध्वज, दंड, अस्त्र-शस्त्र, वस्त्र आदि छोड़ प्राण के भय से वे भागे ॥ १३ ॥ मुख से साँस लेते हुए तेज दौड़ कर वे भागने लगे। किसका कौन कहाँ चला गया, कोई भी ठीक-ठिकाना नहीं। चाचा, ताऊ, मामा, फूफा, मित्र-सहोदर, बाप-बेटे में बिछोह हो गया ॥ १४ ॥ लक्ष्मण के इस कांड से सारे सैनिक मूर्च्छित हो गिर पड़े। विष की क्रिया से उनका तेज नष्ट हो गया और क्षण-भर में रक्त की धारा बहने लगी। चलने में असमर्थ हो कर वे रास्ते में पड़े रहे। हाथी, घोड़े और रथ के पहिये कुचल कर उनको मारने लगे ॥ १५ ॥ समुद्र के समान सेना तितर-बितर हो गयी। कितने तो मर गये और कितने ही भाग गये। पीछे की ओर बिना ताके राजाओं का समूह बस भागने ही लगा। रथ पर सवार लक्ष्मण उनकी खिल्लियाँ उड़ाने लगे ॥ १६ ॥ ठहर जा अरे दुष्ट राजाओ ! किधर जा रहे हो, बालक से रण में पराजित होकर क्योंकर भाग

रह अरे दुष्ट राजसब कैक यास * छवालत रण हारि किसक पलास
बरिषेक आछस सीताक आसा करि * एवे कि कारणे यास ताङ्क परिहरि १७
क्षेत्रि हुया युद्ध पाया कर परिहार * धिक बाहुबल धिक जीवन तोमार
पांच लक्ष राजा एके छवालत हारि * शृगालर पाल येन पलाय लेंज मारि १८
आसिलि सीताक बिहा करिबार काजे * नकरि बिबाह पलाइ यास कोन लाजे
स्त्रीर आगत किबा कहिबि महत * बोलन्त लक्ष्मणे उपालम्भ नानामत १९
प्राणर कातरे राजागण निरन्तर * नुशुनिल भये पलाइ गैल निजघर
अनायासे लक्ष्मण भैलेक रणजय * आकाशत देबगणे पुष्प बरिषय २०
जय जय बुलिया कोढ़ाल करे छानि * धन्य धनुर्द्धर महाबीर चूड़ामणि
अजय सहिते रण जिनिया लक्ष्मणे * निबर्त्तिया आसि दुयो महारंग मने २१
प्रणामिला विश्वामित्र मुनिक हरिषि * आशीर्ब्बाद करि गाव मार्ज्जिलन्त ऋषि
मुनिर प्रसादे दुइरो गुचिल भागर * लक्ष्मणे नमिला पाचे चरणे रामर २२
रामे लक्ष्मणक गले बान्धिया धरिला * मुखे चुमा दिया बहु प्रशंसा करिला
भैलन्त हरिष अति नृपति जनक * अजय सहिते प्रशंसिला लक्ष्मणक २३
सीता गोसानीर आति आनन्द बिस्तर * शुना रामायण सभासद निरन्तर
लभिबा मुकुति दुख हैब उपशाम * डाकि घने घने घोषियोक राम राम २४

रहे हो ? साल-भर से सीता की आशा करते हुए यहाँ ठहरे हुए हो। अब किस कारण उनको त्याग कर भागे जा रहे हो ॥ १७ ॥ क्षत्रिय होकर युद्ध का मौका पाकर भी उसका त्याग कर रहे हो। तुम्हारे बाहुबल को धिक्कार है, तुम्हारे जीवन को धिक्कार है। अकेले एक बालक से पाँच लाख राजा इस प्रकार हार गये मानों गीदड़ों का झुंड दुम दबा कर भाग गया ॥ १८ ॥ सीता से विवाह करने के लिए ही तुम लोग आये थे। बिना विवाह किये ही किस मुँह से भागे जा रहे हो ? अपनी पत्नी से जाकर, हे महान् ! तू क्या कहेगा ? इस प्रकार लक्ष्मण तरह-तरह के ताने देने लगे ॥ १९ ॥ प्राणों के भय से राजाओं ने यह सब सुना ही नहीं। वे अपने घर को भाग गये। अनायास ही लक्ष्मण ने युद्ध जीत लिया। आकाश से देवता फूलों की वर्षा करने लगे ॥ २० ॥ जय-जय कहकर संग्राम समाप्त हुआ। महावीर चूड़ामणि धनुर्धर ! तुम धन्य हो ! लक्ष्मण ने अजय के सहित युद्ध में विजय प्राप्त कर ली और दोनों अत्यन्त प्रसन्न मन से लौट आये ॥ २१ ॥ उन्होंने विश्वामित्र मुनि को प्रसन्न करते हुए उनको प्रणाम किया। आशीर्वाद देकर ऋषि ने उनके बदन पर हाथ फेरा। मुनि की कृपा से थकान मिट गयी। लक्ष्मण ने बाद में रामचद्र जी के चरणों को प्रणाम किया ॥ २२ ॥ राम ने लक्ष्मण को गले लगा लिया। मुँह को चूमते हुए उनकी बड़ी प्रशंसा की। राजा जनक भी बड़े आनन्दित हुए। उन्होंने अजय के साथ लक्ष्मण की बड़ी प्रशंसा की ॥२३ ॥ सीता माता को भी बड़ी प्रसन्नता हुई। हे सभासदो ! निरन्तर रामायण सुना करो। इससे मुक्ति मिलेगी और दुख मिट जायगा। बार-बार जोर से राम के नाम की घोषणा करो ॥ १३२४ ॥

दशरथक आनिबलै शतानन्दक अजोध्यालै प्रेरण

दुलड़ी

जनक नृपति पाचे महामति मनत महा कौतुके ।
विश्वामित्र समे राम लक्ष्मणक आगत लैया उत्सुके ॥
जानकीक आग करि महाभाग चलि गैला निजघर ।
आथानर बाज पातिया समाज बसिलन्त नृपबर ॥ १३२५
पुरोहित शता नन्दक मातिया बुलिला मधुर बाक ।
शुनियोक गुरु बिलम्ब नकरि चलि जाइयो अजोध्याक ॥
दशरथ महा- राजात जनाया तान पुत्र रघुबरे ।
धनुक भांगिया जानकी सीताक लभिलन्त सयम्बरे ॥ २६
बशिष्ठ सहिते आसन्त सत्वरे बिहा कराइबाक प्रति ।
शत्रुघन भर- तको लगे आनि आसिबन्त महामति ॥
शुनि शतानन्दे परम आनन्दे अयोध्याक लागि गैला ।
दशरथ आगे राम लक्ष्मणर कथा प्रपंचिया कैला ॥ २७
राम लक्ष्मणर कुशल काहिनी शुनि राजा दशरथ ।
शतानन्द मुनि- बरक सत्कार करिलन्त महारथ ॥
बृद्ध मंत्री पात्र गणक नृपति नगरर रक्षा दिला ।
रामर बिबाह निमित्ते परम उत्सुक मने साजिला ॥ २८
हस्ती घोड़ा रथ- पति चतुरंग दल लगे भैला साज ।
शत्रुघन भर- तक लगे लैया चलिलन्त महाराज ॥
बशिष्ठ प्रमुख्ये ब्राह्मण सकल कौतुहले चलि गैला ।
बस्त्र अलंकार अनेक सम्भार सुमन्त्र लगत लैला ॥ २९

दशरथ को लिवा लाने के लिए शतानन्द को अयोध्या भेजा जाना

इसके पश्चात महामति महात्मा राजा जनक कौतुक-भरे मन से विश्वामित्र-सहित राम-लक्ष्मण को लेकर उत्सुक हो, जानकी को सम्मुख रख कर अपने घर चले गये। शान्त कक्षों से बाहर सभा बुलाकर नृपवर बैठ गये ॥ १३२५ ॥ पुरोहित शतानन्द को बुलाकर वे मधुर वाक्य बोले, गुरुजी सुनो, बिना विलम्ब किये तुम अयोध्या चले जाओ। महाराजा दशरथ को सूचित करना कि उनके पुत्र रामचद्र ने धनुष तोड़ कर जनक-पुत्री सीता को स्वयंवर में प्राप्त किया ॥ २६ ॥ वे वशिष्ठ के साथ, ब्याह कराने के लिए झटपट चले आवें। भरत और शत्रुघ्न को महामति अपने साथ लेते आवें। यह सुनकर शतानन्द अति आनन्द से अयोध्या के लिए चल पड़े और दशरथ के सम्मुख जाकर उन्होंने राम-लक्ष्मण की बातें बड़े विस्तार से बतायीं ॥ २७ ॥ राजा दशरथ ने राम-लक्ष्मण के आश्चर्यजनक कामों की कथा सुनकर मुनिवर शतानन्द का बड़ा सत्कार किया। राजा ने नगर की रक्षा का भार वृद्ध मंत्री तथा पात्रगण पर अर्पित किया और राम के लिए बड़े उत्सुक मन से अपने को सुसज्जित किया ॥ १३२८ ॥ हाथी, घोड़े, रथपतियों के साथ चतुरंग सेना भी सज्जित हुई। शत्रुघ्न और भरत को साथ लेकर महाराज चल पड़े। वशिष्ठ आदि सारे प्रमुख ब्राह्मण कौतूहल से चल पड़े। वस्त्र-आभूषण आदि कितनी ही सामग्रियाँ सुमन्त ने साथ ले लीं ॥ १३२९ ॥ छत्र-दंड उठाये, विभिन्न वाद्य-यंत्र सारे प्रजा-वृन्द बजाने लगे।

तुलि छत्र दण्ड नाना बाद्य भण्ड बजाते प्रजासकल ।
असंख्य सेनार पदधूलिचय करिल रबिमण्डल ॥
जय जय रोल करय कल्लोल प्रजार बहु घंचाल ।
प्रमत्त हस्तीर घोरार शवदे कर्णत हानय ताल ॥ ३०
प्रजार आन्दोले पृथिवी हिन्दोले कम्पे सुरासुर यत ।
महा आडम्बरे मिथिला नगरे प्रबेशिला दशरथ ॥
जनक नृपति अनेक भकति करि आगबाढ़ि निला ।
परम सादरे दिब्य सिंहासन आपुनि पारिया दिला ॥ ३१
सुवर्ण आसन पारिया दिलन्त बशिष्ठ महाऋषिक ।
जनके हरिषे सअर्घे पूजिया दशरथ नृपतिक ॥
बशिष्ठको पाद्य अर्घे पूजिलन्त करि आति सतकार ।
श्रीराम लक्ष्मणे पितृर चरणे करिलन्त नमस्कार ॥ ३२
पुत्र दुइक पाया परम स्नेहत साबटि धरिला गले ।
शिर घ्राणि दुइरो शरीर तियाइल हरिषे नेत्रर जले ॥
दशरथे बिश्वा- मित्रक देखिया नमिला करि आह्लाद ।
करि बेदध्वनि बिश्वामित्र मुनि करिलन्त आशीर्ब्बाद ॥ ३३
दशरथ महा- राजार लगत आसियाछे प्रजा यत ।
जनक सबाको दिला बासाघर हरिषे आति मनत ॥
भोजन सम्भारे नाना ब्यवहारे समस्तके सन्तोषिला ।
चारि पुत्र समे राजाक जनके अन्तःपुरे बासा दिला ॥ ३४
बहु सतकार करिया भोजन कराइलन्त पंचामृते ।
बिबाहर कार्य्य चिन्तिबे लागिला ऋषिगण समन्विते ॥
बिश्वामित्र मुनि बोलन्त जनक उर्म्मिला जीउ तोमार ।
लक्ष्मणक बिहा दियोक बचन पालियो येवे आमार ॥ ३५

असंख्य सेना की पदधूलि से सूर्य का मंडल लुप्त होने लगा । जय-जय की ध्वनि से कल्लोल-शब्द उठा । प्रजागण की भीड़ के हो-हल्ले, प्रमत्त हाथियों के चिंघाड़ और घोड़ों की हिनहिनाहट के शब्द से सबके कान बहरे हो गये ॥ ३० ॥ प्रजाओं की उथल-पुथल से पृथ्वी डोलने लगी और सुर-असुर काँपने लगे । दशरथ ने बड़े आडम्बर से मिथिला नगर में प्रवेश किया । राजा जनक ने बड़ी भक्ति के साथ उनकी अगवानी की । बड़े ही आदर से उन्होंने स्वयं उनके लिए सिंहासन रख दिया ॥ ३१ ॥ महर्षि बशिष्ठ के लिए स्वर्ण-आसन बिछा दिया । जनक ने राजा दशरथ की सानन्द पूजा की । बशिष्ठ को अति सत्कार से पाद्य-अर्घ्य देकर उनकी पूजा की । श्रीराम-लक्ष्मण ने पिता के चरणों में प्रणाम किया ॥ ३२ ॥ दोनों पुत्रों को पाकर उन्होंने बड़े ही स्नेह से गले से लगा लिया । दोनों के मस्तक सूँघकर उनके सारे बदन को अपने हर्ष के आँसुओं से भिगो दिया । दशरथ ने विश्वामित्र को देखकर आह्लाद से नमस्कार किया । मुनि विश्वामित्र ने वेदध्वनि कर उनको आशीर्वाद दिया ॥ ३३ ॥ राजा दशरथ के साथ जितने प्रजा-जन आये थे, जनक ने उन सबको प्रसन्न मन से रहने का आवास दिया । भोजन आदि सामग्री से एवं हर तरह के आचरण से सभी को सन्तुष्ट किया । चार पुत्रों-सहित राजा दशरथ को जनक ने अपने अन्तःपुर में निवास-स्थान दिया ॥ ३४ ॥ काफी सत्कार कर पंचामृत का भोजन कराया । ऋषियों के सहित विवाह-कार्य के बारे में चिन्ता करने लगे । विश्वामित्र मुनि ने

जनके बोलन्त लक्ष्मणक बिहा दिबो जीउ उर्म्मिलाक ।
जनकर भातृ कुशध्वजे दश- रथक बुलिला बाक ॥
शुनियोक राजा आमार दुइखानि दुहिता घरे आछय ।
शत्रुघन भर— तक बिहा दिओं तयु आज्ञा किबा हय ॥ १३३६
शुनि दशरथे बुलिलन्त बाणी पुछिबे नलागे आक ।
बिबाह कराया सत्वरे गृहक पठाया दिया आमाक ॥
कुशध्वज जन- कर शुनि बाणी हरिष भैल मनत ।
चारि बर चारि कन्याक कराइला अधिबास कर्म्म यत ॥ ३७
नानाबिध जय वाद्य सुमंगले रजनी भैल प्रभात ।
देव पितृकार्य्य करि दशरथे बसिला गैया सभात ॥
मिथिला नगरे महा महोत्सव मिलिया गैल अपार ।
हाटी बाटी यत सांजि मांजि आति करिलन्त जातिष्कार ॥ ३८
पदूलि पदूलि ताम्बुल कदली रुइला चरे समे काटि ।
पताका तोरण चिरले रचिल करि आति परिपाटि ॥
नाना चित्र फल पल्लवे रंजिया थैला पूर्णघट पाति ।
प्रत्येक दुवारे पातिलेक द्रोणि घृतर लगाया बाति ॥ ३९
थाने थाने आति प्रकाश करय ध्वज दंड शारी शारी ।
दिब्य अलंकारे बस्त्रे काछि पारि शोभा करे नर-नारी ॥
ससस्ते प्रजार हरिष अपार बिबाह हैब सीतार ।
किनो भाग्यवती पाइलन्त सुपति रामक पुरुष सार ॥ ४०
चारि अंशे हरि आछा अवतरि रूप धरि मनुष्यर ।
बिहा करिबाक प्रति गैया आछा जनक राजार घर ॥

कहा, जनक ! उर्मिला तुम्हारी बेटी है। यदि मेरा कहना मानो तो लक्ष्मण के साथ उसका विवाह करना ॥ ३५ ॥ जनक ने कहा, मेरी भी इच्छा है कि बेटी उर्मिला का लक्ष्मण से विवाह करूँ। जनक के भाई कुशध्वज ने दशरथ से कहा, सुनो राजा, मेरे घर में भी दो बेटियाँ हैं। मैं चाहता हूँ कि शत्रुघ्न और भरत से उनका विवाह करूँ, इस विषय में आप की क्या आज्ञा है ॥ ३६ ॥ यह सुनकर दशरथ ने कहा, इसमें पूछने की कौन-सी जरूरत है। विवाह कराकर झटपट मुझको घर भिजवा दो। कुशध्वज जनक की बातें सुनकर प्रसन्न हुए। चार वर और चार कन्याओं से अधिवास कार्य कराया ॥ ३७ ॥ विभिन्न प्रकार के सुमंगल वाद्य-वादन से रात्रि व्यतीत हुई। देव और पितृ कार्य करने के पश्चात् दशरथ जाकर सभा में बैठ गये। मिथिला नगर में महोत्सव का वातावरण छा गया। भवन-आवास, घर-द्वार सब सजधज कर चमकने लग गये ॥ ३८ ॥ प्रत्येक फाटक पर सुपारी और केले के दरख्त समान दूरी पर रोपे गये। बड़े ही सुव्यवस्थित ढंग से पताका और तोरण की रचना की गयी। विभिन्न चित्रों से चित्रित कर और फल और पल्लव से सुसज्जित कर पूर्णघट रख दिये गये। घृत के दीपक जलाकर प्रत्येक द्वार पर जलपात्र रखे गये ॥ ३९ ॥ स्थान-स्थान पर ध्वज और दण्ड कतारों में शोभा पाते। वस्त्र और आभूषणों से सुसज्जित नर-नारी भी शोभा पाते। सारी प्रजाओं को अपार हर्ष है कि सीता का विवाह होगा ॥ कितनी भाग्यवती है कि उसको राम-जैसा पुरुषोत्तम वर मिला है ॥ ४० ॥ मनुष्य का रूप धर कर ईश्वर ने चार अंशों में अवतार लिया है। वे विवाह करने के लिए राजा जनक के घर आये हैं।

सीता रूपे लक्ष्मी भैला उतपति राक्षस बध करणे।
लक्ष्मी नारायणे एकत्र हैवन्त जानिया देवतागणे ॥ ४१
महारंग मने आसिलन्त सबे समज्याक जनकर।
पुत्रगण समे आसिलन्त ब्रह्मा पार्ब्बती सहिते हर॥
गन्धर्ब्ब चारण अपेस्वरागण समे आइला पुरन्दर।
परम हरिषे आइला मिथिलाक आनो देव निरन्तर ॥ ४२
बासुकी सहिते यत नागगण आसिला सबे हरिषि।
बिबाह देखिते आसिला आनन्दे नारद प्रमुख्ये ऋषि ॥
पृथिवी मध्यत आछे यत यत राजा प्रजागण माने।
अनेक सम्भारे मंगल आचारे आइला बिबाहर थाने ॥ ४३
नाना बाद्य देव दुन्दुभि बाजय पृथिवी आकाश चानि।
स्वर्ग मर्त्य नाग- लोकत करय जय जय राम ध्वनि॥
नमो रघुपति पूरियो सम्प्रति जगतर मनष्काम।
यत समज्यार लोक बारम्बार बोला जय राम राम ॥ १३४४

राम लक्ष्मणादि चारि भाइर बिबाह

पद

नाना जयमंगल प्रजार कोलाहल * बहुबिध शबदे कर्णत हाने ताल
त्रैलोक्यर लोक एकथान मिथिलात * ब्रह्मा आदि बसि आछा बियार सभात१३४५
मधुर मृदंग धरि बिद्याधरे बावे * गन्धर्ब्ब सकले सुललित गीत गावे
मुख्य मुख्य बाछि अपेस्वरा करे नाट * नाना छन्दे बिछन्दे चपये पढ़े भाट ४६

राक्षस-वध के हेतु सीता का रूप लेकर लक्ष्मी ने जन्म लिया है। देवतागण जानते हैं कि लक्ष्मी-नारायण एकत्र होंगे ॥ १४ ॥ सभी लोग बड़े आनन्द से भर कर जनक की सभा में आये। ब्रह्मा अपने पुत्रों के साथ और महादेव पार्वती के साथ आये। इन्द्र, गन्धर्व, चारण और अप्सराओं को साथ लेकर आये। अन्यान्य देवता भी बड़े हर्ष से मिथिला में आये ॥ ४२ ॥ वासुकी के साथ सारे नाग सहर्ष उपस्थित हुए। विवाह देखने के लिए नारद आदि ऋषि सानन्द आये। पृथ्वी में जहाँ भी जितने राजा और मान्य प्रजा हैं, वे मंगल आचरण कर कितनी ही सामग्रियों सहित विवाह के स्थान पर आये ॥ ४३ ॥ देवता, आकाश और पृथ्वी को गुँजाते हुए दुन्दुभि आदि विभिन्न वाद्यों का वादन करने लगे। स्वर्ग, मर्त्य और नागलोक में राम-राम की जयध्वनि होने लगी। हे रघुपति, इस समय जगत की मनोकामना पूर्ण करो। सभा में जितने लोग हैं, बार-बार जय-राम बोलो ॥ १३४४ ॥

राम-लक्ष्मण आदि चार भाइयों का विवाह

विविध मंगल-सूचक जय-ध्वनि, प्रजाओं के कोलाहल और तरह-तरह के शब्दों से कान बहरे हो जाते। तीनों लोकों के लोग मिथिला में एकत्र हुए। ब्रह्मा आदि विवाह की सभा में बैठे हैं ॥ ४५ ॥ मधुर मृदंग लेकर विद्याधर वादन कर रहे हैं। सारे गन्धर्व सुललित गीत गा रहे हैं। मुख्य-मुख्य चुनी हुई अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं। भाट विभिन्न छन्दों में विरुदावली पढ़ रहे हैं ॥ १३४६ ॥

नाना थाने नाना रंगे नाना कौतूहले * नाना कुटि नाटि लोके करय सकले
प्रजाये जुरिल हाट घाट बाट माने * नानाबिध रस मिलि आछे थाने थाने ४७
सर्ब्बजान जनक नृपति महामति * देव पितृ कर्म्म यत करि समापति
द्विज कन्यागण माति आनिया समस्त * मंगल आचार कराइलन्त यत यत ४८
लौकिक वैदिक ब्यवहार निरन्तरे * समस्ते कराइला राजा बिधि ब्यवहारे
आयती सकले करि मंगल बिधान * चारि बर चारि कन्या कराइलन्त स्नान ४९
दिब्य बस्त्र अलंकारे कराइला भूषण * हातल दिलन्त फल कटारी दर्पण
मेनका सुन्दरी महादइ जनकर * संगे लैया द्विज कन्यागण निरन्तर ५०
सीता सती उर्म्मिला माण्डवी श्रुतकीर्त्ति * चारिरो मंगल आचरिला सावहिति
नानाबिध बिभूषणे कराइला भूषित * कपाले तिलक दिला करि सुबलित ५१
सिन्दुरर माजे दिला चन्दन धवल * सुबिचित्र करि दिला नयने काजल
कुशध्वज महाभति नृपति जनक * अर्च्चिलन्त बिधिवते चारि कुमारक ५२
दिलन्त चारिको बिहा मंडपर तले * चारिर प्रकाशे सभाखान अति ज्वले
बिबाहर लग्न आसि भैल अनन्तरे * जानि पाचे हरिषे जनक नृपबरे ५३
कन्या सम्प्रदान करिबाक बसिलन्त * रामे समे देवतासबक अर्च्चिलन्त
बिश्वामित्रे बिधि पाठ करन्त हरिषि * रंगे होम करन्त बशिष्ठ महाऋषि ५४
येन अनुक्रमे बिधि आचरिया ताक * रामर लगत निया बसाइला सीताक
तिल कुश धरिया जनक नरनाथे * उत्सर्गि सीताक दिला राघवर हाते ५५
सेहि समयत भैला महा महोत्सव * उरुलि जोकार बहुबिध जय रव
देव मनुष्यर बाद्य एकत्रे बाजय * सिद्ध मुनि सकले कुसुम बरिषय ५६

विभिन्न स्थानों पर तरह-तरह की तरंग और खुशी में लोग आपस में हँसी-मजाक, भँड़ैती कर रहे हैं। प्रजा लोग राह-रस्ते हाट-बाजार हर कहीं छा गये। लोग अपनी-अपनी रुचि के गुट बनाकर स्थान-स्थान पर एकत्र हैं ।। ४७ ।। सर्वज्ञ महामति राजा जनक ने सारे देव और पितृ-कर्म समाप्त कर ब्राह्मण कन्याओं को बुलवाकर जितने मंगलाचार के कार्य थे, करवाये ।। ४८ ।। राजा ने लौकिक और वैदिक समस्त आचार विधिवत् कराये। सभी सुहागिनों ने मंगल-विधान के अनुसार चार वर और चार कन्याओं को स्नान कराया ।। ४९ ।। सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से उनको सुसज्जित किया। हाथों में फल, कटारी और दर्पण दिया। जनक की महारानी मेनका ने साथ में ब्राह्मण कन्याओं को लेकर—।। ५० ।। सती सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतकीर्त्ति चारों का सावधानी से मंगलाचार किया। तरह-तरह के आभूषणों से उनको विभूषित किया और माथे पर ललित तिलक अंकित कर दिया ।। ५१ ।। सिन्दूर के मध्यभाग में श्वेत चन्दन लगा दिया। नयनों में विचित्र ढंग से काजल लगाया। कुशध्वज और महामति राजा जनक ने विधिवत् चारों कुमारों की अर्चना की ।। ५२ ।। चारों को विवाह के मंडप के नीचे ले आये। चारों के प्रकाश से सभा-स्थल अति उज्ज्वल हो उठा। इसके बाद विवाह की शुभ घड़ी आ गयी, यह जान कर राजा जनक हर्ष से—।। ५३ ।। कन्या-दान करने के लिए बैठ गये। उन्होंने राम सहित सारे देवताओं की अर्चना की। विश्वामित्र सहर्ष विवाह-विधि के मंत्रों का पाठ करने लगे और महर्षि बशिष्ठ सानन्द होम करने लगे ।। ५४ ।। जिस क्रम से विधि का आचरण करना है, वैसा कर राम के पास लाकर सीता को बिठा दिया। राजा जनक ने हाथ में तिल और कुश लेकर सीता को उत्सर्ग कर राम के हाथों में दिया ।। ५५ ।। उसी समय महा महोत्सव हुआ।

अल्या दांभिक चोर अज्ञान, बांधी अश्व धरे छे ध्यान,
कह्यां अति घणां कठण वचन, ध्यान भंग थयुं मुनिजन । १२ ।
नेत्र उघाडियां तत्काळ, जाणे प्रले अग्निनी झाळ,
बळ्या ज्वाळे करीने कुमार, थया भस्म ते साठ हजार । १३ ।
जुए सगर भूपति वाट, न आव्या सुत थाय उचाट,
असमंजस केरो तन, नाम अंशुमान रतन । १४ ।
पितामहनी आज्ञा मागी, चाल्यो खोळवाने अनुरागी,
काकानी करतो परिशोध, सिंधु-तीरे आव्यो अविरोध । १५ ।
बेठा दीठा कपिल मुनिजन, करी स्तुति निर्मळ मन,
थई प्रसन्न बोल्या भगवान, माग्य माग्य आपुं वरदान । १६ ।
बोल्यो अंशुमान सलग्न, अश्व आपो पूर्ण थाय यज्ञ,
मुज काका पाम्या अवगत्य, ते तणी बतावो सद्गत्य । १७ ।
बोल्या कपिलमुनि त्यां वचन, तारो अश्व लेइ जा तन,
मुज ध्यान भंग कर्युं जेह, बळी भस्म थया छे तेह । १८ ।

(वहाँ) कपिल मुनि ध्यान धारण करके बैठे हैं (थे)। जब उन्होंने घोड़े को बाँधा हुआ देखा, तो वे क्रोध करके बोले । ११ । 'अरे दाम्भिक, चोर, अज्ञान (नासमझ) ! घोड़े को बाँधकर (अब) ध्यान धारण करता है!' उन्होंने अत्यधिक कठोर वचन (और भी) कहे, तो (कपिल) मुनि का ध्यान टूट (भंग हो) गया । १२ । उन्होंने (कपिल ने) तत्काल आँखें खोल दीं, मानो वे प्रलय की अग्नि की ज्वालाएँ ही थीं। उस ज्वाला में (वे) कुमार जल गये। (इस प्रकार) वे साठ सहस्र (सगर–)पुत्र भस्म हो गये । १३ । सगर राजा ने (पुत्रों की) राह देखी, वे पुत्र (जब) नहीं (लौट) आये तो वे चिन्तित हो गये। असमंजस के (एक) पुत्र-रत्न था, जिसका नाम था अंशुमान । १४ । (अपने) दादा से आज्ञा माँग कर, (अपने) चाचाओं के प्रति प्रेम करनेवाला वह (अंशुमान) तलाश करने चल दिया । चाचाओं को खोजता हुआ वह बिना किसी विरोध के समुद्र-तट पर आ गया । १५ । उसे कपिल मुनि बैठे हुए दिखायी दिये। उसने निर्मल (शुद्ध) मन से (उनकी) स्तुति की। भगवान् कपिल (इससे) प्रसन्न होकर बोले– 'माँगो, माँगो! मैं वरदान देता हूँ।' १६। तो उत्कट इच्छा-सहित अंशुमान बोला–'अश्व दीजिए जिससे यज्ञ पूर्ण हो जाए। मेरे चाचा अवगति को प्राप्त (हो गये) हैं, उनकी सद्गति (का उपाय) बताइए।' १७ । तब कपिल मुनि (यह) बात बोले–'हे पुत्र, अपना घोड़ा ले जाओ। जिन्होंने मेरे ध्यान को भंग कर दिया, वे जलकर भस्म हो गये हैं। १८ । (जब)

सत्यलोकथी आवे गंग करे स्पर्श भस्म जळसंग,
त्यारे पामे ए उद्धार, माटे गंगा लावो निरधार । १९ ।
सुणी वाणी कपिलनी शुद्ध, अंशुमाने विचारी बुद्ध,
सगरात्मज बळिया तेह, तेनी भस्म पडी'ती जेह । २० ।
एक कूपमां नाखी त्यांहे, हय लेई आव्यो पुरमांहे,
कही भूपतिने सहु वात, सुणी राये कर्यो आंसुपात । २१ ।
अंशुमानने आपी राज, नृप वनमां गया तप काज,
असमंजस रायनो तन, ते तो पहेलो गयो छे वन । २२ ।
अंशुमान करे छे राज, कुळधर्म नीतिनुं काज,
तेने एक थयो संतान, नाम दिलीप महाबळवान । २३ ।
आप्युं दिलीपने राज्यासन, अंशुमान गयो छे वन,
बेठो ध्यान धरी महाराज, गंगानुं तप करवा काज । २४ ।
घणा दिवस कर्युं तपाचर्ण, नाव्यां गंगा ते पाम्यो मर्ण,
वृद्धि पाम्यो दिलीप राजन, थयो तेने भगीरथ तन । २५ ।

सत्यलोक से गंगा आएगी, और उसके जल से (उनका) भस्म स्पर्श करेगा, तब वे उद्धार को प्राप्त हो जाएँगे। इसलिए निश्चयपूर्वक गंगा को ले आओ'। १९। कपिल मुनि की (यह) पवित्र वाणी अंशुमान ने सुनी और (अपनी) बुद्धि से उसपर विचार किया। सगर के पुत्र बलवान (थे) और (जहाँ) उनका भस्म पड़ा हुआ था, वहाँ एक कुएँ में उसे अंशुमान ने डाल दिया; (तदनन्तर) घोड़ा लेकर वह (अपने) नगर में आ गया। उसने राजा से समस्त बात कह सुनायी। उसे सुनकर राजा ने अश्रुपात कर दिया (आँसू बहाये)। २०-२१। अंशुमान को राज्य देकर, राजा (सगर) तपस्या करने के लिए वन में गये। राजा का पुत्र असमंजस था, वह तो पहले ही वन में गया है (था)। २२। (तब) अंशुमान राज्य करता है (था)। वह कुलधर्म तथा नीति के अनुसार कार्य करता है (था)। उसके एक पुत्र हुआ। उस महाबलवान पुत्र का नाम दिलीप था। २३। अंशुमान ने दिलीप को राज-गद्दी दी और वह (भी) वन में (तपस्या के लिए) गया है (था)। वह महाराजा गंगा की प्राप्ति के हेतु तप करने के लिए ध्यान धारण करके बैठ गया। २४। उसने बहुत दिन तपश्चरण किया; परन्तु गंगाजी नहीं आयीं, तो वह मृत्यु को प्राप्त हो गया। इधर राजा दिलीप उन्नति को प्राप्त हो गया। उसके भगीरथ नामक (एक) पुत्र हो गया। २५। (यथासमय) दिलीप ने भगीरथ को राज्य सौंप दिया और वह गंगाजी की प्राप्ति के हेतु तपःकर्म

भगीरथने सोंप्युं राज, गयो दिलीप गंगा तपकाज,
नाव्यां गंगा थया बहु दिन, पछे मृत्यु पाम्यो राजन । २६ ।
ते भगीरथे जाणी वात, नथी आवतां गंगा मात,
माटे निश्चे हुं लावुं आ ठाम, तो भगीरथ मारुं नाम । २७ ।
ऊठीने चाल्यो तेणी वार, तप करवा वन मोझार,
जे मेरुथकी दक्षिण पास, मानसरोवर छे सुख-राश । २८ ।
मयनाकर पर्वत ज्यांहे, भूमि कनक तणी छे त्यांहे,
ते ठेकाणे भगीरथ भूप, तप आचर्युं उग्र अनूप । २९ ।
ते तपे स्वर्गे भूमि डोलावी, गंगाए कह्युं ध्यानमां आवी,
हुं आवुं राय निश्चे जाण, मारी धारा धरशे कोण ? । ३० ।
काढ्य खोळी तेने तत्काळ, नीकर भेदी भू जईश पाताळ,
गंगानां सुणी एवां वचन, राये आराध्या पंचानन । ३१ ।
शिव कहे सुण दिलीपकुमार, हुं धरीश गंगानी धार,
त्यारे ऊतर्यां सुरसरी त्यांहे, पडी धारा ते शिवजटामांहे । ३२ ।
अभिमान कर्युं ते काळ, शिव सहित घालुं पाताळ,
शिवे विचार्युं ते मनमांहे, गंगा गूंचवायां जटामांहे । ३३ ।

करने के लिए गया। बहुत दिन तक गंगाजी नहीं आयीं; तदनन्तर राजा दिलीप मृत्यु को प्राप्त हो गया। २६। भगीरथ ने यह बात जान ली कि गंगामाता नहीं आ रही हैं। (उसने सोचा) इसलिए मैं निश्चय ही उन्हें इस स्थान पर लाऊँगा, तो ही मेरा 'भगीरथ' नाम (चरितार्थ) है। २७। उस समय वह तप करने के लिए वन में चला गया। जिस मेरु पर्वत के दक्षिण में (साक्षात्) सुख की राशि (के समान) मानसरोवर है और जहाँ मयनाकर पर्वत है, वहाँ स्वर्ण-भूमि है। उस स्थान पर भगीरथ राजा ने बेजोड़ उग्र तप का आचरण किया। २८-२९। उस तप ने स्वर्ग में भूमि को हिला दिया (कँपा दिया), तो राजा भगीरथ के ध्यान में आकर गंगाजी ने कहा—'हे राजा! मैं आती हूँ—यह निश्चय समझो। (परन्तु) मेरी धारा को धारण कौन करेगा? ३०। उसे झट से खोज निकालो, नहीं तो भूमि को भेदकर मैं पाताल में चली जाऊँगी'। गंगाजी के ऐसे वचन (शब्द) सुनकर राजा ने शिवजी की आराधना की। ३१। तो शिवजी ने कहा—'सुनो हे दिलीप के पुत्र भगीरथ! मैं गंगाजी की धारा को धारण करूँगा।' तब सुर-सरिता गंगाजी वहाँ उतर गयीं, तो उनकी धारा शिवजी की जटा में पड़ गयी। ३२। उस समय गंगाजी ने अभिमान किया (अभिमान-पूर्वक विचार किया) कि शिवजी के

नीकळायुं न सुरसरिताय, एवी महादेवनी प्रभुताय,
स्तुति करी नृपतिए अपार, त्यारे चाली गंगानी धार । ३४ ।
मेरु शीश पडी ते धार, महाप्रचंड ने वेग अपार,
त्यांथी धारा थई त्रण खंड, त्रण लोकमां चाली प्रचंड । ३५ ।
नाम सुरसरी स्वर्गे त्यांहे, भोगावती ते पाताळमांहे,
आव्यां भूतळ भागीरथी नाम, जोई भूप थयो अभिराम । ३६ ।
गंगा कहे करुं पूरण काम, चाल्य देखाड पित्रीनो ठाम,
रथ बेसी आगळ राय, पूंठे चाले प्रवाह गंगाय । ३७ ।
फोडे गिरवर चाले धार, थाय शब्द प्रचंड अपार,
एक मुनिवर मारगमांह्य, ध्यान धरवा बेठा हता त्यांह्य । ३८ ।
राय कहे मुनि शुं बेठा आंहे ? आवे गंगा तणाशो तेमांहे,
अंजलि भरीने मुनिजन, गंगाजळ कर्युं प्राशन । ३९ ।
रायने थई चिंता घणी, करी स्तुति मुनिवर तणी,
जानुमांथी काढी ते ठाम, माटे जाह्नवी पडियुं नाम । ४० ।

साथ (भगीरथ को) मैं पाताल में डालूँगी । शिवजी ने इसका विचार मन में किया (और) गंगाजी को (अपनी) जटा में उलझा दिया । ३३ । (जटा से) सुरसरिता गंगाजी नहीं निकल पायीं । शिवजी की ऐसी प्रभुता है । (तब) राजा भगीरथ ने (शिवजी का) बहुत स्तवन किया, तो गंगाजी की धारा चल पड़ी । ३४ । मेरु पर्वत के मस्तक (शिखर) पर वह धारा पड़ी । उसका वेग अपार था । वहाँ से वह तीन खण्डों में विभक्त हो गयी और तीनों लोकों में वह प्रचण्ड धारा चल दी । ३५ । वहाँ स्वर्गलोक में उनका (गंगाजी का) नाम 'सुरसरिता' है, पाताललोक में वह (उनका नाम) 'भोगावती' है और धरा (पृथ्वी तल) पर वे 'भागीरथी' नाम से आयीं । उसको देखकर राजा प्रसन्न हो गया । ३६ । गंगाजी कहती हैं—'मैं तुम्हें पूर्णकाम कर देती हूँ । चलो पितरों का स्थान दिखाओ ।' (इसपर) रथ में राजा आगे बैठ चला और (उसके) पीछे गंगाजी का प्रवाह चलता है (था) । ३७ । पर्वतों को फोड़ती हुई वह धारा चलती है (थी) । उससे प्रचंड आवाज़ होती है (थी) । तब मार्ग में एक बड़े मुनि ध्यान धारण करके बैठे थे । ३८ । (उन्हें देखकर) राजा कहता है—'हे मुनि ! आप यहाँ क्यों बैठे (हैं) ? गंगाजी आएँगी, तो उनमें बह जाएँगे ।' यह सुनकर मुनि ने अंजली भरकर गंगाजी का जल पी डाला । ३९ । (इससे) राजा को बहुत चिंता हुई । उसने मुनिवर का स्तवन किया, तो उसने उस स्थान पर अपने घुटने में से

गयां गंगा ते सिंधु-मोझार, भस्म कूप भरायो ते वार,
गंगा स्पर्श थयो उद्धार, पाम्या सद्‌गति सगरकुमार। ४१।
थयो विम्वमां जयजयकार, पाम्या मुनिजन हर्ष अपार,
तट चंदर शोभा रम्य, घणा मुनिए कर्या आश्रम। ४२।
थयां अनेक क्षेत्र ने धाम, कर्यो पावन भूतळ ठाम,
विश्वामित्र कहे सुणो राम, एम आव्यां गंगा अभिराम। ४३।
जे कोई सांभळे एह कथाय, नरनारी ते पावन थाय,
तेनुं जन्ममरण दुःख वामे, गंगास्नान तणुं फळ पामे। ४४।

वलण (तर्ज़ बदलकर)

फळ पामे गंगास्नान केरुं, पापी पावन थाय रे,
एवी कथा करी कौशिक ऋषिए, ते सुणी हरख्या श्रीरघुराय रे।४५।

* * *

(बाहर) उस (धारा) को बाहर निकाल दिया। इसलिए (गंगाजी का) 'जाह्नवी' नाम पड़ गया। ४०। (तदनन्तर) गंगाजी समुद्र में गयीं और उस समय भस्म-कूप को (पानी से) भर डाला। गंगाजी के स्पर्श से सगर-पुत्रों का उद्‌धार हो गया और वे सद्‌गति को प्राप्त हो गये। ४१। विश्व में जय-जयकार हो गया। मुनि अत्यधिक हर्ष को प्राप्त हो गये। गंगा के चंद्राकार तट की रमणीय शोभा थी। अनेक मुनियों ने (वहाँ) आश्रम (तैयार) किये। ४२। गंगाजी के तट पर अनेक (तीर्थ) क्षेत्र और (पवित्र) स्थान (तैयार) हो गये। उन्होंने पृथ्वी-तल का स्थान पवित्र कर दिया। विश्वामित्र कहते हैं—'हे राम! सुनो—इस प्रकार मनोहारिणी गंगाजी (पृथ्वी-तल पर) आ गयीं।' ४३। (गिरधर कवि कहते हैं कि) जो कोई यह कथा सुनते हैं, वे नर-नारी पवित्र हो जाते हैं। उनका जन्म-मरण का दुःख घट जाता है और वे गंगा-स्नान के फल को प्राप्त हो जाते हैं। ४४।

वे गंगा-स्नान के फल को प्राप्त हो जाते हैं। पापी जन पवित्र हो जाते हैं। विश्वामित्र ने यह कथा कही, तो उसे सुनकर श्रीरघुराज आनन्दित हो गये। ४५।

* * *

अध्याय–२७ (ताड़का-वध)

रागमेवाडो

विश्वामित्रनां वचन सुणीने, हरख्या लक्ष्मण राम जी,
गंगानी उत्पत्ति सुणी जे, भागीरथी पडियुं नाम जी। १।
पछी त्यांहा थकी आगळ चाल्या त्रैणे, सिद्धाश्रमने पंथ जी,
रामने विश्वामित्र भणावे, अनेक प्रकारना ग्रंथ जी। २।
अस्त्रमंत्र नानाविध केरा, युद्धकळा बहु भात जी,
विश्वामित्रे प्रवीण कर्या ते, शीख्या बन्ने भ्रात जी। ३।
त्यारे आगळ जातां बे मारग आव्या, मुनिने पूछे राम जी,
बे मारगमां जे होय ढूंकडो ते, कहो मुजने अभिराम जी। ४।
त्यारे कौशिक कहे वाम पंथ वेगळो, दक्षिण पंथ नजीक जी,
पण ए मारगमां ताडिका रहे छे, तेनी छे घणी बीक जी। ५।
त्यारे राम कहे ए मारग चालो, नहि थाय कांई विघन जी,
घणघणाट रथनो रव वाजे, आप्युं ताडिकारण्य जी। ६।

अध्याय—२७ (ताड़का वध)

श्रीराम और लक्ष्मण ने गंगा की उत्पत्ति (की वह कथा) सुनी, जिसके अनुसार उसका नाम 'भागीरथी' पड़ गया। विश्वामित्र के (इस सम्बन्ध में वे) वचन सुनकर श्रीराम और लक्ष्मण आनन्दित हो गये। १। अनन्तर (वे) तीनों वहाँ से आगे सिद्धाश्रम के पथ पर चल दिये। (मार्ग में चलते-चलते) विश्वामित्र ने श्रीराम को अनेक प्रकार के ग्रन्थ पढ़ाये (अर्थात् शिक्षा प्रदान की)। २। विश्वामित्र ने उन्हें नाना प्रकार के अस्त्रों के मंत्रों तथा बहुत प्रकार की युद्ध-कलाओं में प्रवीण कराया। दोनों भाइयों ने उन्हें सीख लिया। ३। तब आगे जाने पर दो मार्ग आये (दिखायी दिये), तो राम ने मुनि विश्वामित्र से पूछा—'हे अभिराम मुनि, (इन) दो मार्गों में से जो निकट का हो, वह मुझे बताइए'। ४। तब विश्वामित्र कहते हैं (बोले)—'बायाँ मार्ग दूर का है, जबकि दाहिनी ओर का (मार्ग) निकट का है। परन्तु उस मार्ग में ताड़का रहती है। उसका बहुत भय है।' ५। तब राम कहते हैं (बोले)—'उस मार्ग से चलिए। कोई विघ्न नहीं होगा।' (तदनन्तर वे आगे चल दिये। उनके) रथ की घनघनाहट (की ध्वनि) बजती है (थी)। (कुछ समय के बाद) ताड़का का वन आ गया। ६। उस समय रथ की आवाज सुनकर ताड़का (वहाँ) आ गयी। उसमें एक हजार हाथियों का बल है

एवे रथनो पडघो सांभळी, आवी ताडिका तेणी वार जी,
एक सहस्र वारणनु बळ छे, प्रचंड रूप अपार जी । ७ ।
सो एक मुनि मुखमां घाल्या छे, पापिणी हिंसावान जी,
एवी कुभकर्णनी भगिनी आवी, तनु पर्वत समान जी । ८ ।
बार गाउ लगी मुख पहाळुं छे, नेत्र जाणे अंगार जी,
पंच पंच कोशनो एकेको स्तन छे, शिर गिरिश्रृंग आकार जी । ९ ।
अनेक राक्षसीओ लेई संगे, आवी मारग मांहे जी,
श्रीरघुवीरने देखाडी छे, विश्वामित्रे त्यांहे जी । १० ।
त्यारे श्रीरामे कोदंड चडाव्युं, शर कीधुं संधाण जी,
मुनि आज्ञा मागी रघुवीरे, मूक्युं तीक्ष्ण बाण जी । ११ ।
जेम अग्नि केरी ज्वाळा चाले चमके तडित आकाश जी,
एम रामबाण घूघवतुं चाल्युं, करतुं दिशाओ प्रकाश जी । १२ ।
अकस्मात् आवीने वाग्युं, ताडिकाना रूदे मांहे जी,
बाण संगाथे प्राण गया, मृत थई पडी पृथ्वी मांहे जी । १३ ।
पडतामां तेणे चीस ज नाखी, खळभळियुं ब्रह्मांड जी,
बीजी अनेक राक्षसी साथ हती ते, रामे करी शतखंड जी । १४ ।

(था) और उसका रूप (आकार) अत्यधिक प्रचण्ड है (था) । ७ । उसने सौ एक (लगभग सौ) मुनियों को मुँह में डाल लिया है । वह पापिनी हिंस्र है । उसका शरीर पर्वत के समान बड़ा है । कुम्भकर्ण की वह ऐसी भगिनी (सामने) आ गयी । ८ । उसका मुख बारह 'गाऊ' अर्थात् कोस तक चौड़ा है । आँखें मानो अंगार हैं । उसका एक-एक स्तन पाँच-पाँच कोस का (—जितना लम्बा) है । (उसका) मस्तक आकार में पर्वत के शिखर (के समान) है । ९ । अनेक राक्षसियों को साथ में लेकर वह ताड़का मार्ग में (सामने) आ गयी । वहाँ विश्वामित्र ने उसे राम को दिखा दिया । १० । तब श्रीराम ने धनुष चढ़ा लिया (और) बाण संधान किया । उन्होंने मुनि से आज्ञा माँगी (और एक) तीक्ष्ण बाण चला दिया । ११ । जैसे अग्नि की ज्वाला चलती (उभरती) है, जैसे आकाश में बिजली चमकती है, वैसे श्रीराम का (चलाया हुआ) बाण घहराता हुआ, दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ चला । १२ । सहसा आकर वह ताड़का के हृदय में लग गया (और) बाण के साथ उसके प्राण (निकल) गये । (इससे) मरकर वह भूमि पर पड़ (लुढ़क) गयी । १३ । भूमि पर लुढ़क जाते समय उसने चीत्कार ही किया, जिससे ब्रह्माण्ड क्षुब्ध हो उठा । (उसके) साथ में जो दूसरी अनेक राक्षसियाँ थीं, (उन्हें

आकाशमांहे विमानमां बेसी, जुए देव तेणी वार जी,
दुंदुभिनाद करी पुष्पवृष्टि, कहेता जय जयकार जी । १५ ।
ताडिकानो वध रामे कर्यो सुणी, हरख्या सरवे लोक जी,
मुनिवर मन आनंदज पाम्या, टाळियो भय ने शोक जी । १६ ।
त्यां थकी सिद्धाश्रममां आव्या, राजकुंवर ऋषि साथ जी,
त्यारे जाण थयुं छे सरव ऋषिने, जे आव्या कोशलनाथ जी । १७ ।
ज्यम सरिता केरु पूर चडे, जाय सागर भरवा काज जी,
एम रामने मळवा दशे दिशाथी आव्या सकळ मुनिराज जी । १८ ।
पछे यज्ञारंभ कर्यो गाधिसुत, मंडप वेदी विशाळ जी,
कुंडमां आहुति थई चालती, प्रगटी अग्निज्वाळ जी । १९ ।
विश्वामित्र दीक्षा लेई बेठा, अनेक मुनिवर पास जी,
राम ने कहेता तमो रक्षा करजो, अमने असुरनो त्रास जी । २० ।
मारीच ने सुबाहु आदे, आवीने करशे भग्न जी,
त्यारे राम कहे मुनिवर नव बीहशो, करो सुखेथी यज्ञ जी । २१ ।

भी मारकर) राम ने शत-शत खण्ड कर डाला । १४ । उस समय आकाश में देव विमानों में बैठकर देखते हैं (देख रहे थे) । दुन्दुभी-नाद के साथ (और) 'जय'—'जय' कहते हुए उन्होंने (श्रीराम पर) फूलों की वर्षा कर दी । १५ । श्रीराम ने ताड़का का वध कर डाला—यह सुनकर सब लोग आनन्दित हो गये । मुनि मन में आनन्द को ही प्राप्त हो गये (क्योंकि श्रीराम ने सबके) भय और शोक को टाल (हटा) दिया । १६ । वहाँ से (वे दोनों) राजपुत्र ऋषि विश्वामित्र के साथ सिद्धाश्रम में आ गये । तब सब ऋषियों को यह विदित हुआ कि कोशलनाथ श्रीराम आ गये (हैं) । १७ । जैसे नदी में बाढ़ आती है और वह सागर को भर देने के लिए जाती है, वैसे समस्त ऋषि श्रीराम से मिलने के लिए दसों दिशाओं से आ गये । १८ । अनन्तर गाधिपुत्र विश्वामित्र ने यज्ञ का आरम्भ किया । (उस यज्ञ के लिए) मण्डप और वेदी विशाल (बनाये गये) थे । कुण्ड में आहुति चलती (समर्पित कर दी जाती) थी; तब अग्नि की ज्वाला प्रगट हो गयी । १९ । विश्वामित्र दीक्षा ग्रहण कर बैठ गये । उनके पास अनेक श्रेष्ठ मुनि (बैठ हुए) थे । वे श्रीराम से कहते, 'तुम (यज्ञ की) रक्षा करो; हमें असुरों का (के सम्बन्ध में यह) भय है, कि मारीच और सुबाहु इत्यादि आकर (यज्ञ को) भंग करेंगे ।' तब श्रीराम ने कहा, 'हे मुनिवरो, आप भयभीत न हो जाएँ; सुखपूर्वक (निश्चिन्त होकर) आप यज्ञ कीजिए । २०-२१

त्रिशंकुनिकै विश्वामित्रुनि यज्ञमु

दीनुनि जेपट्टितिनिः द्रिशुद्धिगनु । मौनुल रप्पिंचि मखमु सेयिंचि
देहंबुतोडने तिविरि नीपलुक । पोहंबु गाकुंड बुच्चेंद दिविकि;
विनु, निन्नु बरमपवित्रु गाविंतु' । ननि पल्कि शिष्युल नंदरजूचि
'मुनुकौनि मीरेल्ल मुनुल ऋत्विजुल । गौनिरंडु, वे त्रिशंकुनि यागमुनकु'
ननि नियोगिंचिन नट्ल वारेगि । मुनिवरेण्युल नेल्ल मौगि दोडिकौनुचु
गदिय विश्वामित्रुकड केगुदेन्चि ।'मुदमंद ननघात्म! मुनुल देच्चितिमि;
रारु वसिष्ठुनाश्रममु वारेल्ल; । वारलु दक्कंग वच्चिरंदरुनु; १६९०
आ वसिष्ठुनि पुत्रुलाडिरि गौन्नि; । या वाक्यमुलु विनु'मंचु वारनिरि :
'मति विचारिंपक मखमु सेयिंचु । नतडु राजट! मालडट सेयुवाडु!
चंडालु मखमुन सकल मुनींद्रु । लुंडि भोजनमुलेयुक्ति जेसेदरु ?
आड केमौगमुल नरुगुदेन्चेदरु । वेड्क सुरलु हविर्भागमुलकु ?
बरग विश्वामित्र पालितुंडैन । नरुडेट्टुलौन्देडु नाकलोकंबु ?

त्रिशंकु के लिए विश्वामित्र का यज्ञ

—दीन का हाथ पकड़ लिया है (शरण दी है)। त्रिकरण-शुद्धि (मन, वचन, कर्म) से मुनियों को बुलवाकर, यज्ञ करवाकर, देह के साथ ही तुम्हें दिवि (स्वर्ग) को भेजूँगा, (जिससे) तुम्हारा वचन असत्य न हो। सुनो, मैं तुम्हें परम पवित्र बना दूँगा'। ऐसा कहकर सभी शिष्यों को देखकर (वे यों) बोले—'तैयार होकर तुम लोग सभी मुनियों तथा ऋत्विजों को त्रिशंकु के यज्ञ में भाग लेने के लिए शीघ्र ही ले आओ'। ऐसी आज्ञा पाकर वे (शिष्य) उसी प्रकार गए (और) सभी मुनि-वरेण्यों को संरम्भ के साथ ले आए (और) सब मिलकर विश्वामित्र के पास आए—'हे अनघात्म! प्रसन्नता के साथ मुनियों को ले आए हैं। (किन्तु) वसिष्ठ के आश्रम के सभी लोग नहीं आये। उन्हें छोड़ शेष सभी लोग आ गये हैं। ॥ १६९० ॥

उस वसिष्ठ के पुत्रों ने कुछ वचन कहे हैं। उन वाक्यों को सुन लीजिए'। ऐसा उन्होंने (शिष्यों ने) कहा—सुनते हैं, बुद्धि से न सोचकर मख (यज्ञ) करानेवाला राजा है! (और) करनेवाला चण्डाल है! चण्डाल के द्वारा किये जाने वाले यज्ञ में सभी मुनीन्द्र किस विधि भोजन करेंगे? वहाँ किस मुख से देवता हविर्भाग लेने के लिए प्रसन्न-मन आयेंगे? विश्वामित्र से पालित एक नर (मनुष्य) स्वर्गलोक को कैसे प्राप्त करेगा? यह (सब) सुनने में आश्चर्यप्रद है'। ऐसा कहकर उन लोगों

विन विस्मयं' बनि वेंलय दूषिंचि' । रनिन विश्वामित्रु डग्नियै मंडि
'कड़ुनिष्ठ दपमिट्लु गाविंचु नन्नु । नडरि दूषिंचु पापात्मुलंदरुनु
नूतनगति नेड्नूरु जन्ममुल । भातिगा ग्रव्यादभावंबु दाल्चि
मानुगा शुनकादि मांसमुल् दिनुचु । हीनुलै चरियिंप निम्मु लोकमुल;
नसमुन नन्नाडु ना महोदयुडु । वसुध निषाधुडै वर्तिपनिम्मु' १७००
अनि शपियिंचि संयमुल वीक्षिचि । 'मुनुलार! यी राजमुख्युद्रिशंकु
नुन्नत कुलशीलु नुरुकीर्तिलोलु । सन्नुत धर्मज्ञु सत्यप्रतिज्ञु
ग्रतुवु सेयिंपुडु गात्रंबुतोड । निर्तडिंद्रपुरि केग निरवोप्प'ननिन
'गाधिसूनुनिमाट गादंटिमेनि । ग्रोधिंचि शपियिंचु घोर वाक्यमुल;
गान जेयितमु क्रतुवु गौशिकुडु । मानुगा जेप्पिन महितमार्गमुन'
ननि पल्कि मुनुलेल्ल नध्वरकर्म । मोनरिंप मंत्रप्रयोगादुलमर
ना गाधितनयुंडु याजकुंडगुचु । यागभागमुलकु नमरुल बिलिचे;
बिलिचिन 'रा' मंचु बेरेलुंगेत्ति । पलिकरि सुर; लट्टु पलुक गौशिकुडु

ने प्रकट (स्पष्ट) रूप से निन्दा की है।' (शिष्यों की बातें सुन) विश्वामित्र अग्नि के समान (क्रोध से) जल उठे। (और) कहा—'अधिक निष्ठा के साथ इस प्रकार तप करनेवाले मुझे अतिशय रूप से निन्दा करनेवाले सभी पापात्मा नूतनगति से सात सौ जन्म राक्षस-रूप धारणकर, शुनक आदि के माँस खूब खाते हुए, हीन बनकर लोकों में विचरण करते रहें। दर्प (अहंकार) के साथ मेरी निन्दा करनेवाला वह महोदय (वसिष्ठ) वसुधा पर निषाद बनकर विचरण करे।॥ १७०० ॥

ऐसा शाप देकर, संयमियों को देखकर कहा—'हे मुनियो! यह राजमुख्य (श्रेष्ठ) त्रिशंकु उन्नत कुलशील वाला, उरुकीर्तिलोल, सन्नुत धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ है। इसी शरीर के साथ यह स्थिरता से इन्द्रपुरी जा सके, तदर्थ उचित यज्ञ कराइए'। ऐसा कहने पर उस ऋषि की बातों पर उन महामुनियों ने विचार कर आपस में कहा—'यदि हम विश्वामित्र की बातों को इनकार कर दें तो यह क्रुद्ध होकर घोर वचनों में शाप दे देंगे। इसलिए विश्वामित्र के बताए श्रेष्ठ मार्ग से मनोहर रूप से क्रतु (यज्ञ) करायेंगे'। ऐसा कह सभी मुनियों ने मन्त्र-प्रयोग आदि के समुचित ढंग से जुड़ने पर यज्ञकर्म किया। (तब) उस गाधितनय ने याजक होते हुए, याग-भागों को (ग्रहण करने के लिए) अमरों (देवताओं) को बुलाया। बुलाने पर देवताओं ने उच्चस्वर से कहा 'नहीं आयेंगे'। (उनके) ऐसा कहने पर कौशिक ने दिशाओं में अत्यन्त प्रचण्डता से अपने क्रोध की

दिशल रोषानलदीप्तुलु निगुड । गुशपवित्रमु चेत गोनि स्रुवंबेत्ति १७१०
'नाकेंद्र लोकंबुनकु द्रिशंकुंड; । नीकोरिनट्ल ने निन्नु बुच्चेदनु
नडरंग ने बाल्यमादिगा नियति । विडुवक तपमु गाविंचितिनेनि
बोन्दितोडने कूड बोयि स्वर्गंबु । नंदुमु पो' म्मन्न ना त्रिशंकुंडु
तत्तपोबलमुन दडयक येल्ल । सत्त्वमुलेगोंडि सरणि बोवुटयु,
'जंडालुडवु नीवु; स्वर्गलोकमुन । नुंड नी'ननि यिंद्रुडुदरि त्रोचुटयु,
गडक 'विश्वामित्र ! काववे'यनुचु । वडि दलक्रिंदुगा वच्चु बलुक
शरणार्थियगु ना त्रिशंकुनि जूचि । करुणाविधेयुडै गाधेयुडपुडु
'जननाथ! नी वाकसमुनंदे निलुवु' । मनि पल्कि निलुपुचु नट दत्क्षणमुन
नलुक द्रिशंकुन कमरेंद्रुतोडि । च्चलमुन वेरोक्क स्वर्गंबु सेसि
ललि नंदु सप्तर्षुलनु दारकमुल । नलवड गल्पिचि या नाकमुनकु १७२०
वेरु देवतल गाविंप, निंद्रुनकु । मारिंद्रु गल्पिप मदि दलंचुटयु,

ज्वाला को फैलाकर, कुश का पवित्र (पैंती) हाथ में लेकर, स्रुव को उठाकर कहा, ।। १७१० ।।

—'हे त्रिशंकु ! तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैं तुम्हें स्वर्गलोक को भेज दूँगा । यदि मैंने बाल्यकाल से लेकर अतिशयता से, नियम को न छोड़ कर, तप किया हो तो शरीर के साथ ही जाकर स्वर्ग को प्राप्त करो, जाओ' । (ऐसा) कहने पर वह त्रिशंकु उस तपोबल के आधार पर, बिना विलंब के, सभी प्राणियों के जाने के विधान से ही (स्वर्ग को) गया । 'तुम चण्डाल हो । (तुम्हें) स्वर्गलोक में रहने नहीं दूँगा' (ऐसा) कहकर इन्द्र ने कम्पित होकर उसे ढकेल दिया ।

—'हे विश्वामित्र ! बचाओ', तेजी से उल्टे ढंग से (नीचे की ओर) आते हुए त्रिशंकु ने कहा । उस शरणार्थी त्रिशंकु को देख, करुणा-विधेय (करुणभाव से भरकर) गाधेय ने तब कहा—'हे जननाथ ! तुम आकाश में ही ठहर जाओ' । ऐसा कह (उसे वहीं) ठहराते हुए वहाँ उसी क्षण क्रोध से, हठपूर्वक त्रिशंकु के लिए देवराज इन्द्र की होड़ पर एक दूसरा स्वर्ग बनाया, प्रसन्नता से उस (स्वर्ग) में सप्तर्षियों को, तारकों को उचित ढंग से बनाकर, उस स्वर्ग के लिए, ।। १७२० ।।

—अलग से देवताओं का, इन्द्र के बदले दूसरे इन्द्र का सृजन् करने के

जाल भीतिलि सर्वसंयमुल् सुरलु । नोलि विश्वामित्रु नोद्द केतेन्चि
'यिललोन मुनिनाथ ! यी त्रिशंकुंडु । दलपोय गुरुशापदग्धुंडु गान
दग नाकमुन नुंड दग'दन्नमाट । दगवुगा गोनि गाधितनयुंडु वलिके;
'सुरलार ! यीतनि सुरलोकमुनकु ।नरिगिंतु मेनितो'ननि पल्किनाड :
ना माट निजमुगा नौट की नाक । मी महीनाथुन किट सेल्लनिंडु;
प्रभनोप्प लोकमुल् परगुनंदाक । नभमुन बोल्चु नी नक्षत्रपंक्ति
गलसि यच्चरवीथि कटेनु मीद । दोलगनि तेजंबुतो जेलुवोन्दि
बृंदारक स्फूर्ति बेम्पोन्दि शिरमु । क्रिंदै त्रिशंकुंडु कृतपुण्युडगुचु
गरमोप्प नी तारकंबुल नडुम । नुरुतरकीर्तिमै नुंडनि' डनिन १७३०
ननुमतिंचुचु नप्पुडायनुग्रहमु । गोनियाडि, मुनि वीड्कोनि सुरल् मुनुलु
ललि निजस्थानंबुलकु नेगि; रंत । नेलमि गौशिकुडु मुनींद्रुल जूचि
'यिम्मुगादिटमीद निदि दपंबुनकु । सम्मर्थमिक्कड जालंग गलिगे;
मुनुलार ! मनमिक मुदमु सित्तमुन । दनर नोक्कडकु बोदमुर'डटंचु
गडक नक्कड बासि कदलि विशाल । कडकेगि यंदु बुष्करतीर्थमुननु

लिए मन में सोचा । (उस पर) अति भीत होकर सभी संयमी, देवता पंक्ति बाँधकर विश्वामित्र के पास आये और कहा—'हे मुनिनाथ! इस पृथ्वी पर यह त्रिशंकु, विचार यदि किया जाय तो, गुरु के शाप से दग्ध (व्यक्ति) है । इसलिए स्वर्ग में रहने योग्य नहीं है' । इस बात को न्यायसंगत मानकर गाधितनय ने कहा—'हे देवताओ ! मैंने कहा था कि इसे शरीर के साथ सुरलोक में भेज दूँगा' । मेरी बात सत्य हो, तदर्थ इस स्वर्ग को इस महीनाथ (राजा) के लिए रहने दीजिए । प्रकाश के साथ लोकों के रहने तक, नभ में स्थित इस नक्षत्र पंक्ति (और) आकाशवीथि से भी ऊपर, शाश्वत तेज से शोभायमान हो, बृन्दारक-स्फूर्ति (देवताओं के समान शोभा)से उन्नत होकर, शिर को उलटा (नीचे) किये हुए, त्रिशंकु को कृतपुण्य होते हुए, उरुतर (अधिक) कीर्ति-युक्त हो, अधिक शोभा के साथ इन तारकों के मध्य रहने दीजिए' । (ऐसा) कहने पर ।। १७३० ।।
—(उसके लिए)अनुमति देते हुए, और उस अनुग्रह की प्रशंसा करते हुए, मुनि (विश्वामित्र) से बिदा लेकर, सुर (और) मुनि प्रेम के साथ अपने-अपने स्थान को गए । तब सस्नेह हो कौशिक ने मुनीन्द्रों को देखकर कहा—'आगे से यह स्थान तप के लिए योग्य नहीं है । यहाँ भीड़ अधिक हो गई है । हे मुनियो ! अब हम प्रसन्न मन से और कहीं जाएँगे । आइये' । प्रयत्न से उस स्थान को छोड़, विशाला के पास जाकर, वहाँ पुष्कर तीर्थ में—

अंबरीषुडु शुनश्शेपुनि यज्ञपशुवुगा गॉनिपोवुट

अंबुफलाहारि यगुचु बॅक्कॅंड्लु । पंबिन निष्ठ दपंबु गाविंप,
नंबरीषुं डयोध्यापुरविभुडु । शंबररिपु - मूर्तिसमुडट्टियॅडनु
वेॅलयंग ग्रतुवु गाविंपगा बूनि । बलभेदिचे यागपशुवु गोल्पोयि
यरसि लेकुन्न ब्रायश्चित्तविधिकि । नरपशुवड्डुगुचु नानाश्रममुल
नरयुचु नंदंद नट नॉक्क मौनि । वरु निंटिकडकु भूवरु डेगुदॅन्चि १७४०
भृगुतुंगवासियै पेदयै नियति । दगनुन्न रुचिकु नॉद्दकु बोयि म्रॉक्कि,
'करुणाढ्य ! येनु यागमु सेय बूनि । परिकिंपनेरक पशुवु गोल्पडितिः
गॉनकॉनि यॉक लक्ष गोवुल नित्तु । गॉनि यागपशुवुगा गॉडुकु नाकिम्मु'
नावुडु नत 'डेनु ना पॅद्दकॉडुकु । पै वेड्क सेयुदुः बशुवुगा नीनु'
नावुडु मुनिपत्नि 'ना पिन्नकॉडुकु । पै वेड्क सेयुदुः बशुवुगा नीनु'
अनि पूनि यिरुवुरु नाडु वाक्यमुलु । विनि शुनश्शेपुडुर्वीपालु जूचि
'तन पॅद्द कॉडुकु मा तंड्रि वाटिंचु । दन पिन्नकॉडुकु मातल्लि वाटिंचु

अंबरीष का शुनश्शेप को यज्ञपशु के रूप में ले जाना

—जल और फल का आहार करते हुए अधिक निष्ठा के साथ अनेक वर्ष तप किया। उसी समय अयोध्यापुर के स्वामी तथा कामदेव के समान सुन्दर शरीरवाले राजा अंबरीष ने शोभायुक्त रूप से यज्ञ करने की तैयारी की, तब इन्द्र के द्वारा उनके यज्ञ का पशु हर लिया गया। ढूँढने पर भी (यज्ञपशु के) न मिलने पर, प्रायश्चित्त-विधि के लिए नरपशु की माँग करते हुए नाना आश्रमों में खोज की। इधर-उधर घूमते हुए भूनाथ कहीं एक मौनिवर के घर पहुँचे ॥ १७४० ॥

—पहाड़ी मोथे से बनी चटाई पर निवास करते हुए, ग़रीब होते हुए नियम से उचित रूप से रहनेवाले रुचिक नामक मुनि के पास जाकर, दण्डप्रणाम कर बोले—'हे करुणाढ्य ! मैं यज्ञ करने का यत्न करके, सावधानी बरत न सकने के कारण (यज्ञ) पशु को खो बैठा। मैं एक लाख गायों को प्रसन्नता से दूँगा। उन्हें लेकर यज्ञपशु के रूप में अपने पुत्र को दो'। यह कहने पर उसने कहा—'मैं अपने बड़े पुत्र पर प्रेम रखता हूँ। अतः उसे पशु के रूप में नहीं दूँगा'। (ऐसा मुनि के) कहने पर मुनिपत्नी ने कहा—'मैं अपने छोटे पुत्र पर प्रेम रखती हूँ। अतः उसे पशु के रूप में नहीं दूँगी'। उन दोनों के ऐसे हठ भरे वाक्य सुन (उनके मँझले पुत्र) शुनश्शेप ने राजा को देखकर कहा—'अपने बड़े पुत्र को मेरे पिता मानते (चाहते) हैं। अपने छोटे पुत्र को मेरी

वारेल नी? केनु वच्चेद: निन्नु। गोरि वारलकिम्मु गोसहस्रमुल'
ननिन-नट्ल यौनंचि यम्मुनिपुत्रु। गौनि रथंबॆक्किचुकॊनि शीघ्रवृत्ति
जननाथु डॆन्तयु संतोषमौप्प। जनिचनि पुष्कराश्रमभूमि जेरॆ १७५०
नचट शुनश्शेपुडति तपोनिष्ठ। नचलुडैयुन्न विश्वामित्रु गांचि
तन मेनमाम यातडु गान ब्रेम। ननलॊत्त रचित प्रणामुडै पलिकॆ:
'ननु दलिदंड्रुली नरवराग्रणिकि। ननघात्म! पशुवुगा नम्मि पॊम्मनिरि;
चॆलुवॊप्प नी राजुसेयु जन्नंबु। फलियिंप जेसि ना प्राणमुल् गावु;
तल्लियु दंड्रियु दैवंबु गुरुवु। नॆल्लचुट्टमुलु नाकीवेळ नीव!'
यनि दैन्यमॊन्द विश्वामित्र मौनि। दन तनूभवुल नंदऱ जूचि पलिकॆ:
'ब्राकटंबुग दम परलोकमुनकु। नै कदा सुतुल बुण्यात्मुलु गनुट:
परलोकमिदिय ना पालिकि; नन्नु। शरणंबु सॊच्चॆ नी संयमिपुत्रु:
डितडु ना मेनल्लुडितनि रक्षिपु। डितनिकै प्राणंबु लिडुडु मीरॊकरु;
नडिगॆद मि'म्मन्न नट्टु सेय गौडुकु। लोडबडकुन्न नत्युग्रुडै मंडि १७६०

माता मानती हैं। उनसे तुम क्यों वादविवाद करते हो? मैं तुम्हारे साथ चलूँगा। मुझे लेकर उन्हें हजार गायें दे दो'। ऐसा सुनकर राजा ने वैसा ही किया और उस मुनिपुत्र को रथ पर बिठाकर, शीघ्रता से, अत्यन्त प्रसन्न हो, जाते-जाते पुष्कर-आश्रम में पहुँचे। ॥ १७५० ॥

वहाँ अति तपोनिष्ठा से अचल बने हुए विश्वामित्र को देख, उनके (विश्वामित्र के) अपने मामा (माता के भाई) होने के कारण (हृदय में) प्रेम के पल्लवित होने पर प्रणाम कर शुनश्शेप बोला—'हे अनघात्मा! मुझे मेरे माता-पिता ने इस नरवर-अग्रणी (राजाओं में श्रेष्ठ) के हाथ पशु के रूप में बेचकर, भेज दिया है। (किसी प्रकार) इस राजा के यज्ञ को शोभा से सफल बनाकर मेरे प्राण बचाइए। इस समय मेरे (लिए) माता, पिता, दैव, गुरु, समस्त बन्धु आप ही हैं'। दीन भाव को प्राप्त होकर ऐसा कहने पर मुनि विश्वामित्र ने अपने सभी पुत्रों को देखकर कहा—'प्रकट रूप से अपने परलोक (स्वर्ग-प्राप्ति) के लिए ही तो पुण्यात्मा लोग पुत्रों को जन्म देते हैं। यही (शुनश्शेप की रक्षा करना) मेरे लिए परलोक (स्वर्ग) है। इस संयमिपुत्र ने मेरी शरण ली है। यह मेरा भानजा है। इसे बचाइए। इसके लिए (इसके बदले) आप लोगों में से कोई एक अपने प्राण दे दे। (यह) तुम लोगों से माँगता (चाहता) हूँ'। ऐसा कहने पर, पुत्रों के वैसा करने के लिए राज़ी न होने पर, उस (विश्वामित्र) ने अत्युग्र हो, क्रुद्ध होकर, ॥ १७६० ॥

'शुनकमांसमु दिंचु सौरिदि वेयेड्डु । लनुभविंपुडु दुःख'मनि शापमिच्चि
कौशिकुडत्यंत कारुण्य बुद्धि । ना शुनश्शेपु नोय्यन जेर बिलिचि
'येनु मंत्रमुलु रेन्डिच्चेद नीकु; । वानि ननुंष्ठिपु वदलक नीवु,
अवि निनु रक्षिचु; नंबरीषुनकु । सवनतंत्रंबुनु सफलंबु सेयु'
ननि चेप्पि मंत्रंबु ला रेन्डु निच्चें; । ननुपमभक्तितो नतडु गैकोनियें ।
मरुनाडु वच्चि यम्मुनुज वल्लभुडु । वरलेडु निजयज्ञवाटंबु जोच्चि
विशसिप बूनि या विमलात्मु देच्चि । पशुपूज सेसि यूपमुन बंधिचें ।
नंत शुनश्शेपुडम्मन्त्रयुगमु । शांतुडै जपियिंचि चलियिंपकुन्न,
नचटि किंद्रोपेंद्रुलर्थितो वच्चि । सुचरित्रु नंबरीषु जेर बिलिचि
क्रतुपूर्णफलमिच्चि कडनुन्न रुचिकु । सुतु जिरायुवु चेसि सुरलतो जनिरि
१७७०

यरुदैन तपमुन नंत वेयेंड्लु । जरिपिन ब्रह्म विश्वामित्रु गदिसि
'नीकु ऋषित्वंबु नी तपश्शक्ति । जेकूडें' ननि योप्प जेप्पि विच्चेसें
नंतट दनियक यत्युग्रतपमु । संततनियतितो जलुपुचु नुंड

—'शुनक (कुत्ते) का मांस खाते हुए क्रम से हजार वर्ष दुख भोगो' ऐसा शाप दिया। अत्यन्त करुणाभाव से उस शुनश्शेप को धीरे से (अपने) पास बुलाकर कौशिक ने कहा—'मैं तुम्हें दो मन्त्र दूंगा। उनका निरन्तर जप करते रहो। वे तुम्हारी रक्षा करेंगे (और) अम्बरीष के यज्ञ को (भी) सफल बनायेंगे'। ऐसा कहकर उनको दो मन्त्र दिए। उसने अनुपम भक्ति से ग्रहण किया। दूसरे दिन उस राजा ने अपने शोभायमान यज्ञवाट (यज्ञभूमि) में प्रवेश किया और बलि देने की (बात) सोचकर, उस विमलआत्मावाले (शुनश्शेप) को लाकर, पशु (के समान) पूजा कर यूप (स्तम्भ) से बाँध दिया। तब शुनश्शेप शान्त हो उस मन्त्रयुग्म का जप करते हुए निश्चल रहा। (तब) वहाँ इन्द्र (और) उपेन्द्र प्रेमपूर्वक आये और सुचरित्र अम्बरीष को निकट बुलाकर (उन्हें) क्रतु का पूर्णफल देकर, निकट स्थित रुचिक के पुत्र को चिरायु बनाकर, (अन्य) देवताओं के साथ चले गए। ॥ १७७० ॥

जब अपूर्व (घोर) तपस्या करते हुए एक हजार वर्ष बीत गये तब ब्रह्मा विश्वामित्र के पास आकर मनोहरता पूर्वक बोले—'तुम्हारी तपःशक्ति से तुम्हें ऋषित्व प्राप्त हो गया'। (ऐसा कहकर) वे चले गए। तब (उस वरदान से) तृप्त न होकर (विश्वामित पुनः) निरन्तर अत्युग्र तप

गामरूपमु लील गैकोननेर्चु । कामुनि बाणंबु कमनीयकंबु

विश्वामित्रुडु मेनकनु गूडुट

चेलुवोन्द नप्सरस्स्त्रीमूर्ति दाल्चि । मेलगेडु गति दोप मेनक यपुडु
ललित यौवन कळालावण्यगण्य । जलकेळि देल ना सति जारुकोप्पु
जिकिलि चूपुलु नुनु जेक्कुलु मुद्दु । मोकमु गेम्पुलमोवि मोलकनव्वुलुनु
बोन्गारु कुचकुंभमुलु बदावन्ने । बंगारुपोडि रालु बाहुमूलमुलु
जिन्नारि नूगारु सिंगंपु गौनु । बोन्न पूपोक्किलि बोदलेडु पिरुदु
लूरुलतीरु नोरूरगा जूचि । पेरु वाडि मरुंडु पेळपेळ नार्व १७८०
ध्यानंबु मौनंबु दपमु बोकार्चि । मेन गळल् ग्रम्म मेनक जूचि
'नन्नु गायजु केळि नलिनाक्षि! पोन्दु'। मन्न ना माटकु नंगीकरिंचि
पदियेड्लु मदिसोलि भावजुकेळि । सदमदंबुग सौख्यसरसि देलिंचे;
मरि विवेकमु पूनि मौनि येन्तेनि । दरुगनि तन तपोधनमु वोवुटकु
वरितपिंचुचु, मदि बदिलंबु सेसि । सुरलोकमुनकु ना सुदति वीड्कोलिपि,

---

करते रहे। तब कामदेव के कमनीय बाण ने मानों कामरूप ग्रहण किया हो,

विश्वामित्र का मेनका से मिलना

—मेनका का रूप ऐसा था। वह मानों मनोहरता से अप्सरा स्त्री की मूर्ति धारण कर विचर रही हो। तब (मेनका) जो ललित-यौवनकला-लावण्य में गण्य (गणनीय) थी, जलक्रीडा में मग्न हुई। उस स्त्री के शिथिल पड़े जूड़े को, मनोहर चितवन, स्निग्ध कपोल, प्यारा मुख, माणिक्य के-से ओंठ, मंद-मुस्कान, उभरते कुचकुम्भ (कलश के समान स्तन), सोलह कलाएँ (कलाओं से पूर्ण शरीर कान्ति), स्वर्ण-चूर्ण विखेरने वाले (श्वेतकमल) बाहुमूल, सुन्दर रोमराजि, सिंह की-सी कमर, पुन्नाग की-सी नाभि, उत्कर्ष को प्राप्त नितंब, (और) ऊरुभाग की शोभा को (विश्वामित्र ने ऐसा) देखा जिससे लार टपकने लगी। देखकर अपनी प्रतिष्ठा को खोकर, (मन में) कामदेव के प्रबल हो जाने पर, ।। १७८० ।।

—ध्यान, मौन (और) तप को छोड़कर, शरीर पर कलाओं के छा जाने पर, मेनका को देख (यों) बोले—'हे कमलनयनी! मुझे कायज-केलि (रतिक्रीड़ा) में प्राप्त करो'। इस बात को स्वीकार कर, दस वर्ष, सब कुछ भुलाकर, भावजकेलि (रतिक्रीड़ा) में, अधिक प्रेम से (उसे) सौख्यसरसि (सुखसागर) में ऊभ-चूभ किया (सन्तुष्ट किया)।

नींहं बिना नादान, वेद पढ़ी वादी थिया ।
पाणु पछाणनि कीनकी, सभ जी कनि गिलान ।
पीअनि पीआरिनि प्रेम रसु, के साधूजन सुजान ।
सदा निराभिमान, सामी रहनि स्वभाव में ।। ४३१ ।।

सामीजी कहते हैं कि प्रेम-रहित नादान (अज्ञानी) जीव वेदों का अध्ययन कर वादी बन गये हैं । वे अपने आप को तो पहचानते नहीं हैं, किन्तु सब की निंदा करते रहते हैं । परन्तु कुछ सज्जन साधु-पुरुष ख़ुद तो प्रेम-रस का पान करते ही हैं और दूसरों को भी (प्रेम-रस का पान) कराते हैं । वे सदैव अभिमान-रहित होकर अपने ही भावों में डूबे रहते हैं (आत्मानंद में ही लीन रहते हैं) ।। ४३१ ।।

नींहं बिना नादान, वेद पढ़ी वादी थिया ।
ब्रांभण कनि ब्र्याईअ साँ, जप तप दान इस्नान ।
नेहीं नारायण रे, ब्री सुधि रखनि कान ।
रहनि मंझि जहान, निर्पक्षु न्यारा नभ जाँ ।। ४३२ ।।

ब्राह्मण (सामीजी) कहते हैं कि प्रेम-रहित नादान (अज्ञानी) जीव केवल वेदों का अध्ययन कर वादी बन गये हैं । वे द्वैत के वश होकर जप, तप, दान, तथा स्नान करते हैं । किन्तु सच्चे स्नेही नारायण के सिवा दूसरे किसी की सुध भी नहीं रखते हैं । वे संसार में रहकर भी आकाश की भाँति निर्लिप्त एवं निष्पक्ष रहते हैं ।। ४३२ ।।

पढ़ियल पलाली, जग में घुमनि केतिरा ।
कथन्दा वतनि एकता, दृढ़ता खों खाली ।
लधी लख्य अलख जी, नेहिनि निराली ।
सदा सान्ति साली, सामी रहनि स्वभाव में ।। ४३३ ।।

सामीजी कहते हैं कि संसार में कितने ही खोखले विद्वान् (अज्ञानी जीव जो केवल अध्ययन करते हैं, पर उस पर आचरण नहीं करते हैं) घूमते रहते हैं । वे दृढ़ता-विहीन होकर एकता के विषय में बकवास करते फिरते हैं । किन्तु सच्चे प्रमियों ने निराले अलख (परमात्मा) का पता ढूंढ निकाला है, अतएव वे सदैव शान्ति धारण कर अपने ही भावों में लीन रहते हैं (आत्मानंद में ही मस्त रहते हैं) ।। ४३३ ।।

पढ़ी पुझाए, स्याणो बणी सभखे।
माया कारणि मन खे, दहदिस दौराए।
पेही ड्रिसे न पाणखे, मुंहुं मढ़ीअ पाए।
जाग़यो जाग़ाए, त सुखी थे सामी चए ॥ ४३४ ॥

(अज्ञानी जीव) बुद्धिमान् बनकर (वेदों का) पाठ कर दूसरों को भी समझाता है किन्तु माया के वशीभूत होकर अपने मन को दशों दिशाओं में दौड़ाता रहता है; वह अपने भीतर झाँककर, हृदय में स्थित आत्मा को नहीं देखता है। सामीजी कहते हैं यदि कोई जागृत (ज्ञानवान्) उसे जागृत करे (ज्ञान दे) तभी वह सुखी हो सकता है ॥ ४३४ ॥

पण्डत चवनि परे, मन वाणीअ खों आत्मा।
तंहिखे ज्ञाणनि कीन की, जो सभखे सद्र करे।
चीटीअ ऐ कुन्चर में, बेहद ज्योति ब्रे।
सामी ड्रिसी ठरे, पंहिंजे अख्यें पाणखे ॥ ४३५ ॥

अपने को पण्डित समझने वाले (अज्ञानी) कहते हैं कि आत्मा मन तथा वाणी से दूर है। वे उस आत्मा को नहीं जानते हैं जो वास्तव में सब में ही व्याप्त है। सामीजी कहते हैं कि चींटी से लेकर हाथी तक सब में वह अनंत ज्योति (आत्म-प्रकाश) ही जलती रहती है, जिसे अपनी ही आँखों से देखकर मनुष्य शीतल हो जाता है ॥ ४३५ ॥

पण्डतु पुकारे, सारु ब्रुधाए सभखे।
सामी पंहिंजे मन जी, ममत्व न मारे।
रखी द्वैत अन्दर में, सम्ता ड्रेखारे।
हल्यो सो हारे, मानुष्य देहि अमोल्य खे ॥ ४३६ ॥

सामीजी कहते हैं कि अपने आप को पण्डित कहलाने वाला (अज्ञानी जीव) सबसे तत्त्व की (आत्मा-संबंधी) बातें करता रहता है, किन्तु अपने मन की ममता को नहीं मिटा पाता है। वह हृदय में द्वैत भाव रखकर केवल बाहर से ही समता दर्साता है, अतएव वह अपने अमूल्य मानव-शरीर को व्यर्थ ही नष्ट कर (इस संसार से) चला जाता है ॥ ४३६ ॥

पथर पूज़ा कनि, देउ न ड्रिसनि देहि में।
पण्डतु ज्ञाणी पाणखे, कर्मनि मंझि ब्रझनि।
साखां सन्तनि जूँ ब्रुधी, मर्मु न रखनि मनि।
से कीअं रंगि रचनि, सामी सुपिर्युनि जे ॥ ४३७ ॥

सामीजी कहते हैं कि (अज्ञानी जीव) पत्थरों की पूजा करते हैं किन्तु अपने ही शरीर में स्थित आत्मा को नहीं देखते हैं। वे अपने को पण्डित समझकर (पूजा, पाठ आदि) कर्मों में उलझे रहते हैं। सन्तों की दी हुई साक्षी सुनकर भी वे हृदय में किसी प्रकार की लाज-शर्म नहीं रखते हैं। भला ऐसे (अज्ञानी) जीव प्रियतम के (प्रेम-रूपी) रंग में किस प्रकार रंग सकते हैं ? (ऐसे अज्ञानी जीवों में परमात्मा के प्रति प्रेम हो ही नहीं सकता है) ॥ ४३७ ॥

पन्ना कुझु पढ़ी, पण्डतु समुझनि पाण खे।
सामी चए सन्सार में, चर्चा कनि चढ़ी।
ड्रिसनि न अन्भय आत्मा, पर्ची पाउ घड़ी।
रात्यूं ड्रीहं रड़ी, मुआ रहनि था ममत्व में ॥ ४३८ ॥

सामीजी कहते हैं कि (अज्ञानी जीव) थोड़े से पृष्ठ पढ़कर अपने आप को पण्डित मान लेते हैं और फिर संसार में घूमकर उसकी चर्चा करते रहते हैं; परन्तु एक क्षण भी शान्त होकर अन्तर-स्थित आत्मा को नहीं देखते हैं, अतः दिन रात ममता में रो-रोकर मरते रहते हैं ॥ ४३८ ॥

पन्ना ढेर पढ़ी, वादि कर्नि वेदान्त जी।
सारु न लहनि लिवं साँ, वाकयनि मंझि वड़ी।
सामी वियो को सूर्मो, चेतन चिट चढ़ी।
भञी भर्म भड़ी, सदा माणे सेज सुखु ॥ ४३९ ॥

(अज्ञानी जीव) पोथे पढ़कर वेदान्त पर वाद-विवाद करते हैं। वे वाक्यों में उलझ जाते हैं, अतः प्रेम से (आत्मा-रूपी) सार को प्राप्त नहीं करते हैं। सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर (ज्ञानी) ही भ्रम-रूपी गठरी को पटक कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर होता है एवं सदैव शय्या-सुख का उपभोग करता है (परमात्मा के साथ विलास करता है) ॥ ४३९ ॥

परमेश्वरु पधरि, अन्धा ड्रिसनि कीन की।
भुली भवनि पाणहीं, ओलहि एं ओभरि।
सामी सुजागनि खे, नेड़े अचे नजरि।
अन्दरि एं ब्राहरि, ड्रिसनि सदा आकास जाँ ॥ ४४० ॥

सामीजी कहते हैं कि यद्यपि परमात्मा प्रत्यक्ष है, फिर भी अन्धे (अज्ञानी जीव) उसे नहीं देख पाते हैं। वे भ्रमित होकर पूर्व तथा

पश्चिम में (परमात्मा को पाने के लिए) भटकते रहते हैं। किन्तु जागृतों को परमात्मा अपनी आँखों के सामने दिखाई देता है, अतः वे सदैव ही उसे आकाश की तरह भीतर एवं बाहर (सब जगह) देखते रहते हैं ॥ ४४० ॥

परमेश्वरु प्रत्क्षु, सामी सूर्य जाँ रहे।
अन्धा द्रिसनि कीन की, पटे पंहिंजी अखि।
तंहिंखे तद्रूप थी. लिव सचीअ साँ लखि।
कोहु करें जखि जखि, दरि दरि देवाननि जाँ ॥ ४४१ ॥

परमात्मा सूर्य की तरह प्रत्यक्ष है, पर अन्धे (अज्ञानी जीव) अपनी आँख खोलकर उसे नहीं देख पाते। अतः सामीजी उन्हें उपदेश देते हुए कहते हैं कि तुम लोग पागलों की तरह क्यों द्वार-द्वार बकवास करते फिरते हो ? तुम लोग उसे सच्चे प्रेम से देखो एवं उसके साथ तद्रूप हो जाओ ॥ ४४१ ॥

परमेश्वरु प्रत्पालु, साणु सदाईं थी रहे।
मूर्ख भवनि मति रे, खणी ख़ामु ख़्यालु।
माणे मौज मुक्ति जी, को रहितवानु रसालु।
जंहिंखे नज़र निहालु, सामी कयो सतिगुरुअ ॥ ४४२ ॥

परमात्मा सबका प्रतिपालक है, वह सदैव ही सब के साथ रहता है। किन्तु मूर्ख (अज्ञानी जीव) बुद्धिहीन होकर, व्यर्थ के विचारों को ग्रहण कर भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, वही पहुँचा हुआ प्रेमी जिसे सद्गुरु ने अपनी नज़र से निहाल कर दिया है (प्रसन्न होकर आत्म-ज्ञान दिया है), मुक्ति का आनंद लूटता है ॥ ४४२ ॥

परमेश्वरु परे, मूर्ख ज़ाणनि मति रे।
तंहिंखे द्रिसनि कीन की, जो सभखे सिधि करे।
कोर्युनि में को हिकिड़ो, समुझी अजरु जरे।
जंहिंते हथु धरे, सामी पूरो सतिगुरू ॥ ४४३ ॥

सामीजी कहते हैं कि जो परमात्मा सब (कार्यों) को सिद्ध करता है, उसे बुद्धिहीन मूर्ख (अज्ञानी) नहीं देख पाते, अतः उसे (अपने से) दूर बताते हैं। करोड़ों में से वही एक अपने को दृढ़ रखता है जिस पर पूर्ण सद्गुरु ने अपना हाथ धरा है (कृपा की है) ॥ ४४३ ॥

प्रत्क्षु प्रकासे, अन्दरि ब्राहरि आत्मा ।
अन्धनि अज्ञान्युनि खे, भोरी न भासे ।
सामी ड्रिठो साध संगि, कंहि नेहींअ निरासे ।
पलक न थिए पासे, पाणु वराए पाणखों ।। ४४४ ।।

सामीजी कहते हैं कि यद्यपि आत्मा भीतर एवं बाहर, प्रत्यक्ष प्रकाशमान है, फिर भी अन्धों तथा अज्ञानी जीवों को वह (आत्मा) रंचमात्र भी दिखाई नहीं देता। किसी विरल निराश प्रेमी ने ही उसे (आत्मा को) साधुओं के संग से देखा है, अतः वह एक पल के लिए भी अपने स्वरूप से अलग नहीं होता है ।। ४४४ ।।

प्रत्क्षु प्रकासे, सामी सूर्य अन्भई ।
व्रिले वद्रभागीअ खे, भर्म रे भासे ।
जंहिंजो कयो सतिगुरू, पटु पर्दो पासे ।
फिरी न फासे, अणहून्दे अज्ञान में ।। ४४५ ।।

सामीजी कहते हैं कि यद्यपि आत्मा सूर्य की भाँति प्रत्यक्ष प्रकाशमान है, फिर भी किसी भाग्यशाली को ही वह भ्रम-रहित दिखाई देता है। जिस (व्यक्ति) का सद्गुरु ने अज्ञान रूपी आवरण हटा दिया है, केवल वही फिर से मिथ्या अज्ञान में नहीं फँसता है ।। ४४५ ।।

प्रत्क्षु परमेश्वरु, अन्धा ड्रिसनि कीनकी ।
हणनि कर्म धर्म में, कल्पे नितु टकरु ।
सुजागनि सही कयो, पर्ची पंहिंजो घरु ।
मेटे द्रःखु द्रमरु, सीतलु थियो सामी चए ।। ४४६ ।।

सामीजी कहते हैं कि परमेश्वर प्रत्यक्ष है पर अन्धे (अज्ञानी) उसे नहीं देख पाते हैं, अतः वे सदैव ही कल्पित धार्मिक क्रिया-कर्मों में माथापच्ची करते रहते हैं। किन्तु जागृतों ने प्रेम से अपना (आत्म-रूपी) घर जान लिया है, अतः वे दुःख दर्द मिटाकर शीतल हो गए हैं ।। ४४६ ।।

प्रत्क्षु पंहिंजो पाणु, वियो विसनि खों विसरी ।
भुली भौसागर में, फोलिनि फुर्ने साणु ।
कद्रहीं थिए कीनकी, नानत खों निरब्राणु ।
मिले सन्तु सुज्ञाणु, त सुत्ह ड्रिसनि सामी चए ।। ४४७ ।।

यद्यपि परमात्मा प्रत्यक्ष है, फिर भी (अज्ञान में) खोये हुए लोग उसे भूल बैठे हैं। वे अपने आप को भूलकर भवसागर में उसे (परमात्मा को)

ढूँढते रहते हैं तथा कभी भी द्वैत भाव से मुक्त नहीं होते हैं। सामीजी कहते हैं, यदि सज्जन सन्त-पुरुष उन्हें मिल जाएँ, तभी वे अपने स्वरूप (आत्मा) को स्वयं देख सकेंगे ॥ ४४७ ॥

पवनि पंहिंजो पाण, अन्धा जीव अज्ञान में ।
ग़ोता खाइनि ग़ैब जा, करे खिन्चाताण ।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, सुजाग़ा सुज्ञाण ।
सदाई निरब्राण, सामी रहनि स्वभाव में ॥ ४४८ ॥

सामीजी कहते हैं कि अन्धे (अज्ञानी) जीव स्वयं ही अज्ञान-रूपी समुद्र में कूद पड़ते हैं। वे व्यर्थ ही खींचातानी कर ग़ैब के ग़ोते खाते रहते हैं। किन्तु जाग्रत अनुभवी (ज्ञानी जीव) स्वरूप-सुख का उपभोग करते रहते हैं तथा सदैव ही (अज्ञान से) मुक्त होकर अपने ही भावों में (आत्मानंद में) लीन रहते हैं ॥ ४४८ ॥

पश्चम खे पूर्व, मूर्ख ज्ञाणनि मति रे ।
वेठा पीर फ़क़ीर थी, करे कूड़ कस्बु ।
समुझे को सामी चए, महबति मतिलबु ।
ढोल मिलण जो डबु, जंहिंखे ड्रस्यो सतिगुरूअ ॥ ४४९ ॥

सामीजी कहते है कि मूर्ख बुद्धिहीन होकर पश्चिम को पूरब मान बैठे हैं (सत्य को असत्य एवं असत्य को सत्य मान बैठे हैं) तथा झूठे कर्म कर पीर-फ़क़ीर बन बैठे हैं। वही विरल प्रेमी सारयुक्त बातें समझ पाता है जिसे सद्गुरू ने परमात्मा से मिलने का रास्ता बता दिया है ॥ ४४९ ॥

पंहिंजी पाड़ पटे, थो मूर्ख जीउ मर्म रे ।
साखां सन्तनि जूँ ब्रुधी, हठ खों कीन हटे ।
मानुष्य देहि अमूल्य खे, थो सागर मंझि सटे ।
वेठो कचु मटे, ड्रेई लाल अणमुल्हा ॥ ४५० ॥

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख जीव निर्लज्ज होकर अपनी जड़ उखाड़ रहा है। सन्तों की साक्षी (सच्ची बातें) सुनकर भी वह अपने हठ से नहीं हटता है। उसने अपने अमूल्य मानुष-शरीर को (अज्ञान-रूपी) समुद्र में डाल दिया है और इस प्रकार वहुमूल्य रत्न देकर वह उसके बदले काँच के टुकड़े ले रहा है ॥ ४५० ॥

पंहिंजो कीतो पाण, मूर्ख पाइनि मति रे।
ड्रांवर ज्यों देहि में, ताणे फासनि ताण।
सामी चढ़िया सीर ते, के नेहीं निरब्राण।
जिनिखे प्रीति पछाण, सतिगुर ड्रिनी स्वरूपजी ॥ ४५१ ॥

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख बुद्धिहीन होकर (अज्ञानी बनकर) अपने किये हुए कर्मों का फल पाते हैं। वे मकड़ी की तरह अपने ही बनाए हुए जाल में अपने को उलझा देते हैं। (जिस प्रकार मकड़ी अपने ही जाल में उलझकर अपने को नष्ट कर देती है, उसी प्रकार अज्ञानी जीव भी अज्ञान के जाल में उलझ कर नष्ट होते हैं)। परन्तु (अज्ञान से) मुक्त प्रेमी, जिन्हें सद्गुरू ने स्व-रुप की पहचान कराई है, वे ज्ञान के ही मार्ग पर अग्रसर होते हैं ॥ ४५१ ॥

पंहिंजो पाण पियो, भुली जीउ भर्म में।
न कंहिं मेड़ि मिन्थ कई, न कंहिं ज़ोरु कियो।
देहीअ जे धर्मनि साँ, मिली देहि थियो।
बांभणु चए ब्रियो, चेतन न ज्ञाणे ज्ञाण रे॥ ४५२ ॥

ब्राह्मण (सामीजी) कहते हैं कि जीव स्वयं ही (अपने स्वरूप को) भूल कर भ्रम में पड़ गया है। उसे (भ्रम में पड़ने के लिए) न किसी ने अनुनय-विनय की है, न ही किसी ने ज़ोर-ज़बरदस्ती की है। बल्कि वह स्वयं ही देह के धर्मों में आसक्त होकर देह बन गया है (शाश्वत आत्मा को भूलकर अपने को नश्वर शरीर मान बैठा है)। वह ज्ञान के अभाव के कारण चेतन (परमात्मा) को नहीं जान पाता है॥ ४५२ ॥

पंहिंजो पाण पवनि, भुली जीव भर्म में।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, जन्मनि नितु मरनि।
साधूजन समझी सची, सामी साख ड्रियनि।
जाग़ी ड्रिठो जिनि, हिकु हेकलो आतमा॥ ४५३ ॥

सामीजी कहते हैं कि जीव (अपने स्वरूप को) भूलकर स्वयं ही भ्रमों में पड़कर भटकते रहते हैं। वे संसार को सत्य मानकर सदैव जन्मते एवं मरते रहते हैं। किन्तु साधु पुरुष, जिन्होंने जाग्रत होकर (आत्म-ज्ञान प्राप्त कर) एक ही आतमा को सब में देखा है, वे उसे समझकर सत्य की ही साक्षी देते हैं॥ ४५३ ॥

पंहिंजो पाण मरे, थो मूर्खु जीउ मनन में।
जीए भोलो भर्म में, फाथो मुठि भरे।
जाग़ी अविद्या निन्ड्र मों, करे न पटु परे।
सतिगुरु महिर करे, त सामी छुटे दुःख खों।। ४५४ ।।

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख जीव ने मन के संकल्प-विकल्प में स्वयं ही अपने को उसी प्रकार उलझा दिया है, जिस प्रकार मूर्ख बन्दर ने भ्रमवश मुट्ठी बन्द कर अपने को फसा दिया था। (दृष्टान्त के तौर पर कहा जाता है कि एक बन्दर ने एक छोटे मुँह वाली सुराही में कुछ चमकीली चीज़ें देखीं और उन्हें पाने के लिए उसने अपना हाथ उस में डाला तथा मुट्ठी भरकर वह ज्यों ही अपने हाथ को निकालने लगा, त्यों ही वह (हाथ) छोटे मुँह में फँस गया। भोले बन्दर ने लाख प्रयत्न किये, लेकिन सब व्यर्थ। वह मुट्ठी किसी भी प्रकार सुराही से न निकल सकी। बन्दर हाय-हाय करने लगा। अज्ञान के कारण वह यह न जान सका कि मुट्ठी खोलकर हाथ निकाला जा सकता है। बन्दर की तरह अज्ञानी जीव भी माया-जाल में फँसकर नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प में उलझे रहते हैं। ज्ञान के अभाव के कारण वे भी बन्दर की तरह लाख प्रयत्न करने पर भी उनसे मुक्त नहीं हो पाते हैं।) वह अविद्या-रूपी नींद से जाग्रत होकर, अज्ञान-रूपी आवरण को नहीं हटाता है, किन्तु यदि सद्गुरु उस पर कृपा करे, तभी वह दुःखों से मुक्त हो सकेगा।।। ४५४ ।।

पंहिंजो पाण मले, थों मूर्खु मिटी मूंहं खे।
छद्दे साध संगति खे, कुसंग साणु रले।
डेई लाल अणमुल्हा, ब्रन्धे कचु पले।
कढी खोटि हले, थो समुझ वराए सखिणो।। ४५५ ।।

मूर्ख जीव स्वयं ही अपने मुँह में मिट्टी मल रहा है (अपने को धोखा दे नष्टकर रहा है)। वह साधुओं का संग छोड़कर कुसंग में ही मस्त रहता है, तथा अमूल्य रत्न देकर काँच के टुकड़े लेकर अपने आँचल में बाँधता रहता है (अमूल्य मानव-शरीर पाकर, बुरे कर्मो द्वारा नष्ट करता रहता है।) इस प्रकार वह खोखला (ज्ञानहीन) बुद्धिहीन होकर, बुरे कर्मों का बोझ उठाता फिरता है।। ४५५ ।।

पंहिंजो पाण रुले, चोरासीअ में जीउ हे।
जीए मृघी जल खे, ड्रिसी मृघु भुले।
तद्रीं ग़न्ढि खुले, जद्रीं सामी मिले सतिगुरू।। ४५६ ।।

भोंकने बडगण देसेयिं
तेंकणदेसेगागि नडेदुदुळ्कमिदेंबा
शंकेयनोडरिसि मिथिलेग
शंकितना खचरनिळिदनंबर तळदिं ॥१०४॥

अंतवनिगवतरिसि पुरश्रीय मुखश्रीयननुकरिसुव कमलवन समीपदोळ् विश्रमिसि जनकं हयप्रियनप्पुदं तिळिदु—

नृपनीतं तुरगप्रियं विषमवाहारोहणात्यंत लो-
लुपनोल्देरदे माणनेरिदोडे साल्गुं कोंडु पोपेंमदी-
यथुरक्केन्नय पूण्के तीर्गुतिदरिं पोगेंदु निश्चयिसि रू-
प परावर्तन विद्येयिं तुरगरूपादं चरं खेचरं ॥१०५॥

अंतु विषम हय वेषमं तळेदु—

ऒय्ददेडेयेल्लमं परि- * देय्दि पुरोपवनमेल्लमं तुळिदु पलर्
वाय्देरेदुपुय्यलिडे कडु * केय्दुक्केवगुदरे पोलिनलिसिताागळ् ॥१०६॥

अदु तिगुरियंदर्दि तिरि-
दुदु मुंदं नेगेदु पिंदनीडाडि बिसि-
ल्गुदुरेयवोल् बिरुवरिवरि-
दुदु केळर्द कृतांतनितिर्देने कृतकाश्वं ॥१०७॥

कत्तरिसि किविगळं नसु-
गुत्तुत्तुं मेय्य खंडमं घुरुघुरेनु

उसने सोचा कि इस तरह उतर कर, वहाँ के सुंदर नगरोद्यान के पास विश्राम करके यह जानकर कि जनक को घोड़े प्रिय हैं, यह राजा घुड़सवारी के प्रति मोह रखनेवाला है, उस मोह के कारण घुड़सवारी की इच्छा किये बिना नहीं रहेगा, एक बार घोड़े पर सवार हो जाय तो बस, मैं उसे अपने देश ले उड़ूँगा, इससे मेरा कार्य बन जायगा। ऐसा सोचकर तुरंत उसने घोड़े का रूप धारण किया। १०५ इस तरह धोखादेही घोड़े का रूप धारण कर, लोगों के पैर न पड़े हुए स्थानों पर चलकर, मिथिला के समस्त उपवनों को कुचलकर (उसने) देखनेवालों को भयभीत कर दिया। १०६ लट्टू की भाँति चक्राकार घूमकर, सिर उठाकर, लपककर, पिछले पैर उठाकर नाचते हुए, कभी अदृश्य हो, पुनः दिखाई देकर, मृगमरीचिका का स्मरण दिलाता हुआ वह कृतक (बनावटी) घोड़ा यम-सा दिखाई पड़ा। १०७ कानों को खड़ा करके, शरीर के खंडों (उपांगों) को अलग-अलग करके दिखाता-सा हिनहिनाते हुए, वह प्रलयकाल की मृत्यु के समान दिखाई

तोत्तरिसे घोण पवननु
दात्तं मसगित्तु वाजि पेर्मारियवोल् ॥१०८॥
खर खुर हतियिं खरमं
करभंगळनट्टि मुट्टि दंताहतियिं
परिदोरसि मनुष्यरना
तुरगं पुगिसित्तु निमिषदिं यमपुरमं ॥१०९॥
इडे गुंडेय्दवु पोय्दोडे
बडिकोळ्ळवु तुत्तें कय्दुवुर्चवु मनदिं
कडुगडिदु मिथिलेयंकू-
गुडिसिदुदद्भुत तुरंगमं सिंगदवोल् ॥११०॥
करे वोयेंबत्तलित्तल् तोलगु तोलगु पोगेंब बायेंब बिद्दं
बरियेंबोवोवो कूकूगुगिदेनुडिदेनेगेय्वेनेंबुच्चनीचं
पुरुष स्त्री बाल वृद्ध स्थविर युव जनांतक शंकातिरेकं
पुरदोळ्पोण्मित्तु विद्याधर कृतक हयाटोप घोर प्रलापं ॥१११॥
बालकरं केलर् मुदुपरं केलरक्षिविहीनरं केलर्
बालेयरं केलर्पिडिदु चेच्चरदिंदररी पुटंगळं
कीलिसि तम्म तम्म मनेवोक्किरे तत्पुरमेल्लमल्लक-
ल्लोलमकालमृत्यु भय विह्वलमादुदु सूकळाश्वदिं ॥११२॥

पड़ा। १०८ वह अपने खुरपुट के प्रहारों से, दाँतों से काटकर, सामने आनेवाले मनुष्यों-प्राणियों को क्षण भर में यमपुरी भेजने लगा। १०९ पत्थर, गोलियाँ उस घोड़े तक नहीं पहुँचतीं, लाठी की मार नहीं लगती; आयुध उसे पीड़ा नहीं पहुँचा सकते। इस तरह मिथिला के जन-जीवन को उस घोड़े ने ऐसा भयभीत (अव्यवस्थित, व्याकुल) कर दिया जैसे किसी सिंह के प्रवेश से होता है। ११० एक ओर से बुलाया जाता, दूसरी ओर से 'हटो-हटो' का शोरगुल सुनाई देता, आ जाओ, आओ, मरा, हाय क्या करूँ' आदि भयपूर्ण आर्तनाद रुलाई—स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्धों के मुख से सुनाई पड़ी। ऊँच-नीच के भेद-भाव के बिना मिथिला की प्रजा उस कृतक घोड़े के कारण मुसीबत में फँस गयी। १११ उस घोड़े ने बच्चों, बूढ़ों, अंधों, स्त्रियों को शीघ्रता से घर के भीतर जाकर द्वार बंद-करके अपने-अपने घरों में सुरक्षित रहने के लिए विवश किया और नगर-भर को अस्त-व्यस्त कर दिया, मानो अकाल मृत्यु का संदर्शन हुआ हो। ११२ उस समय, इस कोलाहल की बात सुनकर जनक सईसों

आ समयदोळ्—

कळकळनादमाद तेरनं जनकं तिळिदा सवारिगळ्
तळेंदु खलीनमं तुरपदिं बरे संदिसि पिंदे राज मं-
डळि बर निंदु हयमं नडे नोळपुदुमीक्षांशुमं-
डळिसिदुर्दिंदु रश्मियोळे तीर्चितोर्डचिद कीळ नेणवोल् ॥११३॥

अंतु नोडलोडं—

सूकळमल्तिुद सकल गु- * णाकरमेने जनकमुख विलोकनदिंदु-
द्रेकममुळिदिरे वाहक- * राकुटिलाश्ववक्के खर खलीमनिट्टर् ॥११४॥

ओट्टजेगेट्टु कार्यवशदिं खचरं पिडिपट्टु पल्लणं
गट्टिसिकोंडुमेनो मुखलीन खलीन कशाभिघातदिं
तोट्टने नोवनेय्दिदनिदावुदु चोद्यमो कौतवक्के कै-
गोट्ट खळंगे तीव्र परिवेदन बंधनमागदिर्कुमे ॥११५॥

अंतु मायाहयमं मंदुरंबुगिसुवुदु मासमयदोळ्—

मृगनाभियनानेय कों- * बुगळं पेंविदर तोरमुत्तं कण्बी-
लिगळं मुंदिट्टोर्व- * पुगुतंदं राजभवनदोळगं शबरं ॥११६॥

अंतु बंदु तन्न तंदुपायनमं कोट्टेरगि पोडेवट्टु देव, नम्म बनदोळोंदु भद्रगजमिर्दुदेंदु बिन्नविसे—

जनकं वन्य गजालो- * कन कौतुक चित्तनादनुचितमे वलमा-
वनो भूर्भुजं गजयिप्र- * नेनिसदनरसानेयिल्लदेनोप्पुगुमे ॥११७॥

(अश्वरक्षकों) के साथ शीघ्रता से लगाम आदि मँगाकर घोड़ों के चारों ओर, परिवार के साथ खड़े देख रहा था कि तैयार की हुई लगाम घोड़े के लिए मृत्युपाश-सी प्रतीत हुई। ११३ ऐसा देखते समय, राजा जनक की मुख-मुद्रा से यह भाव झलक रहा था (प्रकट हो रहा था) कि यह नटखट घोड़ा नहीं है, सकलगुण-सम्पन्न उत्तम घोड़ा है। इतने में सईसों ने घोड़े को लगाम पहना दी। ११४ खेचर इस बात से चिंतित हुआ कि उसका काम नहीं बना और घोड़े के रूप में बंदी बनना पड़ा। पहनाई गई लगाम और चाबुक की मार की पीड़ा से वह तड़प उठा। कपटियों को ऐसी सज़ा मिले तो कोई आश्चर्य नहीं। ११५ —इस तरह मायावी घोड़े को अस्तबल (घुड़साल) में प्रवेश कराते समय, एक शवर, कस्तूरी, हरितदंत, मोती-रत्न एवं मोर के पंख लिये, राजभवन में प्रविष्ट हुआ। ११६ —उसने लायी हुई भेंटों को जनक के सम्मुख रखकर हाथ जोड़कर निवेदन किया 'भगवन्, हमारे वन में एक हाथी

अनंतरं—

परिजनमुमाप्तजनमुं*परिकाररुमोजॆविडियुमॊडवरॆ वन्य
द्विरदन बंधन कौतुक* नरण्यमं मुट्टॆवंदनंदु नरॆंद्रं ॥ ११८ ॥

आ महागहन सरल सल्लकी प्रदेशदॊळ्—
मुगिलॊडुं गॆलॆवंद कायभरदिं पॊंबॆट्टनॊट्टैपदि-
ट्टिगळिं काळिगनागनं नगुव कैयिं कार तंदल्वॊल-
ल्लुगुवॆंटुं मदवट्टियिं पॆरॆय सौभाग्यक्कॆ तोडाद कॊ-
डुगळिंदॆं जनकंगॆ हर्षजनकं तानायतॊ वन्यद्विपं ॥११९॥

आगळा गजद बळिसंदु नडॆवानॆ वाहकरॊडनॆ पोगलॆंदु
पल्लणिसि कॊलदॊळिर्दं कृतक तुरंगमं तरिसि—

उंगुटमनंकवणिगॆ क- * रांगुळियं स्कंध संधिगुय्देरिदनु-
त्तुंग तुरंगममं नृप- * तुंगं सूकळमिदॆंदु सॊडॆदनॆ मनदॊळ् ॥१२०॥

अंतु बॆंगॊवंदु कीळनळवडॆ पिडिदु तॊडॆयॊळवुंकि नूंकुवुदुं बिसिल्गुदुरॆयंतॆ पॊळॆदुच्चैश्रवदंतॆ नभक्कॆ नॆगॆदु रविरथवाजियंतॆ पवनपयदॊळ् परिवुदुं—

आया है।' यह सुनते ही जनक में उस हाथी को देखने का कुतूहल जाग उठा। किसी राजा का, हाथी को देखने के लिए आतुरित होना आश्चर्य की बात नहीं है। हाथी के बिना राजा की शोभा ही क्या है ? । ११७ तत्पश्चात्, वन में बंधित भद्रगज को देखने के कुतूहल से, परिजन एवं आप्त मित्रों के साथ जनक वन में चला आया । ११८ —दधिफल के पेड़ों से भरे उस घने जंगल में, मेघसमूह को पराजित करने के लिए तैयार, देहभार से कनकाचल का स्मरण दिलानेवाला, कालिंग (सर्प) की दृष्टि के समान दृष्टिमान, अपनी सूँड से अष्ट दिशाओं में पानी सींचकर वर्षाऋतु का स्मरण दिलानेवाला, मदांध रेखा और दाँतों से चंद्रकिरण को याद करानेवाला, उस हाथी ने राजा जनक को हर्षित करा दिया। ११९ —जनक उस हाथी के पास पहुँचकर, महावतों को हाथी पर चढ़ाकर, स्वयं घोड़े पर सवार होने की इच्छा व्यक्त करके उस मायावी घोड़े को मँगवाकर, मन में किसी तरह की शंका किये बिना, निडरभाव से उसे उत्तम लक्षण का घोड़ा जानकर, उसकी पीठपर सवार हुआ। १२० —इस तरह घोड़े पर बैठकर जाँघों से दबाकर (उसे) आगे बढ़ाया तो बिजली के समान चमक कर इंद्र के उच्चैःश्रवा (सफ़ेद रंग, खड़े कान, और सात मुखवाला इंद्र का घोड़ा जो समुद्रमंथन में निकला था)-सा आकाश में उछलकर, सूर्य के घोड़े की तरह वायुमार्ग में उड़ा तो

त्रिदशं मेण् खचरं मेण्-* कुदुरेय रूपिंदमरसनं मुन्निन ज-
न्मद पगेवनुय्दनंत- *ल्लदोंडेवियद्गामियप्प कुदुरेगळोळवे ॥१२१॥

ऎंदु सकळ परिजनं विकळमागियुं नैमित्तिकनिंदरसन बरव-
नरिदुम्मळमनुळिदिर्पुदुमित्तल्—

ऒडेयॊडेय बेट्टनॆडेयॆडे
यडवियनॆडेयॊडेय नाडनॆडेयॆडेयूरं
मिडिदनितु बेगदिं कळि-
दोंडरिसिदुदु नृपतिगाहयं विस्मयमं ॥१२२॥

त्वरितदिनेय्देवंदु पुरमं रथनूपुरचक्रवाळमं
पुर वन वीधियोळ् नडेये वाजिविळंबितदिं धराधिपं
धरणिगे पाय्दु कय्य करवाळ्ळिमाळे सरोजकोशदोळ्
मोरेयदे नीळ्दवोलिरे वसंतननेळिसिदं वनांतदोळ् ॥१२३॥

इडिदडरे काय्त मामर
दडियोळ् विश्रमिसि पथ परिम्लानतेयं
किडिसि नरेंद्रं तन्नोळ्
नुडिदं संस्सृतिय कर्म विषम स्थितियं ॥१२४॥

अमृत विषमक्कुं व- * क्रमादोंडाविषमुममृतमक्कुं विधिव-
क्रमनुळिदोंडते हयमे- * न्नुमनिल्लिगे तंदुदिन्नवघटितमोळवे ॥१२५॥

लगा कि कोई देवता या खेचर, घोड़े के रूप में आकर राजा को, पूर्वजन्म की शत्रुता के कारण, ले उड़ा है। अन्यथा घोड़े आकाश मार्ग पर उड़ते थोड़े ही हैं? । १२१ —ऐसा कहकर, समस्त परिवार दुखी हुआ। (लेकिन) ज्योतिषियों से राजा का भविष्य जानकर चिंता को त्याग दिया। उधर, आस-पास के टीलों, जंगलों, गाँवों, नगरों को पारकर उड़ते हुए उस घोड़े ने जनक को आश्चर्यचकित कर दिया। १२२ —घोड़ा बड़े तेज (वेग, तीव्रता) में आकर रथनूपुर चक्रवालपुर पहुँचने के पश्चात् धीमीगति से चलने लगा तो जनक तुरंत उसकी पीठ से नीचे कूद कर नगर के उद्यान में फली वसन्त की शोभा को बढ़ाने लगा। १२३ —वहाँ पके फलों से युक्त आम्रवृक्ष के नीचे लेटकर विश्राम करके प्रवास की थकावट मिटाकर, अचानक अपने पर आई हुई विषम परिस्थिति के बारे में सोचने लगा। १२४ —क़िस्मत विपरीत होने पर अमृत विष में और विष अमृत में परिणत हो जाता है। इस घोड़े द्वारा मुझे यहाँ ले आना विधिलीला नहीं तो और क्या है? । १२५ —मायावी घोड़ा जब मुझे

आनेलर्दि मायाहय-* मीनेलदत्तेन्ननेळेदु तर्पुदुमाक-
ट्टानेयुमाकुदुरेयुमा-* सेनेयुमेनेनगे माडलार्तुवे हितमं ।।१२६।।
समनिसिदनिष्ट संयो-
गमनिष्टवियोगमं चतुर्गतिगळोळं
भ्रमियिसि कैकोळ्गुं ता-
नें मिक्कवर् नेरेंदु तनगे नेरवादपरे ।।१२७।।
उदयिसिद शुभाशुभ क-*मर्द फलमं सदृशमागे काण्बुदु समचि-
त्तदोळिर्पुदु तक्कुदु त-*क्कुदल्तु तक्कंगे तगद हर्ष विषादं ।।१२८।।
अँदु उदात्तचित्तिनल्लि दळर्दु वनविळासमं नोडि मेच्चुत्तुं नडेये मुंदे माकंद नंदनद बळिसिनोळमशोकवनद पुदिविनोळं नागचंपक वनद सुत्तिनोळमति रमणीयमागि—
पदेपं कण्गे मनक्के संतसमनित्तं मण्दुदे माण्दुदि
ल्लदु बेरोंदमराचलेंद्रमेनें नानारत्न कूटांशु जा-
लदिनाशावधुगित्तु चित्रपटमं चैत्यालयं मत्तमि-
त्तुदु सप्ताश्वन सप्तसप्तिगे समग्र प्रग्रहाशंकेयं ।।१२९।।
इरुळ् कुमुदनेत्रदिं कमळनेत्रदिंदं पगल्
निरीक्षिसुवपेक्षेयिं वसुधे तज्जिनावासमं-

इस खेचर भूमि में ले आया तब क्या मेरे हाथी, सेनावृन्द इसे रोकने में समर्थ हो सके? । १२६ —मनुष्य को चाहिए कि आये हुए अनिष्टयोग को, अपने प्रयत्न से, इष्टयोग में परिणत करा ले; दूसरों की सहायता की प्रतीक्षा (आशा) नहीं करनी चाहिए । १२७ —शुभ-अशुभ के क्षणों में जीव (मनुष्य) को उन्हें समान रूप से अनुभवकर, समचित्त दशा में रहकर, सुख में संतुष्ट (विभोर) न होकर, दुःख में दुःखी न बनकर, जीना चाहिए । १२८ —मन में ऐसा सोचकर (निर्णय करके) आगे बढ़ते हुए वहाँ की वनश्री का अवलोकन कर, संतुष्ट हो, आगे आमके पेड़ों से आवृत्त अशोक-वन के आवरण से युक्त, नागचंपक-वन के बीच सुशोभित, चैत्यालय, जो आँखों को आनंद और मन को हर्ष प्रदान कर रहा था, और जो एक (दूसरे) देवगिरि के समान विभिन्न रत्नों के लिए आश्रय-स्थान जो वन, दिग्वनिता को चित्रपट प्रदान करनेवाले सूर्यदेव के सप्ताश्वों को कारा-गृह के समान था, दिखाई पड़ा । १२९ —उस जिनावास को देखने की इच्छा से अनेक मुखवाली धरती मानों चारों ओर सरोवर-समूह का रूप धारणकर रात को कुमुद-पुष्पों की आँखों से, दिन में कमल की आँखों से देख रही थी। ऐसे मनोहर दृश्य को जनक ने देखा । १३०

दरस्मित मुखंगळं पलवनप्पुकेंय्दिर्पवोल्
सरस्समिति सुत्ति पोम्मगिल सुत्तलुं रंजिकुं ।।१३०।।

अंततिशयमप्प जिनभवनमं कंडु बलगोंडु—

अळि माळा मिळित प्रसून सुरभि द्रव्यंगळिंदर्चना
फळ शाल्यक्षत धूप दीप चरु संदोहंळिं सर्वमं
गळ संपूर्णमेंनिप्प जैनगृहमं पोक्कं जिनस्तोत्र चा
पळ जिह्वाग्रसमग्र नाटक नटं साहित्य विद्याधरं ।।१३१।।

इदु परमजिनसमय कुमुदिनी शरच्चंद्र बालचंद्र मुनींद्र चरणनखकिरण चंद्रिकाचकोर भारती कर्णपूर श्रीमदभिनवपंप विरचितमप्प रामचंद्रचरितपुराणदोळ जनकजिनभवनदर्शन वर्णनं—

।। चतुर्थाश्वासं समाप्तम् ।।

—ऐसे जिनावास को देखकर, उसकी प्रदक्षिणा लेकर, विविध सुगंधों को बिखेरनेवाले फूलों से कस्तूरी आदि सुगंधित दृश्यों से, विभिन्न फलों से, धूप-दीप-नैवेद्य से समस्त मंगलों से परिपूर्ण जिनगृह में प्रविष्ट हो, जनक की जीभ, जिनकी स्तुति करने के चापल्य के वश में होने से न बच सकी । १३१

—कवि अभिनव पम्प, जो परम—जिन-समय और कमलों के लिए शरत्काल के चाँद के समान माने जानेवाले बालचंद्रमुनींद्र के पदनखों के चंद्र प्रकाश से पवित्र एवं जो सरस्वती के कर्णभूषण के समान है, के 'रामचंद्र चरित पुराण' का यह 'जनकजिनभवनदर्शन' नामक चतुर्थाश्वास है ।

।। चतुर्थाश्वास समाप्त ।।

पंचमाश्वासं

श्री जिन गृहमं त्रिभुवन *पूजितमं पद्मराग मणितोरण वि-
भ्राजितमं पोक्कं जन- * ता जंगम कल्पवृक्षनभिनवपंपं ।। १ ।।

अंतु पोक्कु पद पयोरूह मरीचियिं मध्यरंगमनळंकरिसि मुकुळित करांबुजं त्रिभुवन प्रभुगभिमुखनागि—

आश्वास—५

जनता-जंगम-कल्पवृक्ष माना जानेवाला अभिनवपंप (जनक) ने अनेक पद्मपरागमणि तोरणों से सुसज्जित त्रिभुवन पूजित श्रीजिनगृह में

केवल बोधदिंदरिदु पात्रमपात्रमिदेंब भेदमं ।
देवरदेव संचकरमक्षय मोक्षसुखक्कॆनल विने-
यावळिगित्तुदात्त दिविजेंद्र नरेंन्द्र फणींद्र राज्य ल-
क्ष्मीविभवंगळं.तळॆदे नीं जसमं जगदॊळ् जिनेश्वरा ।। २ ।।

इत्तपॆ नीनॆ देहिगनुरूपमॆनल् सुख लेशमादिया-
गत्तलनंत सौख्यमवसानमॆनल् पॆररारूमीवरि-
ल्लित्तपरन्यरॆंदु बहिरंग निमित्तदिनॆंबरॆन्गॆ दे-
वोत्तम नीनॆ चागिवॆसरं पडॆदै जगदॊळ् जिनेश्वरा ।। ३ ।।

पगॆकॆळॆयॆंब भेददरितं तमगिल्लदॆ तम्म नंटरं ।
पगॆवरॆ गॆत्तु कॊंदु कलियप्पवरक्कॆम घाति कर्ममं ।।
पगॆवडॆयं पडल्वडिसि कीरि कृतांतननिक्कि वीरल-
क्ष्मिगॆ नॆलॆयाद मॆय्गलियॆ नीनॆ वलं जगदॊळ् जिनेश्वरा ।।४।।

ननॆगणॆयिं जगत्रयमनंडलॆदंगभवंगॆ भंगमं ।
जनियिसिदै चराचररूमं तवॆ नुंगिद काल दंदशू-
कन रदमं कळिल्चि कळॆदै कडु बल्लिदनप्प मोहम
ल्लन बलगय्यनय्य मुरिदै कलि नीनॆ वलं जिनेश्वरा ।। ५ ।।

प्रवेश किया । १ प्रविष्ट हो, जिनगृह के बीच के पद्मासन को सुशोभित कर जुड़े हुए हाथों से त्रैलोक के प्रभु जिनेश्वर के सम्मुख बैठकर, जिनेश्वर! केवल ज्ञान से पात्र-अपात्र का भेद जानकर पूजने वाले भक्तों को अक्षय-मोक्ष सुख प्रदानकर तुमने देवेन्द्र, राजेन्द्र, फणींद्रों का राज्यलक्ष्मी वैभव और यश प्राप्त किया है । २ जिनेश्वर, देही को अनुरूप सुख आदि प्रदान कर उनके (सुख आदि के) समाप्त होने पर अवसान को नियुक्त करनेवाले तुम ही हो; तुम्हारी तरह दाता (दानी) इस संसार में और कौन है ? जगत में तुम ही त्यागी नाम से प्रसिद्ध हुए हो । ३ हे जिनेश्वर ! शत्रु-मित्र का भेद किये बिना, अन्यायियों को, संबंधी होने पर भी, मारकर शत्रुसेना को पराजित कर, कृतांत से बढ़कर वीरलक्ष्मी के लिए आश्रय-दाता वीर तुम्हारे अलावा इस संसार में और कौन है ? । ४ जिनेश्वर, अपने पुष्पबाणों से तीन लोकों को वश में किये हुए मन्मथ को भी पराजित कर तुमने चराचर के प्राणी-जीवियों को अपने पौरुष (बाहुबल) से संत्रस्त करने वाले उसके विष दाँतों को निकालकर, संसार को मोहित करने वाले उसके दाहिने हाथ को ही तोड़ देने वाले तुम सचमुच वीर हो । ५ स्त्रियों के उत्तम स्तनोंसे स्पर्श और उनके भार से मोह परवश होने वाले असंख्य हैं।

यस्तो जल्दि हुकूम् गरी अरु दिशा बानर् पठाया अवर् ।
दक्षिण् तीर त खुप् बड़ा बिरहरू छानी पठाया जबर् ॥
अङ्गद्लाइ र जाम्बवान् र हनुमान् वीर् नल् सुषेण् फेर् शरभ् ।
मैंद द्वीविद आठ् पठाइ प्रभुका पास्मारह्याएक्फगत्॥१०३॥

हूकूम् पाइ इ आठ वीर्हरु पनी झट् जान लाग्या जसै ।
हात्मा औंठि लियेर एक् हुकुम भो राम्चन्द्रजी को तसै ॥
जाऊ काम् पनि साधि आउ हनुमान् ली जाउ औंठी पनि ।
मेरो नाम् यहि औंठिमा छर दियाँ सीताजि चिन्लिन् भनी॥४॥

यो काम् सिद्ध गराउन्या त तिमिछौ तिम्रो छ यो बल् भनी ।
चीन्याको छु तबै त भन्छु म शुभै हून्याछ रस्ता पनि ॥
येती श्रीरघुनाथको पनि हुकूम् पाया र औंठी लिया ।
खूशी भै हनुमानले प्रभुजिमा सम्पूर्ण तन्मन् दिया॥१०५।

अंगद् वीर् हनुमान्हरू हुकुमले दक्षिण् दिशामा गया ।
सर्वत्रै पृथिवी ढुँडी ढुंडि सबै घुम्दै ति जाँदा भया ॥
एक् दिन् विन्ध्य गिरीविषे वनमहाँ देख्या र राक्षस् जसै ।
रावण् हो कि भनी मुठी कसि कसी माऱ्या कसैले तसै॥१०६॥

दिशाओं की ओर वानरों को भेज दिया, किन्तु दक्षिण दिशा की ओर महाबली और चुने हुए अत्यन्त पराक्रमी वानरों को भेजा। अंगद, जाम्बवन्त, हनुमान, नल, सुषेण, शरभ, मैन्द और द्विविद नामक आठों वानरों को भेजकर केवल सुग्रीव अकेला ही प्रभु के पास रहा। १०३ सुग्रीव की आज्ञा लेकर जैसे ही ये आठों वीर जाने लगे, श्रीरामचन्द्रजी हाथ में एक अँगूठी लेकर कहने लगे— जाओ, काम में सफल होकर आओ। हनुमान ! यह अँगूठी लो। इसमें मेरा नाम अंकित है, इसे सीताजी सहज ही पहचान लेंगी इसीलिए दे रहा हूँ। १०४ यह मैं भली प्रकार जानता हूँ कि इस कार्य में सफलता प्राप्त करनेवाले तुम ही हो, क्योंकि तुममें वह शक्ति निहित है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि मार्ग में भी सब प्रकार से शुभ ही होगा। श्रीरघुनाथ की यह आज्ञा पाकर हनुमान ने प्रसन्न होकर प्रभु से वह अँगूठी ले ली और सम्पूर्ण तन-मन से स्वयं को प्रभु की सेवा में अर्पित कर दिया। १०५ अंगद और वीर हनुमान प्रभु की आज्ञानुसार दक्षिण दिशा की ओर चले गए। पृथ्वी पर चारों ओर ढूँढ़ते हुए जा रहे थे, तभी एक दिन विन्ध्यपर्वत के बीचोबीच वन में एक राक्षस को देखा और उसे रावण समझकर सब ने उस पर मुष्टिका (घूँसे) से प्रहार किया। १०६ परन्तु वह रावण नहीं था यह जानकर

रावण् होइन यो त जाउँ भनी फेर् अर्का वनैमा गई ।
ढुँढ्थ्या प्यास बढचो र जल् पनिढुँडी हिंड्थ्या ति आकुल् भई ॥
गूफा देखि त प्वाँख् चिसा गरिगरी हाँस् निस्किँदादेखि तेस् ।
गूफा भित्र पस्या सबै विरहरू देख्या बहुत् बस्ति बेस्॥७॥
ठण्डा जल् सितका तलाउ पनि धेर् सब् बृक्ष फल्फूल् भरी ।
धेर् छन् घर् घरमा छ चीज् पनि अनेक हीरा जवाहर् धरी ॥
गुल्जार् देख्नु भन्या मनुष्यहरु ता एक् देख्नु नाहीं कहीं ।
एक् योगीनि स्वयंप्रभाकन जहाँ ध्यान् गर्दि देख्यातहीं॥८॥
सोधिन् योगिनिले प्रणाम् तब गऱ्या कुन् काम आयौ यहाँ ।
क्या मन्सुब् छ बताउ फेर् अब उपर् जानू छ इच्छा जहाँ ॥
यस्ता योगिनिका वचन् सुनि तहाँ बोल्या हनूमानले ।
आयौं आज यहाँ सबै यति जना केवल् जलै खानले ॥९॥
काम् यै हो यहि काम गर्नुछ भनी विस्तार् सुनाया जसै ।
साह्रै खुश् हनुमानका वचनले हूँदी भइन् ती तसै ॥
बोलिन् फल्फुल खाउ जल् पनि पिई फर्केर आऊ यहाँ ।
मेरो नाम बताइ आज त म ता जान्छू प्रभू छन् जहाँ॥१०॥

अन्य वन में जाकर खोज करने लगे। खोज करते-करते जब वे प्यासे हुए तो अत्यन्त आकुल होकर जल की खोज करने लगे। इतने में अचानक एक गुफा से हंसों को अपने पर भिगो-भिगोकर बाहर निकलते देखा। अतः उसी गुफा में समस्त वीरों सहित प्रवेश किया तो वहाँ एक अत्यन्त उत्तम बस्ती देखी। १०७ उन्होंने देखा कि वहाँ पर शीतल जल वाले तालाब के चारों ओर वृक्ष हैं, जो फल-फूलों से लदे हुए हैं। अनेकों घर भी हैं जिनमें तमाम वस्तुएँ और हीरे-जवाहरात भरे पड़े हैं। परन्तु वहाँ न तो कोई चहल-पहल थी न कोई मनुष्य था; केवल एक योगिनी, जिसका नाम स्वयंप्रभा था, ध्यानमग्न बैठी थी। १०८ योगिनी ने जब उन वानरों से यह प्रश्न किया कि आप लोग किस काम से आए हैं, क्या इच्छा है और अब आगे कहाँ जाना है तब सब वानरों ने योगिनी को प्रणाम किया और योगिनी के ऐसे वचनों को सुनकर हनुमान ने कहा कि इस समय हम सब लोग केवल जल पीने के लिए आए हैं। १०९ जब हनुमान ने अपने आने का कारण तथा कार्य के विषय में सविस्तार कह सुनाया तो योगिनी अत्यन्त हर्षित हुई और उन्हें फलादि खाने को देकर बोली कि खा-पीकर जाओ और मेरा नाम बताकर लौट आओ। मैं भी जहाँ प्रभु हैं वहाँ जाऊँगी। ११० योगिनी के आदेशानुसार वे जलपान करके गए

यस्ता योगिनिका वचन् सुनि गगा जलपान् गरी फेर् पनि ।
आया योगिनिले गरिन् सब कुरा राम्का इ दूत् हुन् भनी ।।
हेमाकी सखि हूँ सखी गइगइन् उन्का वचन्ले यहाँ ।
धेरै वर्ष बसी प्रभू भजि लिंदा ऐले कृतार्थैं-भयाँ ।।१११।।
भन्थिन् राम् अवतार् हुन्याछ हरिको हर्न्याछ रावण् सिता ।
खोज्न्या वानर आउनन् तहिं तलक् याहीं रहू तीमि ता ।।
वानर्को रघुनाथको गरि पुजा यै ब्रह्मलोक् पाउली ।
जान्छू आज म ता तिमी बसिरहू क्यैकाल् पछी आउली।।१२।।
यस्तो अर्ति दिई गइन् सङ्गिनिज्यू जुन् ब्रह्मलोक् हो वहाँ ।
नाच्तैमा शिव खुश्हुँदा अघि दिया यो स्थान बस्ती यहाँ ।।
पुत्री हुन् उ त बिश्वकर्मकि म हूँ गन्धर्व कन्या सबै ।
विस्तार् आज कह्याँ म जान्छु खुशि भै जाहाँ प्रभू छन् अबै।।११३।।
आँखा चिम्ल पुर्‍याइदिन्छु सहजै रस्ता विषे क्षण्महाँ ।
जाऊ तीमिहरू पनी भनि सहज् पौंचाइ रास्तामहाँ ।।
श्रीराम्चन्द्रजिथ्यैं ति योगिनि गइन् वानर् पुग्या रस्तिमा ।
पौंचिन् योगिनि रामको कुटि जहाँ थीयो उसै बस्तिमा ।।१४।।

और लौटकर आ गए। उन्हें राम के दूत जानकर योगिनी ने भी उनसे अच्छी तरह बात-चीत की और बताया कि मैं हेमा की सहेली स्वयंप्रभा हूँ। सहेली तो चली गई पर मैं उसी के बचन के प्रभाव से यहीं बैठी हूँ। यहीं रहकर कितने ही वर्षों से मैं प्रभु को भजते-भजते आज कृतार्थ हुई हूँ। १११ उसका कथन था कि श्रीराम का अवतार होगा, तब उनकी पत्नी सीता का रावण द्वारा हरण होगा, उस समय उन्हें ढूँढ़ता हुआ वानर यहाँ आएगा; तब तक तुम यहीं रहो। उस समय वानर तथा रघुनाथ की पूजा करके ब्रह्मलोक आओगी मैं जाती हूँ। तुम बैठी रहो कुछ समय के बाद आओगी। ११२ ऐसे उपदेश देकर मेरी सहेली उसी समय ब्रह्मलोक को चली गई। वहाँ उसके नृत्य से प्रसन्न होकर शिवजी ने उसे यह बस्ती दी थी। वह विश्वकर्मा की पुत्री है और मैं गन्धर्व-कन्या हूँ। इस प्रकार विस्तृत वर्णन कर स्वयंप्रभा ने प्रसन्नचित्त होकर जहाँ प्रभु हैं वहीं जाने की इच्छा प्रकट की। ११३ (फिर उसने कहा कि) आँखें बन्द करो; मैं सहज ही में तुम्हें रास्ते तक पहुचा दूँगी, यह कहकर उसने उन लोगों को रास्ते पर पहुँचा दिया। वह योगिनी श्रीरामचन्द्र के पास गई। वानर भी रास्ते पर पहुँच गए। राम की कुटी जिस बस्ती में थी योगिनी वहाँ पहुँच गई। ११४ उसने राम की स्तुति की और राम

राम्को स्तुति गरिन् र वर् दिनुभयो जाऊ र बद्रीमहाँ।
मेरो ध्यान् गरि यो बिताउ र शरीर् पाउली परम्धाम् तहाँ॥
जो तिम्रा मनमा छ त्यो सब पुगोस् यस्तो त वर् ली गइन्।
बद्रीमा गइ रामका वचनले संसार तर्दी भइन्॥११५॥
सीता खोज्न भनेर वानरहरू फिर्थ्या सबै वन्महाँ।
सीतालाइ नपाउँदै बितिगयो धेर्काल एकदिन् तहाँ॥
अंगद्ले अति शोक् गर्‍या अब सहज् मार्छन्, सबैको गयो—
प्यारो प्राण गरौं कसो अब मर्‍यौं बाँच्नू यहीं तक् भयो॥१६॥
सुग्रीव्ले त मलाइ मार्नु छ सहज् पाया निहूँ यो पनि।
मार्छन् निश्चय शत्रु जानि अहिले यो शत्रुको बीज् भनी॥
केवल् राम-कृपा हुँदा अघि बच्याँ ऐले त राम्ले पनि।
दिन्छन् निश्चय मार्नलाइ मतलब् खोजेन सीता भनी॥१७॥
अंगद्का इ वचन् सुनीकन तहाँ क्वै बिन्ति यो पार्दछन्।
हे साहेब ! यहीं बसौं यहिं बस्या कुन् पाठले मार्दछन्॥
अंगद्का अरु वानरादिहरुका सून्या र कूरा तहाँ।
बोल्या श्रीहनुमानले किन बहुत् छोटो गर्‍यौ बात् यहाँ॥१८॥

ने (प्रसन्न होकर) उसे वर दिया। उसे आज्ञा मिली कि बदरीनारायण धाम में जाकर मेरा ध्यान करो, तभी तुम्हें परमधाम प्राप्त होगा। "जो तुम्हारे मन में है वह सब तुम्हें प्राप्त हो", ऐसा वर प्राप्त कर बदरी-नारायण धाम में जाकर श्रीराम के ध्यान में मग्न हो स्वयंप्रभा संसार से तर गई। ११५ सीता की खोज करते हुए वन में घूमते-घूमते बानरों को बहुत समय बीता, पर सीता नहीं मिली तो एक दिन वहाँ अंगद ने अत्यन्त खेद प्रकट किया। अब तो हम सभी मारे जायेंगे, सबके प्रिय प्राणों की रक्षा किस प्रकार की जाये। अब तो लगता है कि बचने का समय यहीं तक है। ११६ सुग्रीव तो बहाना पाकर मुझे मार ही डालेगा, मुझे शत्रु का बीज समझकर सहज ही में समाप्त कर देगा, यह निश्चय जानो। पहले तो राम की कृपा से बचा था। अब तो राम भी सीता की खोज न करने का कारण बताकर निश्चय ही मुझे मार डालने का प्रोत्साहन देंगे। ११७ अंगद के इन बचनों को सुनकर वहाँ कुछ लोग यह विनय करते हैं, "हे श्रीमन् ! यहीं रह जायें। यहाँ रहने पर किस प्रकार मारेंगे। अंगद एवं अन्य वानरों की ऐसी बातें सुनकर हनुमान कहते हैं कि तुम लोग ऐसी तुच्छ कल्पना क्यों कर रहे हो ? ११८ सुग्रीव के

सुग्रीव्का प्रिय छौ अवश्य भगवान् राम्चन्द्रजीका पनि ।
साँचो भन्छु म बेस् कुरा हजुरमा यस्तो छ कारण् भनी ॥
भूभार् हर्न भनेर राम-अवतार् आदी पुरुष्को भयो ।
कस्को सक् छ सिताजि हर्न नहिँता इच्छा प्रभूकैछयो ॥११९॥

मानिस् को अवतार् भयो प्रभुजिको सेवक् त बानर् भई ।
गर्छौं सेवन भक्तिले प्रभुजिको केवल् हुकूम्मा रही ॥
जान्याछौ पछि धाममा पनि सँगै यो जान मन्ले यहाँ ।
क्या गर्छौं मनमा कुतर्क हरिको रिस्छैन कस्सै महाँ॥१२०॥

यस्ता बात् हनुमानका सुनि बुझ्या अंगद् र खूशी भई ।
बिन्ध्याचल् गिरिका कुनाकुनिसमेत् सम्पूर्ण खोज्दै गई ॥
पौंच्या क्षीरसमुद्रका तिरमहाँ पर्वत् थियो एक् तहाँ ।
तेस्को नाम महेन्द्र हो नजिकमा देखिन्छ सागर् जहाँ॥२१॥

पृथ्वीमा न मिलिन् सितान जलमा जान्याछ बाटो कतै ।
खोजौं जाउँ भन्या सक्यौं पृथिवि सब् पायौंन सीता कसै ॥
फर्की जाउँ भन्या पनी अब सहज् मार्छन् त चाहीं यहीं ।
मर्नू आज निको भनेर तिरमा बंदर् बस्या सब् तहीं॥२२॥

तो तुम प्रिय हो ही, श्रीराम के भी अवश्य प्रिय हो। सत्य कहता हूँ, यह बड़ी उत्तम बात है। श्रीराम ने भूभार-हरण करने के लिए पुरुष के रूप में अवतार लिया है। किसकी शक्ति है जो सीता का हरण करे? यह स्वयं प्रभु की ही इच्छा है। ११९ प्रभुजी ने मनुष्य के रूप में अवतार लिया है और वानर उनके सेवक बने हैं। उनकी आज्ञा का पालन करते हुए हम लोग प्रभु जी की सेवा भक्तिपूर्वक करेंगे। जिससे अन्त में परम-धाम को प्राप्त होंगे, यह भी मन में जान लो। मन में कुतर्क उत्पन्न करके क्या करोगे? हरि का किसी के ऊपर क्रोध नहीं है। १२० हनुमान जी की बातों को सुन और समझकर अंगद प्रसन्न हुए और विन्ध्याचल पर्वत के कोने-कोने में सीताजी की खोज करने लगे। वे क्षीर-सागर के किनारे पहुँचे। वहाँ एक पर्वत था जिसका नाम महेन्द्र था। वहाँ से समुद्र अत्यन्त निकट दिखाई देता था। १२१ पृथ्वी पर सीता जी कहीं भी नहीं मिलीं तो सोचने लगे कि जल में ही जाने का मार्ग ढूँढ़ा जाये, क्योंकि सम्पूर्ण पृथ्वी पर न मिलने से लौट भी जायेंगे तो मारे ही जायेंगे। अतः मरना ही उत्तम है यह समझकर सब वानर किनारे पर बैठ गए। १२२ उस बन का निवासी एक वृद्ध गिद्ध जैसे ही बाहर निकला

सम्पाती अति युद्ध गृद्ध वनमा थीया ति निस्क्या जसै ।
हेऱ्या दृष्टि फिराइ तेस् तिरमहाँ देख्या ति वानर् तसै ॥
बोल्या वाक्य पनी म भर्छु अब पेट् पायाँ अहारा भनी ।
अंगद् वीर्हरुले सुन्या र इ वचन् साह्रै डराया पनि॥१२३॥
लाग्या भन्न सबै ति वानरहरू आयेछ हाम्रो त काल् ।
मर्छौं आज अवश्य मार्छ यसले यो गृद्धको हेर चाल् ॥
क्याबात् भाग्य जटायुको प्रभुजिको प्यारो हुन्या काम् गरी ।
ठाकुर्लाई रिझाइ पार् पनि गया संसार सागर तरी॥१२४॥
व्यर्थै हामि त गृद्धका मुखविषे सब् पर्न आयौं यहाँ ।
येती वानरका वचन् सुनि तसै सम्पाति बोल्या तहाँ ॥
हे वीर् हो नडराउ आज तिमिले प्यारो सुनायौ कुरा ।
मेरै भाइ जटायु हो कहु खबर् तेस्का त सप्पै कुरा॥२५॥
अङ्गद् वीर्हरुलाइ निर्भय दिई येती भन्याथ्या जसै ।
सब् वृत्तान्त बताइ अङ्गदजिले विस्तार् सुनाया तसै ॥
सम्पाती तहिं भन्दछन् मकन लौ लैजाउ सागर् महाँ ।
दिन्छू आज जटायुलाइ जलदान् चाँडो म ऐले तहाँ॥१२६॥
सीताको म बताउँला सब खबर् स्नान् अञ्जलीदान् गरी ।
ई बात् सूनि उचालि झट् लगिदिया सम्पातिले स्नान् गरी ॥

और उसने तट की ओर दृष्टि डाली तो उसे वानर दृष्टि में आए। उन्हें देखते ही वह बोला, मुझे आहार मिला है; अब पेट भर लूँगा। अंगद आदि वीर उसके इन बचनों को सुनकर अत्यन्त भयभीत हुए। १२३ वे सब बोले कि अब तो काल निकट ही आ पहुँचा है। आज तो अवश्य ही मरेंगे। इस गिद्ध की चाल देखो ! यह आज अवश्य ही हम लोगों को खा डालेगा। जटायु भी कैसा भाग्यशाली था जो प्रभु का प्रिय कर्म करके उन्हें संतुष्ट करके संसार-सागर को पार कर गया। १२४ वानर परस्पर कहने लगे कि हम व्यर्थ ही गिद्ध के मुँह के समक्ष आए हैं। वानरों के इन वचनों को सुनकर सम्पाति ने कहा— हे वीरो ! तुम वीर हो, भय न करो। आज तुम लोगों ने बड़ी अच्छी बात सुनाई है, जटायु मेरा ही भाई है। उसके बारे में सविस्तार सब समाचार बताओ। १२५ तब अंगद ने उसे सब वृत्तांत सविस्तार कह सुनाया। उसी समय सम्पाति बोला, मुझे शीघ्र सागर में ले चलो, आज मैं अपने भाई जटायु को जलदान दूँगा। १२६ स्नान एवं अंजलि-दान कर मैं सीताजी के बारे में सब समाचार बताऊँगा। इस बात को सुनकर वानर तुरन्त

दीया अञ्जलिदान् जसै फिरि उहीं ल्यायेर राखीदिया ।
सम्पाती खुशि भै सबै कहिदिया आपत्तिदेख्तै थिया ।।१२७।।
हे वीर् हो ! म त गृद्ध हूँ र म सिता देख्छू नजर्ले पनि ।
याहीं छन् यहि भेष् छ यति सँग छन् यस्तो छ चाला भनी ।।
भन्छू सब् तिमिलाइ चार सय कोश् जो कुद्न सक्छौ यहाँ ।
सो लङ्का पनि पुग्दछौ उति कुद्या पौंचिन्छ लङ्कामहाँ।।१२८।।
लङ्कामा ति सिताजि छन् तहिं गया मिल्छिन् सिताजी वहाँ ।
गाह्रो चार् सय कोश कद्न छ तहीं जाऊ न जाऊ तहाँ ।।
रावण्ले लगि भित्र गुप्ति वनमा राख्याकि छन् बेश् गरी ।
पौंची भेट् गर जान सक्छ तिमिमा को यो सनुद्रै तरी।।१२९।।
अश्शोक्को वनभित्र वृक्ष छ असल एक् शिंशपाको तहीं ।
सीता छन् तहिं भेट् हुन्याछतहिंलौ जायो गऊ काल् यहीं ।।
क्यारूँ रावणलाइ मार्न म सहज् मार्न्या थियाँ हो र को ।
साक्षात् सूर्यजिका कठोर् किरणले प्वांखै डढ्यासब् र पो।।१३०।।
जाऊ चार् सय कोश कुद्न सकन्या कुन् वीर् छ सागर् महाँ ।
सीताको समचार् खबर् बुझि सहज् फर्केर आऊ यहाँ ।।

सम्पाति को उठाकर ले गये और जैसे ही वह अंजलि-दान कर चुका, वैसे ही उसकोपुनः वहीं लाकर रख दिया । सम्पाति ने प्रसन्न होकर सब कुछ कह सुनाया । १२७ हे वीरो ! मैं तो गिद्ध हूँ अतः मैं अपनी आंखों से यहीं से सीताजी को देख रहा हूँ कि वह किस स्थान पर हैं, किस रूप में हैं किनके संग में हैं और कैसी युक्ति में (फसी) हैं । मैं तुम्हें सब बतलाता हूँ। यहाँ से जो चार सौ कोस छलांग भर सकेगा, वह लंका पहुँच जायेगा । १२८ सीता जी लंका में ही हैं। वहीं जाने पर मिल जायेंगी। चार सौ कोस कूदना कठिन है। तब भी किसी प्रकार वहाँ अवश्य जाओ। सीताजी को रावण ने ले जाकर लंका के अन्दर एक गुप्त वन में रखा है। समुद्र पार कर तुममें से जो वहाँ जा सकता हो जाये, और भेंट करे। १२९ अशोक वन के अन्दर एक अत्यन्त उत्तम शिंशपा का वृक्ष है। सीता जी वहीं हैं, वहीं भेंट होगी अतः चले जाओ। क्या बतायें समय निकल गया। मैं रावण को सहज ही मार सकता था, परन्तु साक्षात् सूर्य की तीव्र किरणों से (मेरे पंख) जल गये हैं और इस कारण लाचार होना पड़ा। १३० चार सौ कोस कूद सकनेवाला वीर कौन है ? वह चला जाये और सीता का समाचार आदि पता लगाकर लौट आये। यह समाचार बताकर, पुनः

यो सम्चार बताइ फेरु खुशि भई आफ्नू हवाल् सब् कह्या ।
जुन् रीत्ले अघिप्वाँख्डढ्यार विपती पाई अनेक्ताप् सह्या।।३१।।
सम्पाती र जटायु भाइ दुइ हूँ हाम्रो कती बल् भनी ।
बल् जान्नाकन दूइ भाइ उडि गैं श्रीसूर्यबिम्बै मनि ।।
पुग्दामा ति जटायुले त अति ताप् मान्या र छोप्याँ जसै ।
बाँच्या भाइ जटायु क्याहुँ म गिर्‍याँ मेरा डढ्या प्वाँख् तसै।।३२।।
उच्चादेखि गिर्‍याँ म विन्ध्यगिरिमा तीन् दिन् त मूर्छा भयाँ ।
ब्यूत्याँथ्याँ जब चन्द्रमा मुनि मिल्या तिन्का नजीक्मा गयाँ ।।
सोध्या ती ऋषिले र सब् जब भन्याँ आफ्ना विपत्का गति ।
मेरो चित्त बुझाउनाकन भन्या सब् दुःख हुन्छन् जति।।३३।।
यस्तो हुन्छ विपत्ति गर्भ रहँदा यो हुन्छ यौवन्महाँ ।
यस्तो हुन्छ बुढो हुँदा त भनुँ क्या थाहै छ सब् मन्महाँ ।।
जाहाँ देह बन्यो र दुःख छ भनी पर्दैन भन्नू पनि ।
जाहाँ देह छ ताहिं दुःख छ चिन्ह्या साँचो कुरा हो भनी ।।३४।।
तस्मात् दुःख नमान देह छ त रोग् दुःखादि सारा सही ।
श्रीराम्को अवतार् हुन्या बखततक् यस्सै जगामा रही ।।

प्रसन्न होते हुए अपना भी सब हाल बताया कि किस प्रकार उसके पंख जल गये और उसने विपत्ति में पड़कर अनेकों कष्ट सहे। ३१ सम्पाति और जटायु हम दो भाई हैं। हममें कितना बल है यह जानने के लिए हम दोनों भाई सूर्यमण्डल के समीप पहुँचे थे। वहाँ पहुँचने पर जटायु को जैसे ही अत्यन्त ताप का अनुभव हुआ उसने उड़ना छोड़ दिया। जटायु तो बच गया परन्तु मैं (उड़ता ही गया।) क्या करूँ मेरे पंख जल गये और मैं गिर गया। ३२ मैं इतने ऊँचे से बिन्ध्यगिरि में गिरा कि तीन दिन तक मूर्छित पड़ा रहा। जैसे ही मुझे चेतना आयी मुझे चन्द्रमा मुनि मिले और मैं उनके निकट गया। उन ऋषि के पूछने पर मैंने अपनी सारी विपत्ति कह सुनाई। मेरे चित्त को सान्त्वना देने के लिए उन्होंने सभी दुखों के विषय में बताया। ३३ (उन्होंने कहा) गर्व करने से ऐसी ही विपत्ति प्राप्त होती है और यौवन के बाद वृद्ध होने पर तो कैसा दुख होता है क्या कहूँ; सब मन में ज्ञात ही है। जहाँ देह का सृजन हुआ वहाँ दुःख की प्राप्ति होती ही है; जहाँ देह है वहीं दुःख है, इसे ही सत्य जानो। ३४ इसीलिए दुःख न मानो, देह है तो रोग है और दुःख भी है। श्रीराम के अवतार होने के समय तक तुम इसी स्थान पर रहो और कुछ काल व्यतीत करो। राम का अवतार होगा

च़लन गव त्यूत वावस वथ सपुन्य तंग।
वनन आकाश सा॑पुन सोसुनुक रंग॥
तिथुय तुल शोर वनु॑क्यव जानुवारव।
सं॑मिथ तिम आयि सा॑री पान मारव॥ १०९॥

जटायन् सुन्द यो॑द तु सुतायि हुन्द का॑द

ख़बर बूज़िथ जटायन गव ख़बरदार।
क़फ़स फुटरुन तु लारन गव ब यकबार॥
पुनिम च़्रन्दरस वुछुन यॆ॑लि ह्यथ च़लन कीत।
दो॑पुन तस ओय म्रत पापुक गो॑वुय हीत॥
दिच़ुन तस क्रख वो॑थुय युथ क्याह अन्दुकार।
कवो॑ बापत गरस पनुनिस दितुथ नार॥
कं॑रुथ आवारु कवु बा॑पत पं॑री ज़ात।
रुमाह कर सबुर लबुनावथ मुकाफ़ात॥
परुकि दकु सुत्य छुस आ॑काशि त्रावन।
ज़॑मीनस प्यठ अं॑डिजि छुस फुटुरावन॥ ५॥

उस रावण की मति पर जब काली घटा छा गई तो उसकी आँखें अन्धी हो गईं जिससे उसने उस (सीता) को केशों से पकड़कर उठा लिया और आकाश में उड़ा ले गया। वह इस तेज़ी से भागा कि वायु का मार्ग तंग हो गया तथा कहते हैं कि आकाश का रंग पीला पड़ गया। वन के पक्षी कोलाहल करने लगे और वे सभी अपनी जान देने को इकट्ठे हो गए। १०९

जटायु से युद्ध और सीता का क़ैद होना

(सीताहरण की) ख़बर सुनकर जटायु ख़बरदार हो गया तथा एकदम अपनी जगह छोड़कर दौड़ता हुआ बाहर आ गया। जब उसने पूनम के चन्द्र (सीता) को केतु द्वारा (ग्रसित) भगाया हुआ देखा तो वह (रावण से) कहने लगा—तेरी मौत आगई है जो तू यह पाप करने पर उतारू हो गया है। उसने ज़ोर से आवाज़ देकर कहा—यह तुझे किस अन्धकार ने घेर लिया है जो अपने घर को स्वयं अपने हाथों से (इस कुकृत्य द्वारा) भस्म कर रहा है, किस लिए तू इस परी समान (सुन्दरी) को दुखी कर रहा है। क्षण भर के लिए रुक जा ताकि मैं तुझे इसका अंजाम बतलाऊँ। (तब ज़टायु ने) उसे पर के धक्के से ऊपर आकाश में उछाला

कंमी केंह् कंर नु तंम्य तति ज़ोर हाविन ।
परव सुतिन पथुरि प्यठ वातुनाविन ।।
रटन ओसुस च्रटन ओसुस पंजन तल ।
च्रटन छुस कलु तामथ छुस करन छ्ल ।।
सपानन बेंयि तंमिस सोबूथ्य सारी ।
अंकिस कलस सुतिन तस प्रान लारी ।।
स्यठाह् रावुन करान ओस ज़ोर तं बल ।
कलन दह्न नर्यन वूह्न कुनुय छ्ल ।।
तुजिन तंम्य रावुनन शमशेर लायिस ।
च्रंटिनस पर च्रूरि पाठिन ज़ोरु लायिस ।। १० ।।

पथर प्यव पर च्रंटिथ गव छुसनु छोरन ।
वन्यस क्याह् रावुनस छुनु चोंट फोरन ।।
दोंपुस सुतायि कर वोंन्य ज़िन्दु छोरी ।
च्रें च्रंटिथस पर तम्युक पादाश होरी ।।
वोंनुन सुतायि वुन्य येंत्य बु मारथ ।
नत हावुम अंमिस निशि मोंकलनुच वथ ।।
अंनिन सख़्ती तंमिस सुतायि वोंन हाल ।
अंमिस जानावरस किथु पाठ्य छुस काल ।।

और ज़मीन पर गिराकर उसकी हड्डियों को तोड़ डाला। ५ अपनी ओर से उसने कोई कमी न रखी और ख़ूब ज़ोर दिखाए। परों के धक्कों से वह उस (रावण) को नीचे पृथ्वी पर ले आया। वह उसे पकड़कर पंजों से नोचने लगा और छल-बल से उसके सिर काटने लगा। मगर उसके सिर वापस साबूत बन जाते। बस, एक ही (विशिष्ट) सिर के साथ उसके प्राण बंधे थे। रावण ख़ूब ज़ोर और बल दिखाने लगा तथा दस सिरों व बीस बाहों से मिलकर छल (कौशल) दिखाने लगा। तब रावण ने शमशीर उठाकर उस पर ज़ोर से दे मारी और चुपके से उसके पर काट डाले। १० पर कटते ही वह (जटायु) नीचे गिर पड़ा, मगर फिर भी रावण को नहीं छोड़ा। रावण भला क्या कहता, उसका मुँह ही बंद हो गया। सीता ने कहा—अब यह तुझे ज़िन्दा कहाँ छोड़ेगा। तूने इसके पर काटे, अब वह इसका प्रतिशोध लेगा। तब रावण ने सीता से कहा—मैं तुझे अभी यहीं पर मार डालूँगा, अन्यथा इससे मुक्त होने का कोई मार्ग बता। सीता पर (उस रावण ने) बहुत सख़्ती की जिससे

दोंपुस तमि रथ मंथिथ दिस पल च़ु दारिथ ।
यि छुनि न्यंगुलिथ तु ज़ानि नु पतु लारिथ ।। १५ ।।

पतव येंलि रामुच़न्दुरस बावि अहवाल ।
वंनिथ वोंबरावि अदह बुथ हाविनस काल ।।
यि योंत ताम रामुसुन्द दर्शुन करी न ।
वन्यस योंत ताम शेंछ तोंत तां मरी न ।।
दितिस तंम्य रथ मंथिथ पल खेंन्य गोंबिथ प्यव ।
लंबुन वथ रावुनन सुताथि ह्यथ गव ।।
नियन आकाश्य वोंठ लंकायि प्यठ वोत ।
दज़ुवुन नारुहोंट ह्यथ गरु पनुन वोत ।।
नियन दर शहरि लंका वातुनावुन ।
खंटिथ च़ांनिन रंटिथ दर बाग़ थावुन ।। २० ।।

अशक वन बाग़ ओसुस तंत्य सों थावुन ।
अंनिन मन्दूदरी दोंद दामु चावुन ।।
दितुन फ़रयाद तोंलि येंलि सख़तु त्युथ आस ।
लबन काशस तु आकाशस बुन्युल आस ।।

सीता ने वह सारा हाल (तरीक़ा) बताया जिससे उस पक्षी का काल आ सकता था । वह बोली—रक्त से सने हुए बड़े-बड़े पत्थरों को इसके ऊपर फेंक दो । उन्हें यह निगल जायेगा और इस तरह तुम्हारे पीछे नहीं उड़ेगा । १५ फिर जब रामचन्द्रजी से यह सारा अहवाल (वृत्तान्त) बयान करेगा तब ही काल उसे अपना मुँह दिखाएगा । जब तक यह रामचन्द्रजी के दर्शन कर उसे (मेरी) सारी ख़ैर-ख़बर नहीं सुनायेगा तब तक यह (कभी) मरेगा नहीं । रावण ने उसे रक्त से सने बड़े-बड़े पत्थर खाने को दिए (जिन्हें खाकर) वह भारी होकर गिर पड़ा । तब रावण को भागने का मार्ग सूझा और सीता को लेकर उड़ गया । उसने आकाश में छलाँग लगाई और लंका में पहुँच गया तथा उस जलते हुए (प्रदीप्त होते हुए) अग्निपुंज (सीता) को अपने घर ले आया । लंका शहर में पहुँचकर उसने उसे छिपाकर अपने बाग़ में रख दिया ।२० वह अशोकवन का बाग़ अत्यन्त सुन्दर था, उसी में उसे रख दिया तथा मन्दोदरी को बुलवाकर उसे दूध पिलवाया । जब उसपर सख़्ती की गई तो उसने फ़रियाद की, जिससे दीवारों में दरारें पड़ गईं और आकाश में भूचाल आ गया। वह रोने लगी कि जाने (मेरी कुण्डली में) सूर्य-ग्रह इस समय किस घर में चला गया है । मेरे

वदान आ॑स सिरियि गोच्रर कथ गरस गोम ।
क॑रिथ ज़ीवस तु ज़न्मस व॑करि छुम बोम ।।
शनशचर मीशि अ॒ठिमि जायि तस ब्यूठ ।
ग॑छ़िथ परदीश तमि क्रेछर स्यठाह ड्यूठ ।।
त॑मिस स॒तायि य॑लि व॑ॉलका दशा यस ।
सपुन्य आवार॒ चार॒ नु लान्य न्यायस ।। २५ ।।

शोंकुर तस नाल॒ च्रंकरुक खोंवुरि कनि ब्यूठ ।
कोंड॒न संकट त॑मिस द्यन छ़्‌य बरुन क्रूठ ।।
दपन य॑लि राखिसन र॑ट गिल सों ज़ाल॒ह ।
अ॑निन मन्दूदरी क॑रनस हवाल॒ह ।।
दोंपुन तस कुन रछ़िन्य च्रे शन र्‌यतन छ्‌य ।
करुस सीवा च्रे स॒त्य योंत तां गछ़्‌यस लय ।।
वदन मन्दूदरी वॉलिजि शर छुम ।
बेयन श॑तरन वनुन लायक मे कर छुम ।।
तुजिन तमि कोंछि क्यथ ह्यथ ललुनावुन ।
ग॑मुच्र कोंलि य॑लि ल॑बुन लोंलि क्यथ सों सावुन ।। ३० ।।

वुछ़िव तस माजि मा माज़ुक मुशुक आव ।
लबन य॑लि छस बबन दोंद ठींचि तस द्राव ।।

मेरे जीवन व जन्म को (बिगाड़कर) भौम, लगता है, वक्र गति से चल रहा है, तथा मेष राशि का शनिश्चर आठवें घर में बैठा हुआ है जिसने परदेश में लाकर (मुझे) कठोर दुःख दिखाया। उस सीता पर शनि की दशा लगी हुई थी जिससे वह असहाय हो गई—भाग्य के लेख का भला क्या किया जाय। २५ उसके जन्मचक्र में शुक्र वाम दिशा में बैठा हुआ था, जिससे वह संकट में घिर गई तथा दिन बिताने मुश्किल हो गए। कहते हैं, जब उस राक्षस (रावण) ने उस सुन्दरी को जाल में पकड़ लिया तो मन्दोदरी को बुलाकर उसे उसके हवाले कर दिया। उस (रावण) ने (मन्दोदरी से) कहा—इसे छः महीने तक पालना होगा। तब तक इसकी सेवा करती रह जब तक कि यह तेरे साथ हिल-मिल नहीं जाती। मन्दोदरी रोते हुए कहने लगी—(इसे देखकर) मेरे कलेजे को तीर लगा है। उस बात को (कि सीता को मैंने ही नदी में फेंकवाया था) कहने के लायक़ भला अब मैं कैसे रही ! तब उसने उसे गोद में उठाकर झुलाया तथा पानी में फेंकी उस (सीता) को पुनः पाकर अपने अंक में सुलाया। ३०

लंबुन येलि मायि ज़ालह् वलनु आये।
ज़िन्दुह् ज़न गाड़ गयि मन्ज़ तीलु क्राये ।।
तिथय पानस पेयस लोलचि दंतुरे।
लंबुन कोनु श्राख योसु वालिजि कतरे ।।
पेयस ज़न नारु त्रठ वसवास आतश।
लंजिस ज़न शीनु छठ यंच्र तुरु त्रायस ।।
अमार वोनुन नु कुनि किन्य न करुन वार।
जिगरस क्यथ खंटिथ थोवुन बोसुर्य नार ।। ३५ ।।

रोटुन दम क्या सना ज़ोनुन वोटुन आंस।
छोपुह् शमशेरि तमि वादस च्रोटुन आंस ।।
तवय वालिजि तमि कंर नीलवठ कंन्य।
अवय कुनि किन्य गछ्यम मा सीरु कथ नंन्य ।।
ख़बर छसना यि कस वनु यंच्र गछ्यम हाछ।
मुच्रुर येलि हांगिन्यव मोख मोखतु गव काछ ।।
खंटिथ थावुनु जिगर छुय चरख़ु फेरन।
फंटिथ अदु लोलु नारुच रेह् छ नेरन ।।

(दैव की करामात देखिए) अपने रक्त (मांस) की गंध पाकर माँ (मन्दोदरी) के स्तनों से दूध की धारा द्रुत गति से फूट पड़ी। उसे पाकर वह (मन्दोदरी) सांसारिक मायाजाल में पड़ गई और उसकी हालत गर्म तेल की कड़ाही में पड़ी एक ज़िन्दा मछली की-सी हो गई। उसके शरीर पर वात्सल्य की सुरसरी दौड़ पड़ी तथा छुरी से अपने कलेजे को चीरने के लिए उद्यत हो उठी। उसके ऊपर जैसे अग्नि की गाज गिरी और जैसे बर्फ़ की हवा लगकर वह काँपने लगी। मन का अरमान (दिल की बात को) उस (मन्दोदरी) ने न किसी से कहा और न किसी से जताया। बस, जिगर में उस सुलगती आग को छिपा कर रखा। ३५ उसने अपने दम (साँस) को पकड़ लिया तथा कुछ सोचकर मुँह बंद कर लिया और चुप्पी रूपी शमशीर से वचन (बात) का मुँह काट डाला। अपने कलेजे को उसने सख़्त पत्थर बनाया ताकि कहीं से उसका वह भेद खुल न जाय (कि सीता को मैंने ही नदी में फेंकवाया था)। इसे (शायद) ख़बर नहीं कि यदि मैं किसी से वह भेद कहूँ तो मुझ पर लांछन लगेगा। जब उस रूपसी (सीता) ने मुँह खोला तो मुक्ताओं की आभा फीकी पड़ गई। (मन्दोदरी सोचने लगी) मैं इसे छिपाकर रखूँगी, मेरा जिगर चरख़े की तरह चक्कर

मुरुनि लंज अथु क्याह सनुह कौंसु सना छम ।
छुन्यायम कौंलि कूराह सय बना छम ।। ४० ।।
वौंदुन डौम्ब ज़्यथ नखस प्यठ छुय खसन बोर ।
मरन यैंलि तौंलि छु गरदनि प्यठु वसन बोर ।।
गछ़ी युस वेरि ज़्यवने कोरि सुत्यन ।
च्रटुन गरदन पनुन्य तंम्य तोरि सुत्यन ।।
कौरुन अहंकार युथ अवतार कंम्य दोर ।
तुलुन तंम्य शेरि प्यठ त्रोव मुत पथर बोर ।।
बुछिनि लंज तस मौंखस कुन परज़ुनावुन ।
रंटुन वालिजि तल दौंद दामु चावुन ।।
वनुनि लंज यि छे सय यसु छम मे ज़ामुत्र ।
वन्याहस रावुनस मारुनि आमुत्र ।। ४५ ।।
लस्यय व्यवाह कंरिथ सांपुनि वनवास ।
बस्यय कुनि तोरु फीरिथ लांकि करि डास ।।
तवय बापथ छुनी तमि तथ ज़लस मंज़ ।
नरायन छुय लदान रूज़ी पलन मंज़ ।।
प्रछुनि लंज तस च्रु कंम्य दौंद दामु चावुख ।
रंछिख कंम्य ज़्यववुवुनुय यैंलि माजि त्रावुख ।।

खा रहा है तथा वात्सल्य की लपटें उससे फूटकर निकल रही हैं। वह हाथ मलने लगी कि यह मेरी वही पुत्री तो नहीं है जिसे मैंने नदी में फेंकवाया था। ४० वह ख़ूब रोई और कहा—सन्तानोत्पत्ति से कन्धों पर उत्तर-दायित्व आ जाता है और मरने के बाद ही वह भार गर्दन से उतर जाता है। जो अपनी ही पुत्री पर कुदृष्टि रखे उसकी गर्दन बसूले से काट दी जाती है। उसने (मेरे पति रावण ने) अंहकार किया और उन्हें (नारायण को) अवतार धारण करना पड़ा तथा पृथ्वी के भार को सिर पर उठना पड़ा। वह (मन्दोदरी) उस (सीता) के मुख को (एकटक) देखने लगी और उसे पहचान गई। उसे कलेजे के साथ लगाकर दूध पिलाया। (वह मन में कहने लगी) यह वही है जो (मेरी कोख से) जन्मी है और अब रावण को मारने के लिए यहाँ आई है। ४५ विवाहो-परान्त इसे वनवास मिला और अब यहाँ रहकर लंका का नाश करेगी। (सम्भवतः) इसीलिए वह इस जाल में फँस गई है। (नारायण की लीला अपरंपार है) वे पत्थरों के नीचे पड़े कीटों तक को रोज़ी पहुँचाते

दोंपुस तमि बो ज़नक राज़न रछीनस ।
ख़बर कें॒ह् छमनु यौंत क्याह् करनि आयस ॥
वंनिख यैंलि सीर सांरी पानुवांनी ।
करुनि लजि हान वुछ वुछ ल्यल तु वांनी ॥ ५० ॥
दपन गव लांकि ख्यय र्‌यय लंजिसु माज़स ।
वोंदुन वाराह् वनुनि लंज दरमु राज़स ॥
दरमु राज़ो च्रु क्याह् ज़ानख यि क्याह् गव ।
पेंयी कुनि दोंह् मा प्यतुरावुन च्र्यतस थव ॥
यि क्याह् अव्यच्रार पानस ज़ेंन्य गंछ्युय कूर ।
नतय सुतायि हिश प्यतुरुन्य गंछ्युय कूर ॥
यि क्याह् गव कलमु छुख तलवार मारन ।
यि त्रावन मील छा किनु ख़ून हारन ॥
यि कमि विज़ि छुख च्रु लूकन लोन लेखन ।
दोंपुस तंम्य क़लम छुय नरकोन लेखन ॥ ५५ ॥
सपुन शीतल यि अख नर बेंयि कोनुय ।
यि कर रुत लेखि लूकन करमु लोनुय ॥

हैं । तब वह (मन्दोदरी) उससे (सीता से) कहने लगी—तुझे किसने दूध पिलाया और जब माँ ने जन्मते ही फेंक दिया तो किसने तेरा लालन-पालन किया ? वह बोली—मुझे राजा जनक ने पाला-पोसा और अब यह ख़बर नहीं कि यहाँ किस लिए आई हूँ । दोनों ने एक दूसरे से अपने रहस्य कहे और वह (मन्दोदरी) अफ़सोस करते हुए अपनी छाती और सिर पीटने लगी । ५० तो क्या यह हमारी लंका का क्षय कर डालेगी और उसके मांस पर जैसे चींटियाँ दौड़ने लगीं । वह ख़ूब रोयी तथा धर्मराज से कहने लगी—हे धर्मराज ! तुम क्या जानो कि यह क्या हो गया है । किसी दिन तुम्हें ख़ुद को निबटाना होगा—यह ध्यान रखना । यह कौन-सी ना-समझी है तेरे विधान की ? काश ! तेरे ख़ुद के कोई पुत्री जन्मी होती या फिर सीता जैसी पुत्री को तुझे पालना पड़ता । तू अपनी भाग्य-लेखनी (क़लम) को तलवार की तरह चलाता है और वह स्याही नहीं बल्कि ख़ून फेंकती है । जाने किस घड़ी तुम लोगों के भाग्य लिखे जाते हों, यह तुम्हारी लेखनी नहीं बल्कि अन्धी नली है । ५५ एक तो यह पोली है और फिर अन्धी । तो भला यह लोगों का अच्छा भाग्य लिख ही कैसे सकती है ? मैं उस (क़लम) के गले पर छुरी फेर दूँगी अन्यथा मेरे भाग्य के सीधे अक्षर लिखकर व्याधियों को दूर कर दे । उसने कितने ही लोगों

दपन छस तस हंटिस प्यठ श्राख आसिन ।
नतय लीखिन अछर सॆद्य व्याद कासिन ।।
करिन तिम डाख लूकन हुंज़ि वांसे ।
यि छा ज़ानन यि बोज़ुन यियिन कांसे ।।
यि छा गंज़रन छु दशरथ राज़ु सोरुय ।
ख़बर छयना छु यथ लेंजि वाज़ु सोरुय ।।
हंटिस प्यठ रामु जुव यॆलि श्राख थाव्यस ।
मुञ्जार्यस चोंट पोंज़ पोंज़ बोलुनाव्यस ।। ६० ।।
अमा अंन्य बाज़ुरस कान्यन छु क्याह राह ।
करिथ लूट मूट गोंय शामन छु क्याह राह ।।
पोंज़ुय वनि गाटुल्यव यिमु कथु पथ कुन ।
व्यञ्चारु वति युस नु पकि तस अथु पथ कुन ।।
क़लम तुल लेख रुत रुत जायि जाये ।
मु अन फिर्य फिर्य पंतिमि प्राने बलाये ।। ६३ ।।

सुतायि हुन्द तलाश

पगाह यॆलि सिरियि खोंत पॆयि ज़ून तस याद ।
अथस क्यथ ह्यथ वोंदुनि वोंथ तेगि फ़वलाद ।।

की आयु को ख़ाक में मिला दिया। वह समझती है (कि उसके द्वारा लिखे गए अक्षरों को) कोई देख नहीं सकता है। वह समझती है कि राजा दशरथ ही सब कुछ हैं मगर उसे ख़बर नहीं कि इस हँडिया (देह) में बावरची (मन) ही सब कुछ है। जब (उसके) गले पर रामचन्द्रजी छुरी रखेंगे तो उसका मुँह खोलकर उससे सच-सच बुलवाएँगे। ६० अन्धे बाज़ार में कानों का क्या दोष ! लूटमार करके (लोगों के भाग्य के साथ अन्याय कर) वह शाम को तेरे पास आती है। बुद्धिमानों ने सचमुच यह बात ठीक ही कही है कि जो विचारशीलता के मार्ग पर नहीं चलता है उसके दोनों हाथ पीछे की ओर हो जाते हैं (वह निष्क्रिय बन जाता है)। इस लिए तू क़लम उठा ओर स्थान-स्थान पर शुभ अक्षर लिख और पुरानी बलाओं की पुनरावृत्ति न कर। ६३

सीता की तलाश

कल जैसे ही सूर्य चढ़ा तो उसे चाँद याद आ गया। वह हाथ में फ़ौलाद की तेग़ (बड़ी तलवार) लेकर खड़ा हो गया।

बिनु बूझे करम कमावणे जनमु पदारथु खोय ।। १ ।। रहाउ ।। जिनी चाखिआ तिनी सादु आइआ बिनु चाखे भरमि भुलाइ । अंम्रितु साचा नामु है कहणा कछू न जाय । पीवत हू परवाणु भइआ पूरै सबदि समाय ।। २ ।। आपे देइ त पाईऐ होरु करणा किछू न जाय । देवण वाले कै हथि दाति है गुरू दुआरै पाय । जेहा कीतोनु तेहा होआ जेहे करम कमाइ ।। ३ ।। जतु सतु संजमु नामु है विणु नावै निरमलु न होय । पूरै भागि नामु मनि वसै सबदि मिलावा होय । नानक सहजे ही रंगि वरतदा हरिगुण पावै सोय ।। ४ ।। १७ ।। ५० ।।

श्रीराग महला ३—गुणसागर परमात्मा को किसी परिधि में नहीं बाँधा जा सकता । जब मनुष्य अपने अंदर से अहंभावना को दूर कर लेता है परमात्मा उसे स्वयं प्राप्त हो जाता है—गुरु की प्राप्ति से जीव सदैव परमात्मा का भय मानता रहता है और इस प्रकार ईश्वर स्वयं उसके हृदय में बस जाता है । ईश्वर का सदैव स्थिर रहनेवाला पवित्र नाम आत्मिक जीवनदायक है । उसका रसास्वादन कर वही स्वाद बता सकते हैं जिन्होंने उसका नाम रूपी अमृत पान किया है, जिसके चखे बिना लोग कुमार्ग पर चलने लगते हैं । गुरू की शरण तो तभी प्राप्त होगी जब उसके उपदेश को हृदय में बसा लिया जावेगा । पवित्र नाम की तो तभी प्राप्ति होती है जब ईश्वर स्वयं प्रदान करे । जिसे परमात्मा चाहता है गुरु के द्वारा प्रदान कर देता है, जिसे जैसा चाहता है, बना देता है, जो कर्म चाहे करवाता है । मनुष्य अपने जीवन को पवित्र करने के लिए जप-तप-संयम आदि साधनों का उपयोग करता है परन्तु पवित्र नाम-स्मरण के बिना ये सब व्यर्थ हैं । उसका पवित्र नाम ही सब कुछ है जिसके बिना कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता । परमात्मा का नाम प्राप्त कर ही उससे मिलाप किया जा सकता है और उसके गुण प्राप्त किए जा सकते हैं ।

सिरीरागु महला ३

कांइआ साधै उरध तपु करै विचहु हउमै न जाय । अधिआतम करम जे करे नामु न कबही पाइ । गुर कै सबदि जीवतु मरै हरिनामु वसै मनि आइ ।। १ ।। सुणि मन मेरे भजु सतगुर सरणा । गुरपरसादी छुटीऐ बिखु भवजलु सबदि गुर तरणा ।। १ ।। रहाउ ।। त्रै गुण सभा धातु है दूजा भाउ विकारु । पंडितु पड़ै बंधन मोह बाधा नह बूझै बिखिआ

पिआरि। सतगुरि मिलिऐ त्रिकुटी छूटै चउथै पदि मुकति दुआरु ।। २ ।। गुर ते मारगु पाईऐ चूकै मोहु गुबारु ।। सबदि मरै ता उधरै पाए मोखदुआरु। गुरपरसादी मिलि रहै सचु नामु करतारु ।। ३ ।। इहु मनूआ अति सबल है छडे न कितै उपाय। दूजै भाय दुखु लाइदा बहुती देइ सजाइ। नानक नामि लगे से उबरे हउमै सबदि गवाइ ।। ४ ।। १८ ।। ५१ ।।

श्रीराग महला ३—अन्दरूनी अंहकार दूर करने के लिए मानव अनेकानेक प्रयत्न करता है परन्तु ज्ञान-इन्द्रियाँ वश में नहीं होतीं। इन प्रयत्नों से न तो आत्मिक उन्नति होती है और न परमात्मा की प्राप्ति। गुरोपदेश को मनसा-वाचा-कर्मणा हृदय में बसानेवाला ही भवसागर को पार कर मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। माया-मोह में लिप्त मनुष्य विकारों को सहेजता है, जीवन के वास्तविक मार्ग को भूल, भटकता रहता है। केवल सच्चे गुरु की प्राप्ति ही सच्चा मार्ग-दर्शन करते हुए मोक्ष को प्राप्त कराती है। गुरु की शरण में आने से ही जीवन का सही मार्ग दिखाई देता है, अहंकार का नाश हो जाता है, गुरोपदेश धारण करने की शक्ति प्राप्त होती है, अन्यथा यह वश में नहीं किया जा सकता। दुःख-क्लेश का नाश करने एवं सदैव स्थिर रहनेवाले परमात्मा का नाम प्रकट करने के लिए गुरू की प्राप्ति करने के अलावा और कोई साधन नहीं है।

सिरीरागु महला ३

किरपा करे गुरु पाईऐ हरिनामो देइ द्रिड़ाय। बिनु गुर किनै न पाइओ बिरथा जनमु गवाय। मनमुख करम कमावणे दरगह मिलै सजाय ।। १ ।। मन रे दूजा भाउ चुकाय। अंतरि तेरै हरि वसै गुर सेवा सुखु पाय ।। रहाउ ।। सचु बाणी सचु सबदु है जा सचि धरे पिआरु। हरि का नामु मनि वसै हउमै क्रोधु निवारि। मनि निरमल नामु धिआईऐ ता पाए मोख-दुआरु ।। २ ।। हउमै विचि जगु बिनसदा मरि जंमै आवै जाय मनमुख सबदु न जाणनी जासनि पति गवाय। गुर सेवा नाउ पाईऐ सचे रहै समाय ।। ३ ।। सबदि मंनिऐ गुरु पाईऐ विचहु आपु गवाइ। अनदिनु भगति करे सदा साचे की लिव लाय। नामु पदारथु मनि वसिआ नानक सहजि समाय ।। ४ ।। १९ ।। ।। ५२ ।।

श्रीराग महला ३--"ईश्वर की कृपा से गुरू की प्राप्ति होती है और गुरु के द्वारा परमात्मा का नाम हृदय में बस जाता है। गुरु की शरण के बिना परमात्मा को प्राप्त नहीं किया जा सकता और लोग यों ही जीवन व्यर्थ गँवा दिया करते हैं। मन के पीछे चलनेवाले सदैव दुख भोगते हैं और परलोक में भी दण्डनीय होते हैं। ऐ मेरे मन ! माया-मोह दूर कर और गुरू के बताए भक्तिमार्ग पर चलकर सुख की प्राप्ति कर। परमात्मा के नाम में जुड़ने से ही आत्मिक आनन्द की अनुभूति होती है और जीवन के यथार्थ का ज्ञान होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि का नाश हो जाता है और ईश्वर का नाम सदैव के लिए हृदय में बस जाता है; मन भी पवित्र हो जाता है, शरीर भी विकारों को दूर कर मोक्ष का मार्ग ढूँढ़ लेता है; आवागमन के चक्करों से छुटकारा मिल जाता है। अपने मन के पीछे चलनेवाले अपना मान-सम्मान गँवा बैठते हैं, श्रद्धा से नत-मस्तक हो गुरोपदेश को अपने हृदय में बसानेवाले परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं। सदैव स्थिर रहनेवाले ईश्वर के पवित्र चरणों में अपना निवास बना कर इहलोक एवं परलोक दोनों में शोभनीय होते हैं।

सिरीरागु महला ३

जिनी पुरखी सतगुरु न सेविओ से दुखीए जुग चारि ।। घरि होदा पुरखु न पछाणिआ अभिमानि मुठे अहंकारि। सत-गुरू किआ फिटकिआ मंगि थके संसारि। सचा सबदु न सेविओ सभि काज सवारणहारु ।।१।। मन मेरे सदा हरि वेखु हदूरि। जनम मरन दुखु परहरै सबदि रहिआ भरपूरि ।। १ ।। रहाउ ।। सचु सलाहनि से सचे सचा नामु अधारु। सची कार कमावणी सचे नालि पिआरु। सचा साहु वरतदा कोय न मेटणहारु। मनमुख महलु न पाइनी कूड़ि मुठे कूड़िआर ।। २ ।। हउमै करता जगु मुआ गुर बिनु घोर अंधारु। माइआ मोहि विसा-रिआ सुखदाता दातारु। सतगुरु सेवहि ता उबरहि सचु रखहि उरधारि। किरपा ते हरि पाईऐ सचि सबदि वीचारि ।। ३ ।। सतगुरु सेवि मनु निरमला हउमै तजि विकार। आपु छोडि जीवत मरै गुर कै सबदि वीचार। धंधा धावत रहि गए लागा साचि पिआरु। सचि रते मुख उजले तितु साचै दरबारि ।। ४ ।। सतगुरु पुरखु न मंनिओ सबदि न लगो पिआरु। इसनानु दानु जेता करहि दूजै भाय खुआरु। हरि जीउ आपणी क्रृपा करे ता

लागै नाम पिआरु। नानक नामु समालि तू गुर कै हेति अपारि ।। ५ ।। २० ।। ५३ ।।

श्रीराग महला ३—गुरु द्वारा दिखाए मार्ग पर न चलनेवाले मनुष्य सदैव दुखी रहते हैं। अपने मन में बसे हुए परमात्मा को नहीं पहचानते। अहंकार में डूबे रहने से इस अमूल्य मानव जीवन की समस्त पूँजी लुटा बैठते हैं, सर्वगुणसम्पन्न परमात्मा के नाम को नहीं सिमरते और जगत में मायामोह-जाल में फँस भटकते रहते हैं। जिन्होंने अपने जीवन का एक मात्र सहारा परमात्मा के सच्चे नाम को बनाया है और उस पर अमल करते हैं वे परमात्मा की शोभा देखते-देखते उसमें एकाकार हो जाते हैं। वह सदैव स्थिर परमात्मा जिसका एक मात्र हुक्म इस संसार में चलता है, जिसकी आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता, उसकी शरण वे ही प्राप्त कर सकते हैं जो अपने मन के पीछे न चलकर, गुरोपदेश में निष्ठा रखते हैं और अपने आपको बड़ा न कहकर, आत्मिक मौत को दूर कर, अंधकार का नाश कर, उस परमात्मा की प्राप्ति करते हैं, जो स्वयं अपनी कृपादृष्टि से ही प्राप्त होता है। गुरु की सेवा करने से अहंकार का नाश होता है, विकार दूर होते हैं, मन पवित्र हो जाता है। सदैव स्थिर, प्रभू के नाम-रंग में रंगे जाते हैं और शोभनीय होते हैं। जिन्होंने गुरु को अपना पथ-प्रदर्शक नहीं माना, गुरोपदेश को नहीं अपनाया, उनका दान-पुण्य-तीर्थाटन आदि सब व्यर्थ चला जाता है। जब स्वयं ईश्वर उन पर कृपालु होता है तभी उन्हें ईश्वर की प्राप्ति होती है और उसके नाम-रंग में रंग कर उसे प्राप्त करते हैं।

सिरीरागु महला ३

किसु हउ सेवी किआ जपु करी सतगुर पूछउ जाय। सतगुर का भाणा मंनि लई विचहु आपु गवाय। एहा सेवा चाकरी नामु वसै मनि आय। नामै ही ते सुखु पाईऐ सचै सबदि सुहाय ।। १ ।। मन मेरे अनदिनु जागु हरि चेति। आपणी खेती रखि लै कूंज पड़ैगी खेति ।। १ ।। रहाउ ।। मन कीआ इछा पूरीआ सबदि रहिआ भरपूरि। भै भाइ भगति करहि दिनु राती हरि जीउ वेखै सदा हदूरि। सचै सबदि सदा मनु राता भ्रमु गइआ सरीरहु दूरि। निरमलु साहिबु पाइआ साचा गुणी गहीरु ।। २ ।। जो जागे से उबरे सूते गए मुहाइ ।। सचा सबदु न पछाणिओ सुपना गइआ विहाइ। सुंञे घर का पाहुणा जिउ आइआ तिउ जाय। मनमुख जनमु बिरथा गइआ

किआ मुहु देसी जाय ।। ३ ।। सभ किछु आपे आपि है हउमै विचि कहनु न जाइ । गुर कै सबदि पछाणीऐ दुखु हउमै विचहु गवाइ । सतगुरु सेवनि आपणा हउ तिन कै लागउ पाय । नानक दरि सचै सचिआर हहि हउ तिन बलिहारै जाउ ।। ४ ।। ।। २१ ।। ५४ ।।

श्रीराग महला ३--जब हम यह प्रश्न करते हैं कि विकारों से बचने के लिए कौन सा उपाय करें तो उत्तर मिलता है कि अपने अन्दर से अहं-भावना को दूर कर गुरोपदेश को हृदय में स्थान देने से मनोवांछित फल प्राप्त हो सकते हैं । परमात्मा के भय को मानकर उसकी आज्ञा में रहनेवाले लोग जब उसे सर्वशक्तिमान सर्वव्यापक जान उसकी स्तुति करते हैं तो परमात्मा भी उनके अंग-संग होकर उनकी सभी स्थानों एवं समयों पर सहायता करता है । वे भटकना छोड़कर सदैव स्थिर, प्रभू को प्राप्त करते हैं । माया-मोह में फँसे लोग स्वप्न की भाँति सब कुछ गँवा बैठते हैं वे इस संसार में इस प्रकार उठ जाते हैं जैसे किसी ख़ाली घर से कोई मेहमान वापस चला जाता है और उनका अमूल्य मानव-जीवन यों ही व्यर्थ बीत जाता है । परन्तु जीव भी क्या करे ? जब सब कुछ करने-वाला स्वयं परमात्मा है तो जीव क्या कर सकता है ? अर्थात् जब तक गुरु की शरण में आकर जीव परमात्मा की प्राप्ति-हेतु उसकी भक्ति नहीं करता, जीव का उद्धार नहीं हो सकता ? गुरूदेव कहते हैं, मैं उन भक्त जनों पर बलिहार जाता हूँ जो सदैव स्थिर, प्रभू के यशगान में अपना जीवन व्यतीत करते हैं ।

सिरीरागु महला ३

जे वेला वखतु वीचारीऐ ता कितु वेला भगति होय । अनदिनु नामे रतिआ सचे सची सोय । इकु तिलु पिआरा विसरै भगति किनेही होय । मनु तनु सीतलु साच सिउ सासु न बिरथा कोइ ।। १ ।। मेरे मन हरि का नामु धिआय । साची भगति ता थीऐ जा हरि वसै मनि आय ।। १ ।। रहाउ ।। सहजे खेती राहीऐ सचु नामु बीजु पाइ । खेती जंमी अगली मनूआ रजा सहजि सुभाय । गुर का सबदु अंम्रितु है जितु पीतै तिख जाय । इहु मनु साचा सचि रता सचे रहिआ समाय ।। २ ।। आखणु वेखणु बोलणा सबदे रहिआ समाय । बाणी वजी चहु जुगी सचो सचु सुणाय । हउमै मेरा रहि

गइआ सचै लइआ मिलाय। तिन कउ महलु हदूरि है जो सचि रहे लिव लाय ।। ३ ।। नदरी नामु धिआईऐ विणु करमा पाइआ न जाय। पूरै भागि सतसंगति लहै सतगुरु भेटै जिसु आय। अनदिनु नामे रतिआ दुखु बिखिआ विचहु जाय। नानक सबदि मिलावड़ा नामे नामि समाय ।। ४ ।। २२ ।। ५५ ।।

श्रीराग महला ३—जीव यदि भक्ति के लिए कोई विशेष समय निश्चित करना चाहे तो उसका जीवन, समय के निर्धारण और प्रतिपालन में ही बीत जावेगा। भक्ति तो सदैव काल के लिए एक क्षण भी न टूटने-वाली होनी चाहिए ताकि परमात्मा के रंग में रंगे रहकर उसकी शोभा-शांति प्राप्त की जा सके। आत्मिक अडोलता में रह, प्रभू-भक्ति करने से मानव-जीवन की तृष्णाएँ शांत हो जाती हैं। ईश्वर का नाम रूपी अमृत पान करने से सारी मायावी तृष्णाएँ अपने आप शांत हो जाती हैं, मन स्थिर हो जाता है और प्रभू-भक्ति में लीन रहता है। सदैव स्थिर प्रभू की भक्ति में अपना जीवन व्यतीत करनेवाले लोग माया-मोह से दूर रह, संसार में स्वयं भी शोभा प्राप्त करते हैं एवं अपने साथ-साथ दूसरों का भी जन्म सँवारते हैं। ईश्वर के दरबार में उच्च स्थान प्राप्त करते हैं; परन्तु यह सब तभी होता है जब परमात्मा की अपनी कृपा हो जावे। सत्संग के द्वारा उसकी अहं-भावना नष्ट हो जाती है और मन निर्मल हो जाता है; गुरु-शब्द द्वारा ही परमात्मा से मिलाप होता है।

सिरीरागु महला ३

आपणा भउ तिन पाइओनु जिन गुर का सबदु बीचारि। सतसंगती सदा मिलि रहे सचे के गुण सारि। दुबिधा मैलु चुकाईअनु हरि राखिआ उरधारि। सची बाणी सचु मनि सचे नालि पिआरु ।। १ ।। मन मेरे हउमै मैलु भर नालि। हरि निरमलु सदा सोहणा सबदि सवारणहारु ।। १ ।। रहाउ ।। सचै सबदि मनु मोहिआ प्रभि आपे लए मिलाय। अनदिनु नामे रतिआ जोती जोति समाय। जोती हू प्रभु जापदा बिनु सतगुर बूझ न पाय। जिन कउ पूरबि लिखिआ सतगुरु भेटिआ तिन आय ।। २ ।। विणु नावै सभ डुमणी दूजै भाय खुआय। तिसु बिनु घड़ी न जीवदी दुखी रैणि विहाय। भरमि भुलाणा अंधुला फिरि फिरि आवै जाय। नदरि करे प्रभु आपणी आपे लए मिलाय ।। ३ ।। सभु किछु सुणदा वेखदा किउ मुकरि पइआ जाय। पापो

पापु कमावदे पापे पचहि पचाय। सो प्रभु नदरि न आवई मनमुखि बूझ न पाय। जिसु वेखाले सोई वेखै नानक गुरमुखि पाय ।। ४ ।। २३ ।। ५६ ।।

श्रीराग महला ३—ईश्वर का भय उन्हीं लोगों के अन्दर समाया हुआ है जिन पर उसकी अपनी कृपादृष्टि है। वे व्यक्ति सदैव सत्संग में जाकर उसका यशगान करते हैं और इस प्रकार उनके मनों में समाई मैल दूर हो जाती है। केवल पवित्र नाम और गुण जो ईश्वरीय हैं, वे ही मन में समा जाते हैं। जो व्यक्ति सदैव स्थिर प्रभू का नाम जपते हैं उसकी स्तुति करते हैं उसे अपने मन-मंदिर में बसा लेते हैं, परमात्मा उन पर अपनी कृपादृष्टि करता है, अपने में एकाकार कर लेता है और अपने दर्शन कराता है; जो केवल ज्ञान-चक्षुओं द्वारा ही संभव है और ज्ञान-चक्षु तभी खुलते हैं जब गुरु की कृपा द्वारा उनकी पहचान हो जाती है। परमात्मा के नाम के बिना समस्त संसार मायाजाल में फँस दुख भोगता रहता है और आत्मिक आनन्द की प्राप्ति नहीं कर पाता। आवागमन के चक्करों में पड़कर पुन: जन्म लेता रहता है। परन्तु जब ईश्वरीय कृपादृष्टि हो जाती है तो प्रभू-चरणों की प्राप्ति हो जाती है और समस्त क्लेशों का नाश हो जाता है। जीव का हर क्रिया-कलाप उसकी निगाहों में रहता है। जीव के प्रत्येक कर्म उसके लेखे-जोखे में होते हैं अत: जीव अपने कुकृत्यों को छुपा नहीं सकता। अपने मन के पीछे चलनेवालों को यह सब कुछ दिखाई नहीं देता। परन्तु वे भी क्या करें ? क्योंकि जो कुछ हो रहा है सब उस प्रभू की रज़ा में हो रहा है। उसकी दयादृष्टि होने पर ही पाप पुण्य-सुकृत्य-कुकृत्य आदि की समझ आती है।

सिरीरागु महला ३

बिनु गुर रोगु न तुटई हउमै पीड़ न जाय। गुर परसादी मनि वसै नामे रहै समाय। गुर सबदी हरि पाईऐ बिनु सबदै भरमि भुलाय ।। १ ।। मन रे निजघरि वासा होय। रामनामु सालाहि तू फिरि आवणजाणु न होय ।। १ ।। रहाउ ।। हरि इको दाता वरतदा दूजा अवरु न कोय। सबदि सालाही मनि वसै सहजे ही सुखु होय। सभ नदरी अंदरि वेखदा जै भावै तै देय ।। २ ।। हउमै सभा गणत है गणतै नउ सुखु नाहि। बिखु की कार कमावणी बिखु ही माहि समाहि। बिनु नावै ठउरु न पाइनी जमपुरि दूख सहाहि ।। ३ ।। जीउ पिंडु सभु

तिस दा तिसै दा आधारु। गुर परसादी बुझीऐ ता पाए मोख-दुआरु। नानक नामु सलाहि तूं अंतु न पारावारु ॥ ४ ॥ २४ ॥ ॥ ५७ ॥

श्रीराग महला ३—गुरु की कृपादृष्टि के बिना न तो जीवन का यथार्थ समझ में आ सकता है न सही दिशा-मार्ग अथवा उद्देश्य। केवल ईश्वर ही सार्मथ्यवान है और सभी ऋद्धियों-सिद्धियों का दाता है। आत्मिक आनन्द की प्राप्ति-हेतु उस प्रभू का यशगान एवं उसको मन में बसाना आवश्यक है। विकारों, चिन्ताओं एवं दुर्गुणोंवाले मनों में प्रभू का निवास नहीं होता और न ही आत्मिक आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। यम का भय भी उन्हें सताता रहता है। चारों ओर अशांति ही अशांति नज़र आती है। जब जीव इस बात को भली भांति समझ लेता है कि जो कुछ उसके पास है वह सब उस प्रभू का है, उसके द्वारा ही प्रदत्त है, तब जीव विकारों से दूर हो उसका यशगान करने लगता है। अतः ऐ मानव-मात्र ! गुणसागर सर्वशक्तिमान सृजनहार परमात्मा का नाम जपो, उसकी अराधना करो, उसका यशगान कर उसे अपना बनाओ; तभी इस असार संसार से मुक्ति का मार्ग दिखाई पड़ेगा, प्रभू से मिलाप होगा एवं मोक्ष प्राप्ति होगी।

सिरीरागु महला ३

तिना अनन्दु सदा सुखु है जिना सचु नामु आधारु। गुरसबदी सचु पाइआ दूख निवारणहारु। सदा सदा साचे गुण गावहि साचै नाय पिआरु। किरपा करि कै आपणी दितोनु भगति भंडारु ॥ १ ॥ मन रे सदा अनन्दु गुण गाय। सची बाणी हरि पाईऐ हरि सिउ रहै समाय ॥ १ ॥ सची भगती मनु लालु थीआ रता सहजि सुभाय। गुरसबदी मनु मोहिआ कहणा कछू न जाय। जिहवा रती सबदि सचै अंम्रितु पीवै रसि गुण गाय। गुरमुखि एहु रंगु पाईऐ जिसनो किरपा करे रजाय ॥ २ ॥ संसा इहु संसारु है सुतिआ रैणि विहाय। इकि आपणै भाणै कढि लइअनु आपे लइओनु मिलाय। आपे ही आपि मनि वसिआ माइआ मोहु चुकाय। आपि वडाई दितीअनु गुरमुखि देइ बुझाय ॥ ३ ॥ सभना का दाता एकु है भुलिआ लए समझाए। इकि आपे आपि खुआइअनु दूजै छडिअनु लाए। गुरमती हरि पाईऐ जोती जोति मिलाय। अनदिनु नामे रतिआ नानक नामि समाय ॥ ५ ॥ २५ ॥ ५८ ॥

उमे ! नूनं तव प्रश्नः स्वाभाविकमनोरमः । अतीव रुचितो मह्यं सुखदः सम्मतः सताम् ।।
नैव प्ररुचितं मह्यं तवैकं किन्तु भाषितम् । भवानि! मोहवशया त्वया यद्यपि भाषितम् ।।
त्वया यदुक्तं श्रीरामः कोऽप्यन्यः स भवेदिति। श्रुतयो यं प्रगायन्ति ध्यायन्ति मुनयस्तथा ।।

वदन्ति शृण्वन्त्यधमास्तथेति ग्रस्तास्तु ये मोहपिशाचकेन ।
पाखण्डिनो विष्णुपदापवक्त्राः सत्यानृते नैव विदन्ति ये च ।। ११४ ।।

अज्ञा अकोविदा अन्धास्तथा भाग्यविवर्जिताः । चित्तादर्शे गता येषां विषया जलनीलिकाः ।।
लम्पटाश्छलयुक्ता ये कुटिलाश्च विशेषतः । स्वप्नेऽपि यैः सज्जनानां सभा नैव विलोकिता ।।
वदन्त्येतादृशीं वाणीं त एव श्रुत्यसम्मताम् । न यैः किमपि विज्ञातं लाभो वा हानिरेव वा ।।
म्लानो येषां हृदादर्शो ये च नेत्रविवर्जिताः । कथं पश्यन्तु ते दीना रामरूपं शरीरिणः ।।
सगुणागुणयोर्येषां भेदज्ञानं न विद्यते । जल्पन्ति कल्पितान्येव तेऽनेकानि वचांसि च ।।
भ्रमन्ति ये जगच्चक्रे हरिमायावशं गताः । नैवास्ति दुर्घटं तेषां यत् किञ्चिदपि भाषितुम् ।।
वातुला भूतविवशा ये मदोन्मत्ततां गताः । विचार्य वचनं ते तु किमप्युच्चारयन्ति न ।।
पीता महामोहरूपा मदिरा यैश्च देहिभिः । तैरुक्ते वचने कर्णौ योजितव्यौ कदापि न ।।

विचार्य चित्ते सकलं त्वमेतद् विहाय शङ्कां भज रामपादौ ।
शृणुष्व शैलेन्द्रसुते ! वचो मे भ्रमान्धकारार्कमयूखतुल्यम् ।। ११५ ।।

सगुणागुणयोः कोऽपि भेदो नैवास्ति वास्तवम् । इति वेदाः पुराणानि मुनिविज्ञाश्च चक्षते ।।
य एवेशोऽगुणोऽरूपस्तथाऽलक्ष्यो जनैः परः । भक्तप्रेम्णो वशं यातः स एव सगुणः स्थितः ।।
गुणहीनो य एवेशः स एव सगुणः कथम् । इति चेन्नास्ति भेदोऽत्र यथाम्भोहिमखण्डयोः ।।
भ्रमान्धकारनाशाय यस्य नामास्ति भास्करः । विमोहस्य प्रसङ्गोऽपि कथं तस्य प्रकीर्त्यते ।।
सच्चिदानन्दरूपोऽस्ति श्रीरामो दिवसेश्वरः । तस्मिन् मोहनिशीथिन्या लवशेषोऽपि नास्त्यतः ।।
स्वाभाविकप्रकाशात्मा भगवानस्ति निश्चितम् । प्रातःकालोऽपि विज्ञानरूपस्तस्मिन्न जायते ।।
हर्षो विषादो विषयज्ञानमज्ञानमेव च । अहङ्कारोऽभिमानश्च जीवधर्मा इमे मताः ।।
जगज्जानाति यद् रामो व्यापकं ब्रह्म वर्तते । परात्मा परमानन्दः पुराणपुरुषस्तथा ।।

तेजोनिधिर्यः पुरुषः प्रसिद्धः परावरेनः प्रकटः समेषु ।
स एव मे राघवरत्नमीशः प्रोच्येति शम्भुः प्रणतिञ्चकार ।। ११६ ।।

अज्ञानिनो न जानन्ति भ्रममाश्रितमात्मनि । आरोपयन्ति स्वं मोहं ते जडा देहिनः प्रभौ ।।
पटलं वारिवाहानां विलोक्य गगने यथा । मुद्रितो भानुरित्येव वदन्ति कुविचारिणः ।।
यः कोऽपि पश्येत् संयोज्य नेत्रयोरङ्गुलिद्वयम् । अवश्यमेव तस्य स्यात् प्रत्यक्षं चन्द्रमोद्वयम् ।।
उमे ! रामस्य विषये तथेयं मोहकल्पना । यथा तमोधूलिधूमा दृश्यन्ते विमलेऽम्बरे ।।
विषया इन्द्रियाण्येव तत्सुरा जीवसंयुताः । स्वस्वोत्तरस्मात् सर्वेऽपि भवन्तीमे सचेतनाः ।।
सर्वेषामेव किन्त्वेषां परमो यः प्रकाशकः । स एवानादि सद् ब्रह्म रामोऽयोध्याधिपो मतः ।।
जगत् प्रकाश्यं सकलं रामश्चास्ति प्रकाशकः । मायाधीशोऽस्ति बोधस्य गुणानाञ्चापि धाम सः ।।
यस्य रामस्य सत्ताया मायापि जडरूपिणी । सम्प्राप्य मोहसाहाय्यं सदा सत्येव भासते ।।

यथैव शुक्तौ रजतस्य भासो जलस्य सूर्यांशुषु च प्रभासः ।
त्रिकालमेषोऽस्ति मृषा तथापि न कोऽप्यमुं वारयितुं समर्थः ।। ११७ ।।

ऐहि बिधि जग हरि-आश्रित रहई। जदपि असत्य, देत दुख अहई ॥
जौं सपनें सिर काटै कोई। बिनु जागे न दूरि दुख होई ॥
जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई ॥
आदि-अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा ॥
बिनु पद चलइ, सुनइ बिनु काना। कर-बिनु करम करइ बिधि नाना ॥
आनन - रहित सकलरस - भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥
तन-बिनु परस, नयन-बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान-बिनु बास असेषा ॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥

दो०—जेहि इमि गावहिं बेद-बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ-सुत भगत-हित, कोसलपति भगवान ॥ ११८ ॥

कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम - बल करउँ बिसोकी ॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर - अंतरजामी ॥
बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं ॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव - बारिधि गोपद-इव तरहीं ॥
राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम, अति अबिहित तव बानी ॥
अस संसय आनत उर माहीं। ग्यान, बिराग, सकल गुन जाहीं ॥
सुनि सिव के भ्रम-भंजन बचना। मिटि गै सब कुतरक कै रचना ॥
भइ रघुपतिपद - प्रीति - प्रतीती। दारुन असंभावना बीती ॥

दो०—पुनि-पुनि प्रभुपद-कमल गहि, जोरि पंकरुह-पानि।
बोलीं गिरिजा बचन बर, मनहुँ प्रेमरस सानि ॥ ११९ ॥

ससिकर-सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह - सरदातप भारी ॥
तुम्ह कृपाल सबु संसउ हरेऊ। राम - स्वरूप जानि मोहि परेऊ ॥
नाथ-कृपाँ अब गयउ बिषादा। सुखी भयउँ प्रभु-चरन-प्रसादा ॥
अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड़ नारि अयानी ॥
प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू। जौं मो पर प्रसन्न प्रभु ! अहहू ॥
राम ब्रह्म, चिनमय, अबिनासी। सर्ब-रहित सब-उर-पुर-बासी ॥
नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू ॥
उमा - बचन सुनि परम बिनीता। रामकथा पर प्रीति पुनीता ॥

दो०—हियँ हरषे कामारि तब, संकर सहज सुजान।
बहु बिधि उमहि प्रसंसि पुनि, बोले कृपानिधान ॥१२०(क)॥

नवाह्नपारायण, पहला विश्राम

मासपारायण, चौथा विश्राम

इत्यनेन प्रकारेण श्रीहरावाश्रितं जगत् । यद्यप्यसत्यं सततं दुःखं यच्छति तर्ह्यपि ॥
छिनत्ति कश्चिच्चेत् स्वाप्नः स्वप्नद्रष्टुर्यथा शिरः। विना जागरणं तर्हि न तद् दुःखं विनश्यति ॥
यस्यैव कृपया सर्वो भ्रमोऽयं नश्यति क्षणात् । कृपामयः स एवास्ति रघुराजोऽचलात्मजे! ॥
आद्यन्तौ नाशकत् प्राप्तुं यस्य कोऽपि शरीरवान्। ब्रह्मेत्यगायन् यं वेदा अनुमाय यथामति ॥
विना पादौ चलति तद् विना कर्णौ शृणोति च । नानाविधानि कर्माणि कुरुते च करौ विना ॥
मुखजिह्वे विना सर्वान् रसानपि भुनक्ति तत् ।महान् योग्यश्च वक्ता तद् विना वागिन्द्रियं मतम्॥
देहं विनापि स्पृशति विना नेत्रे च पश्यति । घ्राणं विनापि सर्वत्र सर्वं गन्धञ्च जिघ्रति॥
सर्वैः प्रकारैरित्येवं कर्म तस्यास्त्यलौकिकम् । केनापि महिमा यस्य प्रवक्तुं नैव शक्यते ॥

गायन्ति वेदा इति यं बुधाश्च ध्यानं प्रकुर्वन्त्यृषयोऽपि यस्य ।
भक्तेष्टकृद् दाशरथिः स एव श्रीकोशलेशो भगवान् परात्मा ॥ ११८ ॥

वाराणस्यां शरीरं स्वं त्यजन्तं वीक्ष्य देहिनम् । यस्य नाम्नो बलेनैव शोकहीनं करोम्यहम् ॥
सोऽयमेव मम स्वामी जडचेतनसत्पतिः । रघुश्रेष्ठः समग्राणामन्तर्याम्युरसां मतः ॥
यन्नाम्ना गृह्यमाणेन विवशैरपि मानवैः । दुष्कृतानि प्रदह्यन्ते बहुजन्मकृतान्यपि ॥
ये पुनर्मानवास्तस्य स्मरन्त्यादरपूर्वकम् । भवाम्बुधिं तरन्त्येव ते नूनं गोष्पदं यथा ॥
स एव परमात्मास्ति भवानि ! रघुनन्दनः ।तस्मिन् भ्रमोऽस्तीति ते वागतीवानुचिता मता ॥
एतादृशेऽस्मिन् सन्देहे चित्त आनीत एव तु । ज्ञानवैराग्यादिरूपा विनश्यन्ति गुणाः समे ॥
भञ्जकानि भ्रमस्येति वचांस्याकर्ण्य धूर्जटेः । तस्याः कुतर्करचना सकलैव व्यलीयत ॥
सञ्जातौ प्रीतिविश्वासौ तस्यां रामस्य पादयोः। विनष्टा दारुणा तस्याः सा चासम्भवकल्पना ॥

मुहुर्गृहीत्वेशपदाम्बुजे सा संयोज्य पाथोजसमौ करौ च ।
अत्युत्तमं प्राह वचोऽद्रिजाता प्रेम्णो रसे सम्परिमेल्य नूनम् ॥ ११९ ॥

निशम्य भवतो वाणीं समां शशिमरीचिभिः । मम मोहात्मकस्तीव्रो विनष्टः शरदातपः ॥
कृपालुः संशयान् सर्वान् ममैतान् हृतवान् मम। श्रीरामस्य स्वरूपञ्च मतौ मम समागतम् ॥
नाथ ! नष्टो विषादो मे कृपया भवतोऽधुना । पादप्रसादाद् भवतो जाताहं सुखिनी प्रभो! ॥
किङ्करीमेव विज्ञाय स्वामिदानीं तथापि माम्। नारी स्वभावादेवाहं यद्यप्यज्ञानिनी जडा ॥
प्रथमं यन्मया पृष्टं तदेव वदताद् भवान् । यदि प्रसादसम्पन्नो वर्तते मयि हे प्रभो! ॥
रामोऽस्ति ब्रह्म परममविनाशी च चिन्मयः । सर्वोरःपुरसद्वासः सर्वेभ्यो रहितोऽपि सः ॥
स कस्मात् कारणान्नाथ! नरदेहं गृहीतवान् । भवानेतत् कथयताद् वृषकेतो! प्रबोध्य माम्॥
श्रुत्वोमाया वचोऽत्यन्तं विनयेन समन्वितम् । कथायां रामचन्द्रस्य पूतां प्रीतिं विलोक्य च॥

ततः स्वचित्ते जहृषे स्मरारिः श्रीशङ्करो बोधयुतः स्वभावात् ।
उमाञ्च नानाविधिभिः प्रशस्य कृपानिधिस्तामिदमेवमाह ॥ १२० ॥ क

नवाह्नपारायणे प्रथमो विश्रामः सम्पूर्णः

मासपारायणे चतुर्थो विश्रामः सम्पूर्णः

सो०—सुनु सुभ कथा भवानि, रामचरितमानस बिमल।
कहा भुसुंडि बखानि, सुना बिहग-नायक गरुड़ ॥ १२० ॥ ख

सो संबाद उदार, जेहि बिधि भा आगे कहब।
सुनहु राम-अवतार, चरित परमसुंदर, अनघ ॥ १२० ॥ ग

हरि-गुन-नाम अपार, कथा-रूप अगनित, अमित।
मैं निज-मति-अनुसार, कहउँ उमा ! सादर सुनहु ॥ १२० ॥ घ

सुनु गिरिजा ! हरिचरित सुहाए। बिपुल, बिसद निगमागम गाए ॥
हरि - अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई ॥
राम अतर्क्य बुद्धि - मन - बानी। मत हमार अस, सुनहि सयानी ॥
तदपि संत - मुनि - बेद - पुराना। जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना ॥
तस मैं सुमुखि ! सुनावउँ तोहीं। समुझि परइ जस कारन मोहीं ॥
जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम - अभिमानी ॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र, धेनु, सुर, धरनी ॥
तब - तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन - पीरा ॥

दो०—असुर मारि, थापहिं सुरन्ह, राखहिं निजश्रुति-सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस, रामजन्म-कर हेतु ॥ १२१ ॥

सोइ जस गाइ, भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन - हित तनु धरहीं ॥
रामजनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक तें एका ॥
जनम एक - दुइ कहउँ बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी ॥
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ ॥
बिप्र - श्राप तें दूनउ भाई। तामस असुर - देह तिन्ह पाई ॥
कनककसिपु अरु हाटकलोचन। जगत-बिदित सुरपति-मद-मोचन ॥
बिजई समर - बीर बिख्याता। धरि बराह - बपु एक निपाता ॥
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। जन - प्रहलाद - सुजस बिस्तारा ॥

दो०—भए निसाचर जाइ तेइ, महाबीर बलवान।
कुंभकरन रावन सुभट, सुर-बिजई जग जान ॥ १२२ ॥

मुकुत न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज-बचन प्रवाना ॥
एक बार तिन्ह के हित लागी। धरेउ सरीर भगत - अनुरागी ॥
कस्यप - अदिति तहाँ पितु-माता। दसरथ - कौसल्या बिख्याता ॥
एक कलप एहि बिधि अवतारा। चरित पबित्र किए संसारा ॥
एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलंधर - सन सब हारे ॥
संभु कीन्ह संग्राम अपारा। दनुज महाबल मरइ न मारा ॥
परम सती असुराधिप नारी। तेहिं बल, ताहि न जितहिं पुरारी ॥

दो०—छल करि टारेउ तासु ब्रत, प्रभु सुर-कारज कीन्ह।
जब तेहिं जानेउ मरम तब, श्राप कोप करि दीन्ह ॥ १२३ ॥

कथां कर्णगां त्वं शृणुष्वेह भद्रामुमे ! रामचारित्रसन्मानसस्य ।
वितत्यैव काको भुशुण्डिर्जगाद खगेशश्च शुश्राव यां वैनतेयः ॥ १२० ॥ ख

उदारः स संवाद आसीद् यथैव समं तं प्रवक्ष्यामि पश्चादिह त्वाम् ।
शृणुष्वाधुना रामचन्द्रावतार-चरित्रं परं रम्यरूपं तमोघ्नम् ॥ १२० ॥ ग

हरेः सद्गुणा नाम रूपं कथेति समे सन्त्यगण्या अपारा असीमाः ।
अहञ्चानुसृत्य स्वकीयां मनीषां वदाम्यद्रिजे ! सादरं त्वं शृणुष्व ॥ १२० ॥ घ

गिरिजाते ! शोभनानि चरितानि हरेः शृणु । विमलानि विशालानि गीतानि निगमागमैः ॥
अवतारो हरेर्यस्मात् कारणाद् भवति ध्रुवम् । इदमित्थं तु केनापि तद् वक्तुं नैव शक्यते ॥
अतर्क्यो वर्तते रामो धीमनोवचनैरपि । मतं ममेदमेव त्वं चतुरे ! कर्णगं कुरु ॥
तथापि सन्तो मुनयो वेदा व्यासोक्तयस्तथा । वदन्ति यत् किञ्चिदपि यथामत्यनुमानतः ॥
तथा त्वां सर्वमपि तत् सुमुखि ! श्रावयाम्यहम् । यथा बुद्धौ ममायाति यादृशञ्चापि कारणम् ॥
यदा यदैव धर्मस्य हानिर्भवति विष्टपे । प्रयान्ति वृद्धिमसुरा अधमा अभिमानिनः ॥
किञ्च कुर्वन्त्यनीतिं ते शक्यं यस्या न वर्णनम् । सीदन्ति ब्राह्मणा गावो विबुधा धरणी तथा ॥
विविधानि शरीराणि प्रभुर्धृत्वा तदा तदा । पीडां सर्वां सज्जनानां हरत्येव कृपानिधिः ॥

हत्वाऽसुरान् स्थापयति स्वरीशान् निजश्रुतीनां परिपाति सेतुम् ।
तनोति लोके विशदं यशश्च हेतुर्जनेरेष रघूत्तमस्य ॥ १२१ ॥

तदेव तद्यशो गात्वा भवं भक्तास्तरन्त्यपि । हिताय सर्वलोकानां तनुं धत्ते कृपाम्बुधिः ॥
अनेके हेतवः सन्ति रामचन्द्रस्य जन्मनः । प्रत्येकमेव ते सर्वे विचित्राः परमा मताः ॥
एकं जन्मद्वयं वापि कथयामि सविस्तरम् । सावधाना शृणु त्वं तद् भवानि! शुभधीयुते ! ॥
वर्तेते द्वारपालौ द्वौ प्रियौ पद्मालयापतेः । जयश्च विजयश्चेति सर्वे जानन्ति तौ जनाः ॥
द्वावपि भ्रातरौ शापात् सनकादिद्विजन्मनाम् । आसुरीं प्राप्तवन्तौ तौ तमोगुणमयीं तनुम् ॥
एको हिरण्यकशिपुर्हिरण्याक्षस्तथापरः । लोके द्वावपि तौ ख्यातौ देवेन्द्रमदमोचनौ ॥
समरे तौ विजयिनौ विख्यातौ शौर्यसंयुतौ । धृत्वा शरीरं वाराहं जघानैकं तयोर्हरिः ॥
ततो भूत्वा नरहरिर्द्वितीयं निजघान सः । वितस्तार स्वभक्तस्य प्रह्लादस्य यशस्तथा ॥

तावेव पश्चादसुरौ प्रजातौ वीरौ महान्तौ बलसंयुतौ च ।
भटोत्तमौ रावणकुम्भकर्णौ तौ वेत्ति लोको जयिनौ सुराणाम् ॥ १२२ ॥

नैव मुक्तिं प्राप्तवन्तौ हरिणापि हतावुभौ । यतस्त्रिजन्मप्रमितो विप्रशापोऽभवत् तयोः ॥
ततो भूयोऽप्येकवारं शं सम्पादयितुं तयोः । भक्तानुरागी भगवान् नरदेहं समग्रहीत् ॥
कश्यपस्तत्र तातोऽभूददितिर्जननी तथा । यौ विख्यातौ दशरथः कौशल्या चेत्यनन्तरम् ॥
एककल्पेऽनया रीत्याऽवतारं परिगृह्य सः । पावनानि चरित्राणि करोति स्म महीतले ॥
विलोक्य देवानेकस्मिन् कल्पे दुःख समन्वितान् । जलन्धरेण दैत्येन युद्धे सर्वान् पराजितान् ॥
युद्धं शम्भुस्तेन साकं सञ्चकारातिभीषणम् । हन्यमानोऽपि न हतः किन्तु दैत्यो महाबलः ॥
पत्नी तस्यासुरेशस्य सुस्थिता परमा सती । पुरारिर्नाशकज्जेतुं तस्या एव बलेन तम् ॥

तस्या व्रतं तत् कपटाद् विनाश्य कार्यं करोति स्म हरिः सुराणाम् ।
तन्मर्म विज्ञातवती यदा सा हरिं तदा सा शपति स्म कोपात् ॥ १२३ ॥

तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना । कौतुकनिधि कृपाल भगवाना ॥
तहाँ जलंधर रावन भयऊ । रन हति, राम परम पद दयऊ ॥
एक जनम कर कारन एहा । जेहि-लगि राम धरी नर-देहा ॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी । सुनु मुनि ! बरनी कबिन्ह घनेरी ॥
नारद श्राप दीन्ह एक बारा । कलप एक तेहि लगि अवतारा ॥
गिरिजा चकित भईं सुनि बानी । नारद बिष्नुभगत पुनि ग्यानी ॥
कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा । का अपराध रमापति कीन्हा ॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी । मुनि-मन-मोह, आचरज भारी ॥

दो०—बोले बिहसि महेस तब, ग्यानी-मूढ़ न कोइ ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि छन होइ ॥ १२४ ॥ क

सो०—कहउँ राम-गुन-गाथ, भरद्वाज ! सादर सुनहु ।
भव-भंजन रघुनाथ, भजु तुलसी तजि मान-मद ॥ १२४ ॥ ख

हिमगिरि-गुहा एक अति पावनि । बह समीप सुरसरी सुहावनि ॥
आश्रम परम पुनीत सुहावा । देखि देवरिषि मन अति भावा ॥
निरखि सैल, सरि, बिपिन-बिभागा । भयउ रमापति-पद अनुरागा ॥
सुमिरत हरिहि श्राप-गति बाधी । सहज बिमल मन, लागि समाधी ॥
मुनि-गति देखि सुरेस डेराना । कामहि बोलि कीन्ह सनमाना ॥
सहित-सहाय जाहु मम हेतू । चलेउ हरषि हियँ जलचरकेतू ॥
सुनासीर मन महुँ असि त्रासा । चहत देवरिषि मम पुर बासा ॥
जे कामी लोलुप जग माहीं । कुटिल काक-इव सबहि डेराहीं ॥

दो०—सूख हाड़ लै भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज ।
छीनि लेइ जनि जान जड़, तिमि सुरपतिहि न लाज ॥ १२५ ॥

तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ । निज मायाँ बसंत निरमयऊ ॥
कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा । कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा ॥
चली सुहावनि त्रिबिध बयारी । काम-कृसानु बढ़ावनिहारी ॥
रंभादिक सुर-नारि नबीना । सकल असम-सर-कला-प्रबीना ॥
करहिं गान बहु तान तरंगा । बहुबिधि क्रीड़हिं पानि-पतंगा ॥
देखि सहाय मदन हरषाना । कीन्हेसि पुनि प्रपंच बिधि नाना ॥
काम-कला कछु मुनिहि न ब्यापी । निज भयँ डरेउ मनोभव पापी ॥
सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू । बड़ रखवार रमापति जासू ॥

दो०—सहित सहाय सभीत अति, मानि हारि मन मैन ।
गहेसि जाइ मुनिचरन तब, कहि सुठि आरत बैन ॥ १२६ ॥

भयउ न नारद-मन कछु रोषा । कहि प्रिय बचन काम परितोषा ॥
नाइ चरन सिरु, आयसु पाई । गयउ मदन तब सहित-सहाई ॥
मुनि-सुसीलता आपनि करनी । सुरपति-सभाँ जाइ सब बरनी ॥

ततस्तु तस्याः शापाय प्रामाण्यं प्रददौ हरिः । निधिर्नाना कौतुकानां भगवान् स कृपामयः ॥
स जलन्धर एवासीत् तस्मिन् कल्पे तु रावणः । रणे निहत्य यं रामः प्रायच्छत् परमं पदम् ॥
अयमेवाभवत् सर्वो हेतुरेकस्य जन्मनः । अधारयद् रामचन्द्रः शरीरं येन मानुषम् ॥
प्रत्येकमवतारस्य श्रीरामस्य प्रभोः कथा । कविभिर्बहुधानल्पा वर्णितेति मुने ! शृणु ॥
शापं ददौ श्रीहरये नारदो मुनिरेकदा । तदर्थमवतारोऽभूत् तस्मिन् कल्पे तदा हरेः ॥
इत्थं श्रुत्वा वचः शम्भोर्गिरिजा चकिताभवत् । ऊचे च यन्नारदोऽस्ति विष्णुभक्तश्च बोधवान् ॥
तथापि स मुनिः शापं ददौ श्रीहरये कुतः । अपराधं कमकरोत् कथञ्च कमलापतिः ॥
अमुं प्रसङ्गं सकलं पुराराते! ब्रवीतु माम् । महदाश्चर्यमित्येतन्मोहो मनसि यन्मुनेः ॥

ऊचे विहस्यैव शिवस्ततस्तां ज्ञानी जडो वापि न कोऽपि लोके ।
यथा यदा यं प्रकरोति रामः स तत्क्षणादेव भवेत् तथैव ॥ १२४ ॥ क

वदामीह रामस्य गाथां गुणानां शृणु त्वं भरद्वाज तां मानपूर्वम् ।
मदं गर्वमात्यज्य रामं भवस्य विनाशं भजेत्याह दासस्तुलस्याः ॥ १२४ ॥ ख

आसीदेकातीव पूता हिमाचलगिरौ गुहा । सन्निकर्षेऽवहत् तस्यास्त्रिस्रोताऽतीव शोभना ॥
परमः पावनस्तत्र शोभते स्मैक आश्रमः । विलोकितः सन् देवर्षेर्मनसे रोचते स्म सः ॥
शैलस्रवन्तीविपिनविभागानां विलोकनात् । रमापतिपदप्रेम नारदस्याभवत् तदा ॥
श्रीशस्मृतेरेव रुद्धा गतिस्तद्दक्षशापजा । स्वभावविमले चित्ते समाधिः समजायत ॥
मुनेस्तपोगतिं दृष्ट्वा भीतो जातः सुरेश्वरः । आह्वयत् कामदेवं स तं सम्मानयति स्म च ॥
ऊचे च यद् गच्छ साकं सहायैस्त्वं हिताय मे । इतिश्रुत्वा वचः कामो यातो हृदि मुदान्वितः ॥
त्रासोऽयमेव सञ्जातो विबुधेन्द्रस्य मानसे । यत् पुरे मम देवर्षिनिवासमभिकाङ्क्षति ॥
यतो भवन्ति भुवने कामिनो लोलुपाश्च ये । ते बिभ्यति समेभ्योऽपि कुटिला वायसा इव ॥

शुष्कास्थि सङ्गृह्य शठः प्रधावेत् कौलेयको वीक्ष्य मृगाधिराजम् ।
ततोऽस्य बुध्येत हृतिं यथाज्ञस् त्रेपे न वज्री च तथा तदानीम् ॥ १२५ ॥

ततो यदा कामदेवो गच्छति स्म तमाश्रमम् । तदा स्वमायया तत्र वसन्तमुदपादयत् ॥
अनेकवर्णा विविधा जाताः कुसुमिता द्रुमाः । कूजन्ति स्म पिकास्तत्र गुञ्जन्ति स्म मधुव्रताः ॥
सुशोभनस्त्रिरूपश्च चलति स्म सदागतिः । पञ्चबाणस्वरूपस्य ज्वलनस्य विवर्धनः ॥
रम्भाप्रभृतयो नाना नूतना विबुधाङ्गनाः । कलासु कामदेवस्य निपुणाः सकला अपि ॥
नानास्वरतरङ्गैस्ता आरभन्ते स्म गायनम् । अक्रीडन् बहुधा चैव गृहीत्वा कन्दुकं करे ॥
दृष्ट्वा सहायकानेतान् मदनो मुदितोऽभवत् । नैकरूपान् प्रपञ्चांश्च स पुनः समपादयत् ॥
किन्तु कामकला कापि नाशकल्लिम्पितुं मुनिम् । भीतो जातः कामदेवस्ततः स्वेनैव पाप्मना ॥
सीमां लङ्घयितुं तस्य किं शक्तः कोऽपि वर्तते । साक्षाद् रमापतिर्यस्य रक्षकोऽस्ति महत्तमः ॥

सहायकैः साकमतीव भीतो मत्वा स्वचित्तेऽभिभवं मनोजः ।
गत्वा तदाङ्घ्री जगृहे महर्षेर्वदन्नतीवार्तिमयं वचः सः ॥ १२६ ॥

न कश्चिदपि रोषोऽभूद् देवर्षेर्मानसे तदा । प्रियं वचः समुच्चार्य स पुष्पेषुमतोषयत् ॥
पादयोः शिर आनम्य प्राप्यानुज्ञाञ्च नारदात् । ततः सहायकैः साकं परावर्तत मन्मथः ॥
सुशीलता नारदस्य तथैवाचरणं स्वकम् । सभामिन्द्रस्य गत्वा स इति सर्वमवर्णयत् ॥

सुनि सब कें मन अचरजु आवा। मुनिहि प्रसंसि, हरिहि सिरु नावा॥
तब नारद गवने सिव-पाहीं। जिता काम, अहमिति मन-माहीं॥
मार-चरित संकरहि सुनाए। अतिप्रिय जानि, महेस सिखाए॥
बार बार बिनवउँ मुनि तोही। जिमि यह कथा सुनायहु मोही॥
तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूँ। चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ॥

दो०—संभु दीन्ह उपदेस हित, नहिं नारदहि सोहान।
भरद्वाज! कौतुक सुनहु, हरि-इच्छा बलवान॥ १२७॥

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा, अस नहिं कोई॥
संभु-बचन मुनि-मन नहिं भाए। तब बिरंचि के लोक सिधाए॥
एक बार करतल बर बीना। गावत हरिगुन गान-प्रबीना॥
छीरसिंधु गवने मुनिनाथा। जहँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा॥
हरषि मिले उठि रमानिकेता। बैठे आसन रिषिहि समेता॥
बोले बिहसि चराचर-राया। बहुते दिनन कीन्हि मुनि दाया॥
काम-चरित नारद सब भाषे। जद्यपि प्रथम बरजि सिवँ राखे॥
अति प्रचंड रघुपति कै माया। जेहि न मोह, अस को जग जाया॥

दो०—रूख बदन करि बचन मृदु, बोले श्रीभगवान।
तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं, मोह, मार, मद, मान॥ १२८॥

सुनु मुनि! मोह होइ मन ताकें। ग्यान-बिराग हृदय नहिं जाकें॥
ब्रह्मचरज-ब्रत-रत मतिधीरा। तुम्हहि कि करइ मनोभव-पीरा॥
नारद कहेउ सहित-अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना॥
करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गरब-तरु भारी॥
बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी। पन हमार सेवक-हितकारी॥
मुनि कर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करबि मैं सोई॥
तब नारद हरिपद सिर नाई। चले हृदयँ अहमिति अधिकाई॥
श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी॥

दो०—बिरचेउ मग महुँ नगर तेहिं, सत जोजन बिस्तार।
श्रीनिवास-पुर तें अधिक, रचना बिबिध प्रकार॥ १२९॥

बसहिं नगर सुंदर नर-नारी। जनु बहु मनसिज-रति तनुधारी॥
तेहिं पुर बसइ सीलनिधि राजा। अगनित हय-गय-सेन-समाजा॥
सत सुरेस-सम बिभव-बिलासा। रूप-तेज-बल-नीति-निवासा॥
बिस्वमोहनी तासु कुमारी। श्री बिमोह जिसु रूपु निहारी॥
सोइ हरि-माया सब-गुन-खानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी॥
करइ स्वयंबर सो नृपबाला। आए तहँ अगनित महिपाला॥
मुनि कौतुकी नगर तेहिं गयऊ। पुरबासिन्ह सब पूछत भयऊ॥
सुनि सब चरित भूप-गृहँ आए। करि पूजा नृप, मुनि बैठाए॥

दो०—आनि देखाई नारदहि, भूपति राजकुमारि।
कहहु नाथ गुन दोष सब, एहि के हृदयँ बिचारि॥ १३०॥

रुक्मिणी भीष्मक की पुत्री के रूप में जनमी और श्रीकृष्ण को ब्याही गई। 'रुक्मिणी-मंगल' की इस कथा को कहने और सुनने से पाप कट जाते हैं। चन्द्रमुखी चूड़ामणि रुक्मिणी ने भीष्मक के घर में जनम लिया। उसके रुकमइया नाम का श्रेष्ठ भाई था जो मंत्रियों में शिरोमणि था।

विवाह का परामर्श

राजा भीष्मक और राजकुमार रुकमइया दोनों मंत्रणा करने बैठे—जो वर इस कन्या के योग्य है वह वर किसी ने नहीं देखा। रुकमइये ने कहा—सुनिये राजन्! आप तो सब जानते हैं। मैं तो बालक-बुद्धि हूँ, पीछे की बातें आप ही जानते हैं। राजा ने कहा—हे रुकमइये, सुनो। वनमाली कृष्ण को रुक्मिणी का वर समझो। वे छप्पन करोड़ यादवों के राजा हैं। उनका वंश विशुद्ध है। सुन लो, तीनों लोकों में कृष्ण के सदृश वर कोई नहीं देखा। राजा भीष्मक और राजकुमार रुकमइया दोनों मंत्रणा करने बैठे।

राजकुमार ने प्रत्युत्तर में उत्तर दिया—कृष्ण को ऐसा (ऐसा-वैसा ही) समझो। गोकुल में गायें चरानेवाले कृष्ण की आपने भली सराहना की!

कृष्ण वृंदावन में ग्वालों के साथ गायें चराता है, बंशी बजाता है, कामिनियों को मोहता है और उनके साथ भोजन करता है। आप जिसे त्रिभुवन का राजा कहते हैं वह परस्त्रियों के पीछे डोलता रहता है और दही का दान मांगा करता है। आप उसकी बराबरी क्षत्रिय-कुल से करते हैं! वह तो ग्वाला है। जिसके कुल का नाम लेते ही लज्जा आती है उसका आप क्या बखान करते हैं? वह कृष्ण देखने में काला है, झूठ बोलता है। वह नाटे कद का है, और अभिमानी है। पदम भगत कहता है—मैं प्रणाम करके चरणों में गिरता हूँ—आपने उस कृष्ण को भला सराहा!

भीष्मक कहता है—हे मेरे बेटे! तुम मूर्ख हो। औरों के दो भुजाएँ हैं, पर श्रीकृष्ण के चार भुजाएँ हैं।

उन चतुर्भुज के चार भुजाएँ शोभा देती हैं। उन गोविंद के गरुड़ की सवारी है। उन्होंने ब्रह्मादिक देवताओं का और सनक आदि ऋषियों का तथा रात और दिन का और सूरज तथा चंद्रमा का निर्माण किया है। उन्होंने वासुकि नाग के सिर पर पृथ्वी को स्थापित किया, जल को पाताल में भेज दिया। वे नीचे के जल को ऊपर लाये और बीच में बस्ती को बसाया। इस मर्यादा को स्वयं कृष्ण ने बांधा। उनकी आज्ञा से सब

या मरजाद आप हरि बांधी हुकमां काम चलायो
पदम भणै प्रणवै पाय लागूं विण थंभां नभ छायो

दोहा— कंवर भणै, सुण राजवी सांभळ भींव भुवाळ
पूरब देस री नरपती वर वरसां सिसपाळ

मारू— दम्मघोस राजा रो नंदन धन रो वार न पारो
सिव-किरपा सूं लिछमी पायी सोहै राज - दवारो
भंडारी - कोठारी सोहै हसती - तुरग अपारो
आप थकां इधको वर लीजै अड़वड़ियां आधारो
सबळां सेती सगपण कीजै पाणी पहली पाजौ
कंवर भणै, थे सुणो राजवी ग्वाळचां सूं नहिं लाजौ
दम्मघोस रो पुत्र भणीजै इसो बळी अक दानो
जिण संग चढै पिच्याणव खोहण रूड़ी बांरी जानो
जिण संग चढै निन्याणव राजा पूरब तणो नरेसा
पहली तो सब जादू जीत्या खोस लिया सब देसा
समद तणै जाय सरणै बैठो नगर वसायो मांही
भय करतो बाहर नहिं आवै मानूं मिल गयौ छांही
काळजमन रै आगै भागो थां सूं किसोक छानो
पदम भणै, रुकमइयो भाखै भलो सरायो कान्हो

दोहा— भींव भणै, सुत माहरा तैं कहि निपट अयान
नख पर गिरवर धारियो कुबज्या राख्यो मान
सीता री बाहर चढचो सायर बांधी पाज
धनस-बाण कर धार कै देव सुधारण काज

मारू— सायर पाज सही कर बांधी वानर - रींछ मिलाया
कुंभकरण-महारावण मारचा आगे असुर संताया
रावण रूप देख सीता को असुर कुबुध - बुध आयी
रावण रा दस मसतक छेदचा बंद तेंतीस छुडायी
भभीखण नै राजतिलक दियौ कनकमाळ पहरायी
जानकी लेय अजोध्या आया घर - घर वंटी वधाई
रघुवर हुवा अवतार निरमळा साख वेद में गायी
पदम भणै प्रणवै पाय लागूं सौंइ अब जादूराई

कामों का संचालन होता है। पदम भगत प्रणाम करके पैरों पड़ता है और कहता है कि बिना खंभों के आकाश को खड़ा कर दिया।

राजकुमार ने कहा—हे राजा भीष्मक ! सुनिये। पूर्व देश के राजा शिशुपाल को वर रूप में वरेंगे।

(वह शिशुपाल) दमघोष राजा का पुत्र है। उसके धन का आर-पार नहीं है। शिवजी की कृपा से उसने लक्ष्मी को प्राप्त किया है। उसका राजद्वार शोभायमान है। उसके अनेक भंडारी और कोठारी (कोठारपति) हैं, असंख्य हाथी और घोड़े हैं। अपने से विशिष्ट वर को अपनाना चाहिए, ताकि संकट-ग्रस्तों का आधार हो। बलवानों के साथ संबंध स्थापित करना चाहिए। पानी (की बाढ़) आने से पूर्व ही उसके पार बांधनी चाहिये। राजकुमार कहता है—हे राजन् ! सुनिये। ग्वालों से संबंध करके लज्जा का काम मत कीजिये। दमघोष के पुत्र-रूप में प्रसिद्ध वह ऐसा बली है जैसे दानव हो। जिसके साथ पचानबे अक्षौहिणी सेना चढ़ती है। जिससे बरात भली दिखायी देगी। वह पूर्व देश का राजा है। उसके साथ निनानबे राजा चढ़ते हैं। उसने पहले तो सब यादवों को जीता और उनका सारा देश छीन लिया। (उसके भय से भयभीत होकर) कृष्ण समुद्र की शरण में जा बैठा है। वहाँ समुद्र के भीतर नगर बसाया है। भय के मारे बाहर नहीं निकलता है, मानो छाया में मिल गया है। आपसे कौन-सा छिपा है ? वह कालयवन के सामने भागा था। पदम भगत कहता है कि रुकमइये ने कहा कि आपने कृष्ण को खूब सराहा !

भीष्मक ने कहा—हे पुत्र ! तूने बिल्कुल अज्ञानी की-सी बात कही है। उन्होंने गिरिवर गोवर्धन को नख पर धारण किया, और कुब्जा का मान रखा। वे सीता के संकट के समय उसकी सहायता के लिए चढ़े और समुद्र पर पुल बांधा। उन्होंने ही धनुष-बाण हाथ में धारण करके देवताओं के कार्य सुधारे।

उन्होंने सागर की मर्यादा बांधी और बंदर तथा रीछों से मेल किया। कुंभकर्ण तथा महिरावण को मारा और अनेक असुरों का वध किया। सीता का रूप देखकर असुर रावण को दुर्बुद्धि उत्पन्न हुई। उन्होंने रावण के दस मस्तकों को काटा और तेतीसों (कोटि) देवताओं का बंधन छुड़ाया। विभीषण को कनकमाला पहनायी और उसे राजतिलक दिया। फिर सीता को लेकर अयोध्या पहुँचे। घर-घर में बधाई बाँटी गई। राम का निर्मल अवतार हुआ जिसकी साक्षी वेदों ने भी गायी है। पदम भगत कहता है—वे ही राम अब यादववंश के राजा कृष्ण हैं। मैं प्रणाम करके चरणों में शीश नवाता हूँ।

दोहा— भींव भणै, सुत माहरा रुकमण नै वर सार
जेण अघासुर मारियो विरछ अमोड़चा तार

मारू— ताड़क विरछ अमोड़चा कान्हड़ सकटासुर सिंघारचो
नळ - कूबर दोऊं बळवंता तिण को मूळ उपाड़चो
जमनाजळ में काळी नाथ्यो बळ अजगर को मारचो
कंस जाय धरणी सूं चूरचो जादव कियो उबारो
कुवळियापीड़ कुंजर कूं मारचो मुस्टिक मल्ल अखाड़ै
असुर कंस चाणूर पछाड़चा असुरां तणै पवाड़ै
अै अवतार पवाड़ा भाखां तूं मत अहड़ो जाणै
छपन कोट जदवां रो राजा जिण रो वंस वखाणै
तीन लोक अर चवदा भवन में नहीं किणीं सूं छानो
पदम भणै प्रणवै पाय लागूं वर वनमाळी जाणो

दोहा— कंस ज तेड़ी पूतना जहर लगायो गात
सिसु मारण आवत भयी सुण अचरज की वात

आसावरी—लाल को मुख देखणकूं आयी
रात वसी असुरां की नगरी बोत महा दुख पायी
पुरसां का मूंढा नहिं देख्या अड़सठ तीरथ न्हायी
जद मैं ध्यान धरचो वैकुंठ नै वैकुंठ खाली पायी
सुर-नर-मुनि-जन क्रोड़ देवता ले व्रज में सब आयी
अेता बाळक देख्या व्रज में इण में जोत सवायी
जो मैं तेरा बुरा चींतऊं अंखियां की सोगन खायी
चित सुध जाण जसोदा राणी पलणा दिया वतायी
विखला थण भर मुख में दीना सूत खैंच जदुराई
पड़ी जाय जद डोढ जौंजन में असुरां संक्या खायी
पदम भणै प्रणवै पाय लागूं माता की गत पायी

छंद— व्यांव वैर अर प्रीत लायक सूं कीजिये
राज - तखत पै बैठ ग्वाळ क्यों जोइये
जात हीण कुळ हीण सभा में लजानियै
जिण सूं किसा विहाव वचन अेक मानियै

भीष्मक ने कहा—हे मेरे पुत्र ! रुक्मिणी के लिए (वह) वर लाओ जिसने अघासुर को मारा और ताड़ के वृक्षों को तोड़ा ।

उस कृष्ण ने ताड़ के वृक्ष को तोड़ा । शकटासुर का संहार किया । नल-कूबर दोनों बड़े बली थे, उनको समूल उखाड़ डाला । यमुना के जल में कालिय नाग को नाथा । अजगर के बल को नष्ट किया । मथुरा में कृष्ण को भूमिसात् किया और यादवों को उबारा । कुवलयापीड़ हाथी को और अखाड़े में मुष्टिक नामक पहलवान को मारा । कंस और चाणूर जैसे असुरों में पराक्रमी असुरों को पछाड़ा ।

ये अवतारी पराक्रम कहता हूँ । तुम उनको ऐसा-वैसा मत जानना । वह छप्पन करोड़ यादवों का राजा है जिसके वंश का बखान सब लोग करते हैं । वह तीन लोकों और चौदह भुवनों में किसी से छिपा नहीं है । पदम भगत कहता है कि मैं नमन करके पैरों लगता हूँ, उस वनमाली कृष्ण को ही रुक्मिणी का वर समझो ।

कंस ने पूतना को बुलाया । उसने स्तनों पर जहर लगाया । वह शिशु कृष्ण को मारने के लिए आयी । अब अचरज की बात सुनो ।

पूतना ने आकर कहा—मैं लाल का मुख देखने आयी हूँ । कल रात असुरों की नगरी में रही थी, वहाँ बड़ा भारी कष्ट पाया । मैंने पुरुषों का मुँह देखा तक नहीं । अड़सठ तीर्थों में स्नान कर चुकी हूँ । जब मैंने वैकुंठ का ध्यान किया तो उसे खाली पाया । सुर, नर, मुनिजन और करोड़ों देवता, इन सब को लेकर व्रज में आयी हूँ । व्रज में इतने बालक देखे, पर इसमें सवाया तेज है । यदि मैं तुम्हारा बुरा सोचूँ तो मुझे आँखों की सौगंद है । जब उसने इस प्रकार सौगंद खायी तो रानी यशोदा ने शुद्ध चित्त जानकर पलना बतला दिया । जब उसने विषभरे स्तन मुख में दिये तो यदुराज कृष्ण ने दूध के साथ उसके प्राणों को भी खींच लिया । तब पूतना डेढ़ योजन में जाकर गिरी । यह देखकर असुर लोग शंकित हो उठे । पदम भगत कहता है कि मैं नमन करके पैरों लगता हूँ, पूतना ने माता की गति प्राप्त की (क्योंकि कृष्ण ने उसका स्तनपान किया था) ।

तब रुक्मकुमार ने कहा—विवाह, वैर और प्रेम लायक के साथ ही करना चाहिए । राजसिंहासन पर बैठकर ग्वाले को क्यों देखा जाय ? वह जाति और कुल से हीन है अतः (उसके कारण) सभा में लज्जित होना पड़ेगा । उसके साथ कैसा विवाह ? मेरी एक बात मानिये ।

छंद— मान वचन भुवाल भीखम   फेर या मत कीजियै
दमघोस को सिसपाळ राजा   ताहि कन्या दीजियै
जात सूर सुजात सुंदर   आदि - राजा जाणियै
ताहि कन्या देत सोभा   वचन अैसा मानियै

मारू— भरी सभा में इंद्र ज कोप्यो   व्रज सूं भेट न आयी
या व्रज ऊपर जळ वरसावो   सब कूं देवो बहायी
आवरतक कूं आदी लेकै   च्यारूं पुत्र बुलाया
वरख्यो घन गज-सूंड-धार   गोवर्धन धार वचाया
राजा भींव कहै, रुकमइया   किण राजा कूं दीजै
ओछै सगै सगारथ करतां   मान - वडाई छीजै
पूरै सगै सगारथ कीजै   वा-की सरण रहीजै
नंद महर का कुंवर कन्हइया   वाकूं कन्या दीजै
विलम न करो, वेग उर मांही   यही वचन धर लीजै
पदमइयो तेरो जस गावै   काम भलेरा कीजै

दोहा— चमक कनोधर उठ चल्यो   घर जाय पूछी माय
तखत चंदेरी छांड कै   नातो और कराय

मारू— नातो और करावै माता   थांरै मन कांइ भावै
माखण चोर परायो खावै   जिण नूं राव सरावै
गज-दळ-ठाट दळां रो पूरो   तखत चंदेरी सोहै
च्यार खूंट नव खंड विचाळै   अहड़ो और न को है
नेम-धरम की सब विध जाणै   नगर-धरम की पाजा
सुंदर वर सिसपाळ भणीजै   ताहि न झंपै राजा
रुकमइया का वचन सुणे-सुण   हिवड़ा मांही साळचो
देखो मत राजा भीखम की   कहड़ां नै उठ चाल्यो
माता-सुत मिल मंत्र विचारचो   दोस न लावो कोई
करो सगाई भजन कीजिये   जा विध राखै सांई
रुकमइयै का वचन सुणे-सुण   माता मंत्र उपायो
विप्र बुलावो लगन लिखावो   चंदेरी पहुंचावो
पदम भणै प्रणवै पाय लागूं   वेगो विप्र बुलावो

दोहा— पड़दै राणी वीनवै   सुणो नरेसुर राव
अब थांरो बळ हट गयो   करता कोट उपाव

हे राजन् भीष्मक ! मेरी बात मानिये और फिर ऐसा विचार कीजिये। दमघोष का पुत्र राजा शिशुपाल है। उसे कन्यादान करें। जान लीजिये कि वह जन्म से ही शूरवीर है, उच्च कुल का है, सुंदर है और आदि-राजा है (उसके वंश के लोग आदिकाल से ही राजा होते आये हैं)। उसे कन्या देने में शोभा है। मेरा ऐसा वचन मानिये।

तब राजा भीष्मक ने कहा—भरी सभा में इंद्र ने कोप किया कि व्रज से भेंट नहीं आयी, इस व्रज पर ऐसा जल बरसाओ कि सबको बहा डालो। आवर्तक आदि चारों पुत्रों को बुलाया। बादल हाथी की सूँड के समान जल-धारा के साथ बरसा, तब कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत धारण करके व्रजवासियों की रक्षा की। राजा भींव कहता है—हे रुकमइये ! किस राजा को दें। ओछे सगे के साथ संबंध करने पर मान-बड़ाई छीजती है। पूरे सगे के साथ संबंध करना चाहिए और उसकी शरण में रहना चाहिए। नंद महर के पुत्र कन्हैया-कुँवर है, उसे कन्या देनी चाहिए। देर मत करो, शीघ्रता से इस बात को हृदय में धारण करो। (हे कृष्ण!) पदम भगत तुम्हारा यश-गान करता है। भले काम करने चाहिए।

वंशधर पुत्र रुक्मकुमार तमक करके उठ चला और घर के भीतर जाकर माता से पूछा—चंदेरी के राजसिंहासन को छोड़कर राजा अन्यत्र संबंध कर रहे हैं।

हे माता ! राजाजी दूसरी जगह संबंध कर रहे हैं, आपके मन को क्या ठीक लगता है ? जो पराया माखन चुराकर खाता है, राजा उसकी सराहना कर रहे हैं। जिसके हाथियों के दल का ठाट है, जिसके बहुत बड़ी सेना है, ऐसा जो चंदेरी के राजसिंहासन पर शोभायमान है, चारों दिशाओं और नवों खंडों के बीच ऐसा और कोई नहीं है। वह धर्म की सब विधियों को जाननेवाला है तथा नगर-धर्म की मर्यादा-रूप है। वह शिशुपाल ऐसा सुंदर वर कहा जाता है तो भी राजा उसकी ओर आँख झपकाकर भी नहीं देखते। रुकमइये के वचन सुन-सुनकर माता के हृदय में दुख हुआ। उसने खेद के साथ कहा—राजा भीष्मक की बुद्धि को देखो कि उठकर किधर जा रहे हैं। माता-पुत्र ने मिलकर सलाह की। दोष मत दो। सगाई कर दो। फिर भगवान का भजन करो और भगवान जैसे रखें वैसे ही रहो। रुकमइये के वचन सुनकर माता ने सलाह दी—ब्राह्मण को बुलाकर लग्न लिखवाओ और चंदेरी पहुँचाओ। पदम भगत कहता है कि मैं नमन करके पैरों लगता हूँ, ब्राह्मण को शीघ्र बुलाओ।

अंतःपुर में रानी विनती करती है—हे राजन्, सुनिये। अब आपका बल क्षीण हो गया है, आप जो करोड़ों प्रकार के उपाय किया करते थे।

मारू— करता कोट उपाव नरेसुर ! विधना ओछी वाणी
राणी भणै, सुणो राजाजी म्हे थांरी मत जाणी
राणी भणै, सुणो राजाजी यही वात मन पेखो
रुकमइयो थांरी पत राखै बैठा - बैठा देखो
राणी भणै, सुणो राजाजी थांरी वात न भायी
थांनै राजा वडपण दीनो बैठा हरि - गुण गायी
अेक ज घर में दोय मता है भगति कहां तें होई
पुरख ज पूतै देवता भूत - पूजणी जोई
वांस-विड़ो अपणो कुळ जारै अैसो पुत्र तुम्हारो
पिता कहै वाकी नहिं मानै कंवर फिरै अपकारो
राजा भणै, सुणो तुम राणी यहै वात ना सोही
पदम भणै प्रणवै पाय लागूं कर देखो हर कोई

आसावरी—कहा थारै नंदनंदन मन मान्यो ?
राणी अरज करै राजा सूं विरध भया, हम जाण्यो
जात-पांत कुळ वाकै नांही सो रुकमण, वर ठाण्यो
वृंद्रावन में गऊ चरावै कांध कामर नांव कान्यो
पदम भणै प्रणवै पाय लागूं मोर मुगट वाकै वान्यो

सोरठ—भोळी राणी वावरी हे गिरवरधारी नै परणास्यां
सठ रुकमइयो अेक न मानै कह सिसपाळ बुलास्यां
बो सिसपाळ चंदेरी रो राजा म्हे त्रिभुवन-पत ध्यास्यां
जो हरि म्हांरै भवन पधारै (घर) बैठा मुगती पास्यां
प्राण तजूं पिण पण नहिं छांडूं रुकमण रथ बैठास्यां
पदम स्याम जो हरि नहिं आवै तो मरस्यां विस खास्यां

दोहा— राणी सूं राजा कहै सुणो प्राण-आधार
तीन-लोक-पति कृष्ण जू वाकी है वर नार

मारू— तीन लोक रो नायक केसौ केता किया पंवाड़ा
मारचा दुस्ट दैत अर दाना अनगिन असुर पछाड़चा
बाळ-रूप हुय हसी पूतना पहल पवाड़ा कीया
पायी सजा सिरीधर जोसी विप्र जाण जिव दीया
मल्ल अखाड़ै हसती मारचा करसूं दसन उपाड़चो
काळी-नाग नाथ कर लाया नख पर गिरवर धारचो

Regd. No. R.N. 19347-70 Govt. of India

भुवन वाणी ट्रस्ट,

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८ चौपटियाँ रोड, लखनऊ–३

वाणी-सरोवर अथवा ट्रस्ट में चल रहे सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण ग्रन्थ :—

१—(तमिऴ) तिरुक्कुऱळ् २—(तमिऴ) कम्ब रामायण
३—(तेलुगु) रंगनाथ रामायण ४—(कन्नड) पम्प रामायण—जैनसाहित्य
५—(असमिया) माधवकंदली रामायण ६—(कश्मीरी) रामावतार चरित
७—(नेपाली) रामायण भानुभक्त कृत ८—(गुजराती) गिरधर रामायण
९—(मलयाळम) तुञ्चत्त् एऴुत्तच्छन् कृत महाभारत
१०— ,, तथा ,, ,, ,, अध्यात्म रामायण
११—(ओड़िआ) वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज १२—(सिंधी) स्वामी के सलोक
१३—(मराठी) श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत मूलपाठ अनुवाद सहित
१४—(गुरमुखी) श्रीगुरु ग्रंथ साहब १५—(उर्दू) गुज़श्त: लखनऊ—मौ० शरर
१६—(फ़ारसी) दाराशिकोह कृत ५० उपनिषदों की फ़ारसी-व्याख्या का धारावाहिक हिन्दी अनुवाद
१७—(राजस्थानी) रुक्मिणीमंगल—पदम भगत कृत
१८—(अ़रबी) रियाज़ुस्सालिहीन (ह़दीस)—(ज़ादे सफ़र)
१९—रामचरितमानस (तुलसी)—संस्कृत पद्यानुवाद सहित, तथा
२०— ,, ओड़िया लिपि में लिप्यन्तरण एवं ओड़िया गद्य-पद्यानुवाद

यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हो चुके हैं (सानुवाद देवनागरी लिप्यन्तरण):—

२१—(बंगला) कृत्तिवास रामायण—(पाँच काण्ड) बंगला मूल देवनागरी में लिप्यन्तरित, अवधी पद्यानुवाद—मू० २५·००
२२—(बंगला) कृत्तिवास रामायण लंका काण्ड मूल्य १५·००
२३—(मलयाळम) एऴुत्तच्छन् कृत महाभारत संपूर्ण हिन्दी अनु० सहित मूल्य ४०·००
२४—(कश्मीरी) रामावतारचरित—प्रकाशराम कुर्यग्रामी कृत ,, २०·००
२५—बाइबिल सार (सालोमन के नीतिवचन) १·००
२६—(उर्दू) श्री 'रुस्वा' कृत शरीफ़ज़ाद: (आर्यपुत्र) ,, ५·००
२७—(गुरमुखी) जपुजी तथा सुखमनी साहब—गुरमुखी मूल पाठ तथा गीता के यशस्वी अनुवादक ख़ा० ब० ख़्वाज: दिलमुहम्मद कृत उर्दू पद्यानुवाद—दोनो देवनागरी लिपि में—मू० ५·००
२८—सिर्रे अक्बर (दाराशिकोह कृत ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, श्वेताश्वतर) की फ़ारसीव्याख्या हिन्दी में—मू० २०·००
२९—ज़ादे सफ़र (इस्लामी ह़दीस) ,, १२·००
३०—(वाणी सरोबर)—उपर्युक्त अनुपम ग्रंथों का सानुवाद धारावाहिक देवनागरी लिप्यन्तरण का त्रैमासिक पत्र—वार्षिक १०·००

ट्रस्ट के अतिरिक्त, सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण के अन्य कार्य, जो अन्यत्र हो चुके हैं:—

१—(अ़रबी) क़ुरआन (मूल आयतें अरबी व देवनागरी लिपि में, अनुवाद, टिप्पणी सहित)—इस्लामी धर्माचार्यों द्वारा प्रतिपादित—४०)

वाणी प्रेस, लखनऊ-३ में मुद्रित एवं भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ–३ द्वारा प्रकाशित।
—द्वारा नन्दकुमार अवस्थी, सम्पादक